

ईश्वर कारुण्यम्

एक आत्मकथा

ईश्वर कारुण्यम्

एक आत्मकथा

मलयालम भाषा में रचित पुस्तक का
हिन्दी रुपांतर

ईश्वर कारुण्यम्

एक आत्म कथा



द्वारा
श्री पुरुषोत्तमानन्द स्वामी जी
(वसिष्ठ गुहा)
गूलर डोगी टेहरी गढ़वाल

प्रकाशक :

श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट

वसिष्ठ गुह

पी.ओ. गुलर डोगी

टेहरी गढ़वाल

(उत्तराखण्ड)

प्रथम मलयालम संस्करण

(जुलाई वर्ष 1956)

अंग्रेजी संस्करण

(वर्ष 1994)

प्रथम हिन्दी संस्करण

(नवम्बर वर्ष 2007)

प्रस्तुति

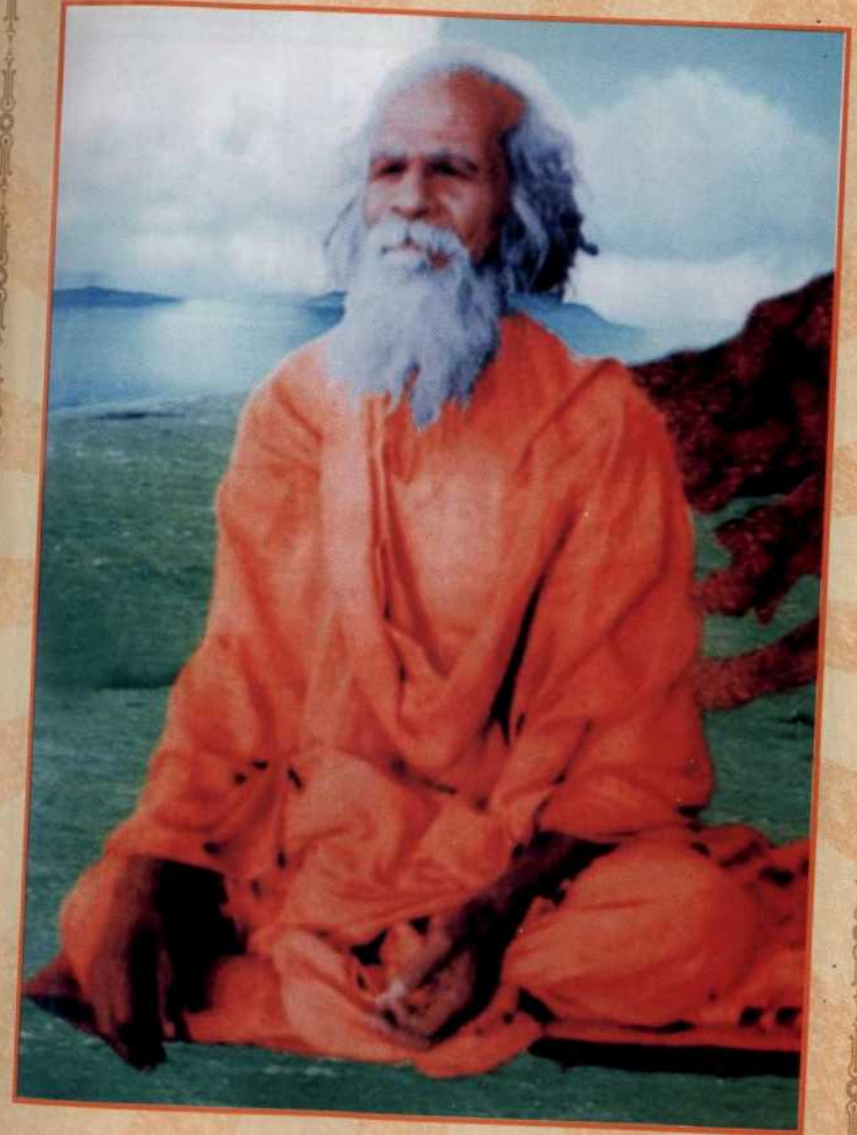
सतीश कुमार

मुद्रक :

कमला प्रिंटिंग प्रेस

486/77, लखनऊ - 226 020

दूरभाष : 0522-2741512, 9415091530



स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी



स्वामी ब्रह्मानन्द जी



स्वामी निर्मलानन्द जी



श्री रामकृष्ण परमहंस



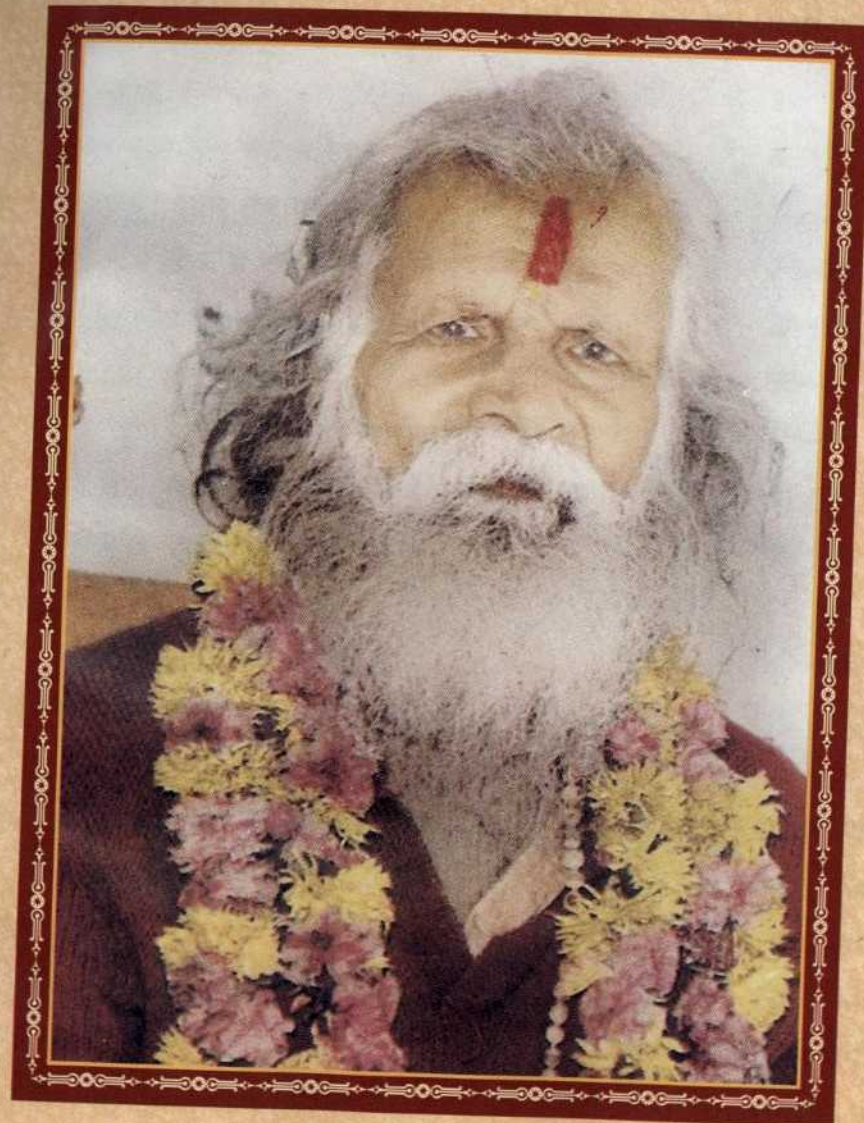
स्वामी ब्रह्मानन्द



स्वामी शिवानन्द



स्वामी पुरुषोत्तमानन्द



स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी

क्रम संख्या	अनुक्रमणिका	पृष्ठ संख्या
1	भक्तों के बन्धन में	3
2	जन्म भूमि और मेरा परिवार	4-19
3	गुरुवायूर एवम् नारायणीयम्	20-25
4	गुरु की खोज में	26-33
5	भक्ति और प्रसाद	34-35
6	गुरु का सामीप्य	36-44
7	गुरु कृपा और प्रेसीडेंट महाराज	45-56
8	श्री रामकृष्ण मिशन के कार्यों में सहयोग - आत्मिक शक्ति	57-66
9	तप और साधना की ओर	69-78
10	बेलूर मठ और सन्यास	79-88
11	हिमालय प्रवास और बद्रीनाथ	89-102
12	बद्रीनाथ से वापसी	103-105
13	तपस्या स्थली की तलाश में	106-119
14	वसिष्ठ गुहा की ओर	120-126
15	वसिष्ठ गुहा में स्थायित्व	127-132
16	काश्मीर	133-134
17	पुनः बद्रीनाथ की ओर	137-143
18	स्नेह बन्धन और गुरु भक्ति	144-145
19	सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्	146-148
20	जन्म भूमि	149-152
21	वज्रादपि कठोराणि मृदूणि कुमसादपि	153-156
22	भक्त रामदास	157-161

क्रम संख्या	अनुक्रमणिका	पृष्ठ संख्या
23	गंगा और गुहा	162-164
24	पशुपति नाथ के दर्शन	165-168
25	विद्यालय स्थापना	169-171
26	टेहरी राज्य का उत्तर प्रदेश में विलय	172
27	प्रयाग में कुम्भ	173-174
28	दक्षिण भारत की ओर	175-177
29	दक्षिण की तीर्थ यात्रा	178-181
30	सुहृदयों के बीच से गुहा की ओर	182-186
31	ज्ञानोपदेश	187-190
32	ज्ञानोपदेश और राम चरित मानस	191-194
33	ज्ञानोपदेश - श्री रामकृष्ण	195-199
34	गंगा में बाढ़	203-205
35	वर्ष 1958	206-207
36	वर्ष 1959	208-210
37	प्रयाग का अर्द्ध कुम्भ	211-213
38	दक्षिण भारत की यात्रा	214-219
39	पम्बा नदी में नौका विहार	220-224
40	उत्तर भारत की ओर	225-226
41	एक शिष्य के साथ	227-229
42	अन्तिम भ्रमण	230-231
43	महा समाधि	232-238

आमुख कथा

वसिष्ठ गुहा के गुरु महाराज, स्वामी जी के नाम से विख्यात, परम तपस्वी, योगी और आत्म शक्ति के मूर्तरूप, परम पाद्य, स्वामी श्री पुरुषोत्तमानन्द जी की आत्मकथा एक ऐसे व्यक्ति की जीवन गाथा है, जिन्होंने शारीरिक अक्षमता और व्याधियों से निरन्तर जूझने के बाद भी अपनी आत्म शक्ति और परम पिता परमात्मता के प्रति अपनी श्रद्धा और पूर्ण समर्पण से योग की उस परम स्थिति को प्राप्त किया, जो सामान्य व्यक्ति के लिए दुष्कर है। उनके प्रति भक्ति, श्रद्धा और नमन करने वालों को उनके जीवन संघर्ष की आत्मकथा से परिचित कराने के लिए जुलाई 1956 में सर्वप्रथम "कमलालय प्रिंटिंग वर्क्स" तिरुवनन्तपुरम, ने उनकी आत्मकथा को मलयालम भाषा में मुद्रित कर प्रकाशित किया। भक्तों द्वारा 'गुरु महाराज' की आत्मकथा को पढ़ने की आकांक्षा को देखते हुए गुरु महाराज के परम शिष्य स्वामी श्री चैतन्यानन्द जी के अनुरोध पर स्वामी शान्तानन्द के मित्र, श्री जे. पद्मनाभ अय्यर जी ने अपने अथक प्रयास से इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया। इसका प्रकाशन 'अरावली प्रिन्टर्स' नई दिल्ली ने वर्ष 1994 में किया।

स्वामी श्री चैतन्यानन्द जी के आशीर्वाद से अंग्रेजी में अनूदित आत्मकथा "द स्टोरी आफ डिवाइन कम्पैशन" को पढ़ने पर मुझे ज्ञात हुआ कि ट्रस्ट शीघ्र ही इसका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित करना चाहता है। पुस्तक पढ़ने के बाद मेरे मन में यह इच्छा हुई कि मैं इसका रूपान्तर करने हेतु स्वामी जी से बात करूँ। शीघ्र ही मुझे वसिष्ठ गुहा जाने का सौभाग्य मिला और स्वामी चैतन्यानन्द जी ने आशीर्वाद देते हुए मुझे यह कार्य सम्पादित करने की स्वीकृति प्रदान की।

मैंने सर्वप्रथम अंग्रेजी में अनुवाद की गयी पुस्तक "द स्टोरी आफ डिवाइन कम्पैशन" का हिन्दी में अनुवाद किया और स्वामी के पास ले गया तथा मलयालम भाषा में लिखे पद्य तथा संस्कृत भाषा के पद्यों को उनके सहयोग से परिमार्जित किया और पुनः एक बार हिन्दी रूपान्तर उनके सम्मुख प्रस्तुत किया। एक-दो अध्याय का हिन्दी रूपान्तर सुनने के बाद उन्होंने मुझसे कहा कि इस अनुवाद में स्वाद नहीं है। उनका तात्पर्य रस से था। उन्होंने मुझसे कहा कि गुरु महाराज की मलयालम में लिखी "आत्मकथा" का हिन्दी रूपान्तर ही सही एवम् सजीव होगा। अतः स्वामी जी से आशीर्वाद प्राप्त कर मैं लखनऊ वापस आ गया। अब एक ऐसे

व्यक्ति की तलाश थी, जो मुझे मलयालम से हिन्दी रूपान्तर में सहयोग दे सके। अपने मित्रों के सहयोग से मैं भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण संस्थान के डा० बीजू जॉन से मिला, जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर मुझे इस कार्य में सहयोग दिया, किन्तु सरकारी नौकरी की व्यस्तता के कारण कार्य में गति नहीं आ पा रही थी। मैं अपने कार्य में व्यस्त रहता और वे अपने। कभी-कभी तो वे दूर से लौटते और मैं दूर पर चला जाता। इसी बीच मेरे छोटे भाई के बेटे के जन्मदिन पर आयोजित एक समारोह में उनके एक मित्र, जो नौकरी के सिलसिले में उनके साथ-साथ लखनऊ से कानपुर जाते थे, भेंट हुई। उनका नाम श्री गोपी नाथ नायर है। मैंने उनसे इस कार्य में सहयोग मांगा। वे सहर्ष तैयार हो गये। वे तथा उनकी पत्नी, श्रीमती अजिता नायर दोनों ने मुझे इस कार्य में अत्यन्त सहयोग दिया। इस प्रकार मलयालम भाषा से किये जा रहे अनुवाद को गति मिल सकी। इस कार्य में सहयोग देने के लिये मैं, डा० बीजू जॉन, श्री गोपीनाथ नायर और श्रीमती अजिता नायर का आभारी हूँ। कार्य पूर्ण होने पर जहाँ मुझे प्रसन्नता है, वहीं मुझे अब लग रहा था कि स्वामी जी द्वारा की गयी टिप्पणी कितनी सार्थक थी।

इस पूरे कार्य में श्री माया राम वर्मा ने अथक प्रयास से इस अनुवाद को बार-बार कम्प्यूटर पर संशोधित करने का कठिन कार्य किया है, जिसके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं। इस पूरे कार्य में गुरु महाराज की अनुकम्पा के साथ-साथ स्वामी चैतन्यानन्द जी का आशीर्वाद तथा मार्गदर्शन मुझे निरन्तर प्राप्त होता रहा। स्वामी जी की इच्छा थी कि गुरु महाराज के पूरे जीवन से सभी भक्त परिचित हो सकें, इस कारण स्वामी जी ने वर्ष 1955 से लेकर वर्ष 1961 तक की मुख्य-मुख्य घटनाओं को भी इस पुस्तक में समाहित करने के आदेश दिये। वर्ष 1955 से वर्ष 1961 तक के मध्य की अवधि की मुख्य-मुख्य घटनाओं को सम्मिलित करने के लिये स्वामी जी ने डा० मोहन ब० बांडे की पुस्तक "वसिष्ठ गुहा के संत स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज" तथा स्वामी निर्वेदानन्द जी की पुस्तक "The Life of Swami Purushottamanand" को पढ़कर आवश्यक सहयोग लेने के लिये कहा।"

"वर्ष 1955 के बाद से वर्ष 1961 तक की घटनाओं को जोड़ने का मुख्य उद्देश्य गुरु महाराज के जीवन का पूर्ण विवरण भक्तों के सम्मुख प्रस्तुत करना है, ताकि सभी उनके जीवन से पूर्णतया परिचित हो सकें। इस पुस्तक के प्रथम तीन अध्याय "आत्मकथा" से लिये गये हैं तथा चौथा

अध्याय अन्य पुस्तकों पर आधारित है।

महासमाधि का भाग गुरु महाराज के 125 जन्म महोत्सव पर प्रकाशित स्मारिका में स्वामी चैतन्यानन्द जी द्वारा रचित लेख "महा समाधि" को आधार बनाकर लिखा गया है। यह सही है कि कुछ हिस्सों में अनूदित करते समय यथासम्भव सरल भाषा का प्रयोग किया है तथा बाद में कहीं-कहीं पर ज्ञात तथ्यों के आलोक में परिवर्तन भी किया है। मैं अपने प्रयास में कितना सफल हो सका, इसे पाठक ही बता सकते हैं, किन्तु इसका श्रेय मुझे नहीं, स्वामी चैतन्यानन्द जी के उस आशीर्वाद को है, जो मुझे निरन्तर मिलता रहा, वरन, मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता था। स्वामी जी के मार्गदर्शन में यह हिन्दी रूपान्तर पूर्ण हो सका।

यह आत्मकथा, नीलकण्ठन के पुरुषोत्तमानन्द पुरी बनने तथा पुरुषोत्तमानन्द पुरी से वसिष्ठ गुहा के स्वामी तथा तत्पश्चात् गुरु महाराज के नाम से विख्यात होने तक की है। जीवन-संघर्ष, साधना, धैर्य, विचलन, परमपिता के प्रति समर्पण, आत्मिक शक्ति से परिचय और शारीरिक व्याधियों के निर्मम प्रहार को सहकर दूसरों को कुछ देने की एक ऐसी कथा है जो हर व्यक्ति को दृढ़ संकल्प और धैर्य से आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करने में सक्षम है।

गुरु महाराज जी ने आत्मकथा में अपने बचपन के जीवन-संघर्ष के वर्णन से लेकर वसिष्ठ गुहा में साधना करने तक का विवरण विस्तार से किया है। शारीरिक व्याधियों से घिरे रहने के उपरान्त भी बचपन से ही अध्यात्म की ओर उनका झुकाव था। परम ब्रह्म के प्रति निष्ठा तथा जीवन के प्रत्येक क्षण में उसका मार्गदर्शन प्राप्त होने का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कि 'योगक्षेमम् वहाम्यहम्' के प्रति विश्वास तभी सम्भव है, जब हम अपने आपको पूर्ण रूप से भगवान को समर्पित कर दें। उनका पूरे देश में भ्रमण का वर्णन और वे किस प्रकार 'वसिष्ठ गुहा पहुंचे और किस प्रकार गुहा को अपना निवास बनाया तथा गुहा वाले स्वामी के नाम से प्रख्यात हुए, की कथा है।

गुरु महाराज की आत्मकथा प्रत्येक पाठक तथा भक्त को एक ऐसा मार्ग दिखाती है, जो इसे पढ़कर अध्यात्म की साधना के मार्ग को समझ सके। इस आत्मकथा में गुरु महाराज के जीवन से जुड़ी बहुत सी जानकारी मिलेगी। कैसे होता है आध्यात्मिक विकास? कैसे एक-एक पग बढ़कर मनुष्य साधारण से असाधारण बनता है? किन्तु इन सबसे बड़ी बात है कि जैसे-जैसे आध्यात्मिक विकास होता है, वैसे-वैसे अपने पराये

का भेद समाप्त होता है। यहाँ तक कि पेड़ तथा पौधों के प्रति असीम प्रेम इस विकास का द्योतक है।

गुरु महाराज का गीता के इस श्लोक "तेषां नित्याभि युक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्"* में अटल विश्वास था, उन्होंने इसे जीवन का मूल मंत्र बनाया और इस विश्वास के साथ वसिष्ठ गुहा में निवास किया कि परमपिता उनके आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करेगा और यह मूल सिद्धान्त उन्होंने भक्तों में प्रतिपादित किया।

बिल्कुल सीधे और सरल शब्दों में लिखी गयी "आत्मकथा" का अनुवाद तथा गुरु महाराज के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के विवरण को समाहित करके यह पुस्तक प्रस्तुत की गयी है, जो The story of Divine Compassion से कुछ भिन्न है। यह पुस्तक गुरु महाराज के जीवन को विभिन्न झलकियों के दर्शन कराने में सक्षम होगी।

कबीर की इन पंक्तियों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पायँ।

बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताय।

प्रस्तुति,

सतीश कुमार

जे-102, एल्लिको पार्क व्यू अपार्टमेंट,

सीतापुर रोड, लखनऊ

* यह श्रीमद् गीता के नवें अध्याय का 22वें श्लोक का अंश है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभि युक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥

(अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए, जो भक्तजन निष्काम भाव से मेरी उपासना करते हैं, उस एकी भाव से मेरे में स्थित लोगों के योग क्षेम (भगवत् प्राप्ति की साधना योग और साधना में लगे लोगों की रक्षा, क्षेम) को मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ।)

नवें अध्याय में राज विद्या राज गुह्य योग का वर्णन है। श्लोक 20 से 25 तक में भगवान् श्रीकृष्ण ने सकाम और निष्काम उपासना का क्या फल होता है, यह अर्जुन को समझाया है।

वसिष्ठ गुहा, जिला-देहरी गढ़वाल, (उत्तराखण्ड राज्य का भाग, हिमालय)
के महाराज परम् पूज्य पवित्रात्मा स्वामी जी पुरुषोत्तमानन्द जी की आत्म
कथा के हिन्दी अनुवाद पर प्राक्कथन

परम् पूज्य पवित्रात्मा स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज की आत्म कथा वर्ष 1956 में गुरु महाराज के जीवनकाल में मलयालम भाषा में छप चुकी थी। अंग्रेजी का ज्ञान रखने वाले लोग भी यह आत्म कथा पढ़ सकें, इस बात की कसक मन में बहुत दिनों से थी, 38 वर्षों के बाद ही वर्ष 1994 में श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट द्वारा यह सम्भव हो सका कि वह इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर सके। इससे अंग्रेजी जानने वाले भक्तगणों, शिष्यों और अध्यात्म में रुचि रखने वाले पाठकों को लाभ हो सका।

मेरे मन में बहुत दिनों से यह विचार पल्लवित हो रहा था कि मैं गुरु महाराज के भक्तों के लिये इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत करूँ, ताकि भक्तों का बहुत बड़ा वर्ग, जो हिन्दी भाषा को ही समझता है, "आत्मकथा" को पढ़ सके। आज मुझे आपके सम्मुख इसे प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है।

केरल राज्य के तिरुवल्ला शहर के, मध्यम वर्ग के परिवार में, रविवार, 23 नवम्बर 1879 को गुरु महाराज का जन्म हुआ था और उनका नाम नील कण्ठन था। पाँचवी फार्म (वर्तमान कक्षा 10 के बराबर) का अध्ययन पूर्ण करते ही वे पक्षाघात के रोग से ग्रस्त हो गये और उनकी पढ़ाई छूट गयी तथा वे 5 वर्ष तक बिस्तर से लगे रहे। गुरुवायूर क्षेत्र की सिद्धि के बारे में जानकर माता-पिता को बिना बताये गुरुवायूर पहुँचे तथा छः माह तक लगातार पूजा की। इससे उन्हें काफी हद तक अपनी व्याधि के कष्ट से छुटकारा मिला। बाद में उनके एक मित्र ने उन्हें श्री रामकृष्ण संघ तिरुवल्ला में भाग लेने हेतु प्रेरित किया। वहाँ वे भजन, कीर्तन एवम् धार्मिक व्याख्यानों में भाग लेने लगे तथा वहाँ श्रीमद् भागवत् का पाठ करने लगे। वर्ष 1916 में उनके जीवन में परिवर्तन आया, जब श्री रामकृष्ण मठ, बेंगलोर के, स्वामी निर्मलानन्द जी, जो हरिष्पाट्ट, केरल में आये थे, के दर्शन कर वे स्तम्भित रह गये। नील कण्ठन के जीवन पर श्री निर्मलानन्द जी के जीवन का विशेष प्रभाव था। श्री निर्मलानन्द जी के आग्रह पर वर्ष 1916 में केरल आने पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी* तत्कालीन प्रेसीडेण्ट, श्री रामकृष्ण मिशन (वेलूर मठ, कलकत्ता) ने उन्हें मंत्र दीक्षा दी। वर्ष 1923

* स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज वर्ष १९२३ से पूर्व समाधिस्थ हो गये थे।

में श्री रामकृष्ण मिशन, वेलूर मठ, कलकत्ता के तत्कालीन प्रेसीडेंट स्वामी शिवानन्द जी ने नीलकण्ठन के कलकत्ता आने पर उन्हें सन्यास दीक्षा दी और उनका नया नाम पुरुषोत्तमानन्द पुरी रखा। पुरुषोत्तमानन्द जी ने स्वयं अपने बचपन के संघर्ष, शारीरिक व्याधि, अध्यात्म की ओर झुकाव और भगवान के प्रति भक्ति को अपने शब्दों में अच्छी तरह वर्णित किया है। भगवान की जीवन के प्रत्येक मोड़ और कठिनाई पर कृपा और किस प्रकार उनकी घोषणा "योगक्षेमम् वहाम्यहम्" के प्रतिपादित होने (यदि कोई पूर्ण रूप से अपने आपको भगवान के प्रति समर्पित कर दे), का विशेष रूप से उल्लेख किया है। उनकी पूरे भारतवर्ष की यात्रा, कैसे वे वसिष्ठ गुहा आये (टेहरी गढ़वाल जिला, उत्तराखण्ड, हिमालय क्षेत्र), वसिष्ठ गुहा में रहकर किस प्रकार उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन की प्रगति की और अन्ततः वे वसिष्ठ गुहा वाले स्वामी जी के नाम से विख्यात हो गये और किस हद तक आध्यात्मिक जीवन को विकसित करने में गुहा का सहयोग मिला, आदि वर्णित है। इस पुस्तक में गुरु महाराज की आत्मकथा "ईश्वर कारुण्यम्" के साथ-साथ वर्ष 1955 से लेकर वर्ष 1961 तक (महासमाधि तक) की मुख्य-मुख्य घटनाओं को समावेशित किया गया है। इस कारण इस पुस्तक में गुरु महाराज के पूर्ण जीवन की झलक मिल सकेगी।

हमारा पूरा जीवन एक आध्यात्मिक साधना है और गुरु महाराज की आत्म कथा प्रत्येक पाठक और भक्त को अवसर प्रदान करती है कि वे उनके जीवन से बहुत कुछ प्राप्त कर सकें। वे भक्त जो गुरु महाराज के जीवन में उनके सम्पर्क में आये (13 फरवरी 1961 में महासमाधि के पूर्व), उनके लिये यह एक पुराने संस्मरण को स्मरणीय बनाने के लिये और अन्य के लिये अध्यात्म को समझने के लिये एक अच्छी पुस्तक है।

ट्रस्ट के सभी सदस्य श्री सतीश कुमार के समर्पण और लगन के लिये प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने इस पुस्तक की हिन्दी में प्रस्तुति की।

ट्रस्ट के सदस्य आशा करते हैं कि इस पुस्तक से प्रत्येक पाठक के विचार को यह बल मिलेगा कि शारीरिक और अन्य अक्षमताओं के उपरान्त भी एक निःस्वार्थ जीवन, परोपकार के लिये तत्परता, भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण किसी भी व्यक्ति को आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा पर ले जा सकता है। यह पुस्तक गुरु महाराज की स्मृति में समर्पित है, जिनका असीम आशीर्वाद और कृपा, सभी भक्त को निरन्तर प्राप्त होता रहे।

स्वामी चैतन्यानन्द

श्री पुरुषोत्तम ट्रस्ट,

वसिष्ठ गुहा आश्रम, उत्तराखण्ड 2007

मलयालम भाषा में उपी पुस्तक का प्राक्कथन

सरकारी सेवा से निवृत्त होने के पश्चात्, जन्म लेने और अपने अस्तित्व को समझने के प्रयास ने मुझे अध्यात्म की ओर झुकने के लिए विवश किया। यह कार्य एकाग्र चिन्तन, निरन्तर परिश्रम और ईश्वर की इच्छा के बिना सम्भव नहीं था। शायद ये मेरे पूर्व जन्म के ही संस्कार थे कि युवावस्था से ही मेरे मन में इस प्रकार के विचार पल्लवित हो रहे थे। अपनी इस इच्छा पूर्ति के लिये मैंने कन्याकुमारी की ओर प्रस्थान किया और वहाँ श्री जगदम्बा की प्रार्थना में लगा रहा। इसके 3-4 वर्ष के पश्चात् तीर्थ भ्रमण का मन बनाकर भारत के सभी प्रमुख मन्दिरों एवं तीर्थों की यात्रा के लिये निकल पड़ा। भगवत् कृपा से कन्याकुमारी से कैलाश एवं श्रीमत् द्वारका से जगन्नाथ पुरी की तीर्थ यात्रा के क्रम में इसके मध्य पड़ने वाले अधिकतर तीर्थों का दर्शन एवम् वहाँ स्नान आदि भी किया। इतना ही नहीं, इसी क्रम में पवित्र मानसरोवर एवं श्री कैलाश की भी परिक्रमा पूरी की।

वर्ष 1954 में अपने प्रथम भ्रमण यात्रा की अवधि में ऋषिकेश के शिवानन्द आश्रम में प्रवास के समय कुछ लोगों से मुझे ज्ञात हुआ कि इस स्थान से कुछ दूरी पर वसिष्ठ गुहा नामक स्थान में एक विशेष तपस्वी लगभग 25 वर्ष से तपस्यारत हैं। इस जानकारी ने मेरे मन में उनसे मिलने की इच्छा बलवती की, और मैं, एक तमिल ब्राह्मण के साथ वसिष्ठ गुहा जा पहुँचा। स्वामी जी को साष्टांग दण्डवत् कर मैं उनके ब्रह्मतेज की दिव्य कान्ति से दमक रहे बाल सुलभ मुख मण्डल को देखकर विस्मित हो गया।

उनके मुख मण्डल पर चुम्बकीय आकर्षण था। स्वामी जी से बातचीत की शुरुआत तो शुरु में तमिल भाषा में हुई किन्तु वार्ता के मध्य शब्दों को बोलने के तरीके से वे समझ गये कि मैं मलयाली क्षेत्र का हूँ, अतः आगे की वार्ता मलयालम में हुई। वार्तालाप से यह भी ज्ञात हुआ कि स्वामी जी का पूर्व आश्रम त्रवणकोर राज्य के तिरुवल्ला तालुक (तहसील) में था। आश्रम में उनके एक बंगाली ब्रह्मचारी शिष्य से भी जान-पहचान हो गयी। उन ब्रह्मचारी से ज्ञात हुआ कि भक्तों के लगातार अनुरोध पर स्वामी जी अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं। स्वामी जी से वार्ता के दौरान मैंने उनसे आत्मकथा के बारे में वार्ता की तथा निवेदन करने पर उन्होंने मुझे लिखे गये भाग की पाण्डुलिपि पढ़ने को दी। मैंने स्वामी जी को अवगत कराया कि मैं हिमालय दर्शन की इच्छा से आया हूँ और बद्रीनाथ, केदार नाथ तथा

अन्य पवित्र तीर्थों के दर्शन करने की इच्छा है। यदि ईश्वर की कृपा से इच्छा पूर्ण हो गयी तो उसके बाद शीघ्रातिशीघ्र मैं आपके दर्शन करने आऊँगा और उस समय तक आपकी पुस्तक की पाण्डुलिपि पूर्ण हो गयी तो मैं उसे प्रकाशित करूँगा। स्वामी जी से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद मैं अगले दिन वापिस लौट गया।

वर्ष 1955 में पुनः हिमालय भ्रमण की इच्छा लेकर आया तथा वसिष्ठ गुहा में स्वामी जी के दर्शन किये। वहाँ अध्यात्म की गुप्त साधना के अतिरिक्त स्वामी द्वारा जन-साधारण के लिये किये जा रहे कार्यों को देखकर मेरा मन उनके प्रति अगाध श्रद्धा से भर गया। स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा की पाण्डुलिपि दया करके मुझे सौंप दी।

यहाँ मैं तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री के० एम० मुंशी की पुस्तक "दु बद्दीनाथ" जो वर्ष 1953 में प्रकाशित हुई थी, के कुछ अंश को उद्धारित कर रहा हूँ जिसमें उन्होंने स्वामी जी द्वारा जन-साधारण के लिये की जा रही निःस्वार्थ सामाजिक सेवा का वर्णन किया है।

तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री के० एम० मुंशी द्वारा रचित पुस्तक "दु बद्दीनाथ" के कुछ अंश -

A few weeks previously while we were guests of the Rajmata of Tehri-Garhwal at Anand Kashi, I met a Sadhu who lived on the bank of the Ganga in a cave called Vasishtha Guha.

"When one morning we visited this natural retreat, we found hanging on the outer wall a portrait of Ramakrishna Paramahansa; the interior of the cave was dark and deep. A shrine of Shiva was installed there. An old Sadhu, frail, fragile, tiny, accompanied by his disciples, limped forward to meet us and began to talk in fairly fluent English. His name was Purushothamananda Puri.

"We met again in the afternoon and had a long talk. He told me his story. He originally came from Travancore and was initiated by one of the senior disciples of Sree Ramakrishna. After wandering for many years, he heard of a cave in the wilderness in 1928. So, with staff in hand and a blanket on his back, he limped his weary way to Vasishtha Guha, determined to meditate there in solitude.

"Another Sadhu, however, was in occupation of this cave and refused to share the cave with the newcomer. It is easy enough to leave the world; but very difficult to get rid of one thing, the sense of possession.

"But Purushothamanandji was persistent; he refused to give

up the idea, to live in the cave; he kept vigil outside it for a few days, and slept in the open. He had no food; he had no fire at which to warm himself. He remained in the wilderness trusting in God. "The ways of the Almighty are inscrutable", he said. "A villager gave six matches to light a fire with. A woman gave me some milk and so I managed to live".

"The original occupant of the cave eventually left it and went away. Our friend moved in and began to meditate.

"After a time, Purushothamanandaji went on a pilgrimage to Amarnath and did not return until six months later. He first cleared the silt of the cave which had been brought down by the river during the floods, and he once again settled down to meditate. People from surrounding villages flocked to see him, offered him food and afterwards became his disciples. He took a paternal interest in their welfare; helped them, advised them and induced them to build a high school in the locality. He is now a man of considerable influence in the neighbourhood. Everyone honours and respects him.

"He is, I discovered, a deep Vedantin and his ways are simple, innocent, almost child-like; he smiles and smiles all the time. Loneliness, starvation and a hundred other aches mean nothing to him; he lives a real life, possessed of God, which give him perpetual Joy and Peace. He has come to this state after years of Sadhana.

"Before we parted, he admonished me. He asked, had I not had enough of life? It was high time I realized what I really was. "I wish I could," I replied".

हिन्दी रूपान्तर

कुछ सप्ताह पूर्व आनन्द काशी में हम लोग टेहरी गढ़वाल की राजमाता के अतिथि थे, उस दौरान मुझे एक साधु से मिलने का सौभाग्य मिला, जो गंगा नदी के किनारे वसिष्ठ गुहा के नाम की एक गुहा में निवास करता था।

एक प्रातः हम लोग उस प्राकृतिक स्थान को देखने गये, वहाँ गुहा के बाहरी दीवार पर श्री रामकृष्ण परमहंस का एक चित्र टंगा था तथा गुफा का अन्दरूनी भाग गहरा तथा अन्धकारमय था, अन्दर एक शिव मन्दिर स्थापित था। अन्दर जाने पर वहाँ एक वृद्ध दुबला-पतला, छोटा साधु अपने शिष्यों के साथ बैठा था, उसने धीरे से आगे बढ़कर मुझसे अंग्रेजी में वार्ता की। उनका नाम पुरुषोत्तमानन्द पुरी था।

ॐ

गुरु श्री निर्मलानन्द स्वामी को समर्पित —

सौभाग्य से सर्वप्रथम मैंने अपने गुरु स्वामी निर्मलानन्द जी का दर्शन केरल राज्य में हरिप्पाट्ट के सुब्रह्मणियम मन्दिर के निकट बड़े महल (वलिय कोट्टारम्) में हुए थे। उन दिव्यात्मा की दृष्टि के चुम्बकीय आकर्षण से मैं उनके समीप जाकर उनके चरणों में गिर गया। सही मायने में उनके चरणों में गिरते ही मैंने अपने शरीर को उन्हें सौंप दिया था और आज भी मेरा सिर उन्हीं के पादारविन्दु में समर्पित है और उनसे निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करता रहता है। यह पुस्तक (आत्मकथा) उस दिव्यात्मा के चरण कमल को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ समर्पित है।

पुरुषोत्तमानन्द,

वसिष्ठ गुहा

19.09.1955



स्वामी श्री पुरुषोत्तमानन्द जी

प्रथम अध्याय

भवतों के बन्धन में

वैसे तो अपने जीवन के छोटे-मोटे घटनाक्रमों को लिखने में मुझे कोई रुचि नहीं थी, किन्तु जब बहुत से भक्त जनों ने मेरे जीवन के बारे में जानने की इच्छा की और विशेषकर केरल की यात्रा के समय प्रत्येक मिलने वाले ने मेरे बारे में अधिक से अधिक जानने की इच्छा व्यक्त की, तब मैंने उनसे कहा कि शीघ्र ही अपनी जीवन कथा आप लोगों के सामने रखने का प्रयास करूँगा। मैं अपनी जीवन कथा इस हेतु लिख रहा हूँ, जिससे मेरे द्वारा दिया गया वचन असत्य न हो।

(2) जन्मभूमि और मेरा परिवार

तिरुवितांकूर¹ राज्य जिसे प्रशंसा तथा प्रेम से श्रीवंचिराज्यम्, श्रीवाजुम्कोड वेनाड, धर्म राज्यम् आदि के नाम से जाना जाता था (वर्तमान में केरल राज्य का एक हिस्सा है)। पूर्व शासक इस राज्य को "भारत का तारा" के नाम से पुकारा करते थे। तिरुवितांकूर बहुत सुन्दर राज्य है। यहाँ के महाराज अपने राज्य की प्रजा को बच्चों की तरह मानते थे तथा प्यार करते थे। तिरुवितांकूर राज्य प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। इस राज्य में चारों ओर सुन्दर हरे-भरे पहाड़, स्वच्छ जल की सैकड़ों नदियाँ, जिसमें भाप की नाव तथा देशी नाव से जलमार्ग में एक ओर से दूसरी ओर आने-जाने की सुविधा है, बड़ी तथा सुरम्य प्राकृतिक झीलें तथा जंगल, विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों एवम् जंगली जानवरों से सम्पन्न हैं तथा उसमें विभिन्न प्रकार की फूल-पत्ती तथा जीव-जन्तु हैं। सैकड़ों पुराने (रंगहीन धूल-धूसरित) मन्दिर, चर्च, शैक्षिक संस्थान, न्यायालय, सड़कें, राजमार्ग, रेलवे लाइन और सुरंगें और बहुत से अन्य खूबसूरत तथा प्रशंसा योग्य स्थान भी इस राज्य की धरती पर हैं। मैं समझता हूँ कि बिना पढ़े-लिखे लोग यहाँ पर नहीं हैं। इस तिरुवितांकूर राज्य के मध्य भाग में तिरुवल्ला नाम का तालुका (तहसील) है। इस राज्य में बहुत से स्थानों के नाम मुख्य मन्दिरों से जुड़े हैं। तिरुवल्ला में भी "श्री बल्लभ"² का एक मन्दिर है और तिरुवल्ला उसका तद्भव (बिगड़ा हुआ) रूप है।

मेरा जन्म तिरुवल्ला मन्दिर के पूर्व की ओर 2 फर्लांग (लगभग 400 मीटर) दूर स्थित, मणिमला नदी की सहायक नदी, चक्र शालक्कडव के समीप स्थित एक घर में हुआ था। आज भी इस स्थान को कुज़ियिलप्परम्बिल वीड नाम से जाना जाता है। यह घर एक प्राचीन नायर परिवार का था और उस परिवार के लोगों को काफी सम्मान मिल चुका था।

अतः कुरुप्प और पिल्लइ आदि के विशेषण मेरे परिवार की महानता की घोषणा करते थे। किन्तु समय के साथ कोई भी चीज स्थाई नहीं है या

तो उस परिवार के मुखिया के अनाप-शनाप खर्च के कारण या लापरवाही से करीब-करीब उनकी सभी जमीन जायदाद नीलामी में बेची जा चुकी थी। किन्तु यहाँ एक चीज बताना चाहूँगा कि कई पीढ़ियों तक यह परिवार संयुक्त रूप से रहा और मलयालम युग के अनुसार वर्ष 1030 में (1854 ई०) यह परिवार दो शाखाओं में बंट गया।

पाप्पि अम्मा तथा उम्मिणी अम्मा एक माँ की दो बेटियाँ थीं। पाप्पि अम्मा के दो पुत्री नारायणी अम्मा और पार्वती अम्मा तथा दो पुत्र गोविन्द पिल्लइ और पदमनाभ पिल्लइ थे। रुक्मणी अम्मा (उम्मिणी अम्मा) के दो पुत्र केशव पिल्लइ तथा नारायण पिल्लइ तथा एक बेटा कुट्टि अम्मा थीं। उम्मिणी अम्मा को अपने पति से अच्छी खासी धनराशि प्राप्त हुई थी, पूर्व में संयुक्त परिवार के कर्ता-धर्ता का कार्यभार गोविन्द पिल्लइ के पास था जो पटवारी (पार्वत्यकार, तहसीलदार के अधीन एक कनिष्ठ वित्त कार्मिक) थे और उन्होंने मात्र एक छोटे घर को छोड़कर पूरी पारिवारिक जमीन जायदाद नीलामी में बेच दी थी और इसमें से कुछ जमीन जायदाद बहुत कम मूल्य में उम्मिणी अम्मा के पति ने खरीद कर उन्हें दी थी। इस कारण उम्मिणी अम्मा का परिवार तथा पारिवारिक सदस्य खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहे थे और उन्होंने एक अलग घर बनाकर रहना शुरू कर दिया। इस घर को किज़के कुज़ियिल परम्ब (निचली जमीन का पूर्वी क्षेत्र) के नाम से जाना जाता था, जबकि दूसरी बहन का परिवार एक मिट्टी के उस निचले क्षेत्र के पश्चिमी भाग में एक मकान (पडिज्जारे कुज़ियिल परम्ब) में रहता था। वे किसी प्रकार अपनी जिन्दगी को गुजार रहे थे। तिरुवल्ला (श्री बल्लभ) क्षेत्र के मतिल भागम् (मन्दिर की चार दीवारी) के पास वह श्रेष्ठ नायर परिवार धान को कूट-पीट कर चावल बनाता था और श्री बल्लभ मन्दिर को प्रतिदिन की चावल आपूर्ति करता था। पाप्पि अम्मा को इससे कुछ धन प्राप्त होता था और कुछ धन उन्हें अपने पति से भी प्राप्त होता था। उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह किया।

बड़ी पुत्री की मृत्यु बच्चे को जन्म देते समय हो गयी और छोटी पुत्री (पार्वती अम्मा-मेरी माँ) का विवाह तिरुवल्ला मन्दिर क्षेत्र के पास रहने वाले नारायणन नायर के साथ कर दिया। श्री नारायणन नायर मन्दिर के सभी दीप पात्रों की सफाई, रखरखाव तथा जलाने का कार्य पारम्परिक तरीके से करते थे। यद्यपि उनके परिवार के पास जमीन-जायदाद भी थी किन्तु उनका ध्यान कभी उस ओर नहीं गया, वे अपने कार्य से प्रसन्न तथा मन्दिर से प्राप्त सीमित आय से संतुष्ट थे। पार्वती अम्मा को भी उनसे भरपूर सहयोग मिला। वे भगवान के पक्के भक्त तथा सांसारिक जीवन से

1 तिरुवितांकूर : त्रवणकोर

2 श्री का अर्थ लक्ष्मी तथा बल्लभ का अर्थ प्रियतम। श्री बल्लभ का अर्थ है लक्ष्मी का प्रियतम अर्थात् श्री विष्णु। तिरु का अर्थ - श्री, वल्ला, बल्लभ का तद्भव रूप है।

निर्लिप्त थे। शिक्षा पूर्ण करने के बाद गोविन्द पिल्लइ तथा पदम्नाभ पिल्लइ (दोनों मामा) साधारण सी सरकारी नौकरी करने लगे। पाप्पि अम्मा की मृत्यु के बाद पूरे घर को चलाने की जिम्मेदारी पार्वती अम्मा (मेरी माँ) पर आ गई। यद्यपि मेरी माँ अनपढ़ थी, किन्तु उनकी सूझबूझ और कार्य को पूर्ण करने की क्षमता का सानी नहीं था।

उनमें विश्वासनीयता, दयालुता और स्वाभिमान के गुण कूट-कूट कर भरे थे, दूसरे के कष्ट में, दिल खोलकर उसे सहयोग करना, उनकी आदत थी। विवाह के कई वर्षों तक मेरी माँ को शिशु नहीं हुआ और वह पुत्र प्राप्ति के लिये धार्मिक अनुष्ठान एवं पूजा आदि करती रहती थीं। भगवान की पूजा अर्चना, गरीबों को दान, व्रत, प्रायश्चित और मन्दिरों में जाकर प्रार्थना करने का ही परिणाम होगा कि 25 वर्ष की अवस्था में वह गर्भवती हुई और शुक्ल पक्ष की दशमी को उत्रिष्टाति नक्षत्र (उत्तर भाद्रपद या उत्तर प्रोषथापदा) धनुर्लग्न में, वृश्चिकम् (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक) मलयालम युग के अनुसार 1054 वर्ष में (समरूप दिनांक 23 नवम्बर 1879 ई०) को एक लड़के का जन्म हुआ।

यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस अवसर पर मेरे माता-पिता, मामाओं तथा पड़ोसियों को कितनी खुशी हुई होगी और बच्चे का नाम नीलकण्ठन रखा गया। 4-5 वर्ष की अवस्था में इस बच्चे की विद्या का आरम्भ भक्त प्रयत्नु वार्यत्त में कराया गया, फिर शिक्षा के लिये विख्यात शिक्षाविद् वेलु आशान के कलरी* और विद्यालय में वर्णमाला सीखने गया। आशान बच्चों को बहुत लाड़-प्यार से समझाते थे। जब वह बच्चा दो माह के अन्दर मलयालम की वर्णमाला पढ़ने और वर्णों को जोड़कर शब्द बनाना सीख गया और साथ ही गिनती गिनना तथा जोड़ घटाना सीख गया, तब उसे मन्दिर के पास गवर्नमेण्ट सेन्टर स्कूल में पढ़ने भेज दिया गया। वहाँ वह चार-पाँच वर्ष तक पढ़ा। वहाँ वह स्कूल की उच्चतम कक्षा तक पढ़ा। वहाँ के सभी अध्यापक उसे प्यार करते थे और उसने सभी कक्षा में पुरस्कार प्राप्त किये।

इसके घर के पास एक घर जिसका नाम "नल्लूपपरम्बिल" था, वहाँ उसका एक मित्र केशव पिल्लइ रहता था। एक दिन यह बालक केशव पिल्लइ के घर गया, उसने उसे अंग्रेजी की वर्णमाला ए, बी, सी, डी पढ़ते हुए

देखा। केशव पिल्लइ का बड़ा भाई गवर्नमेण्ट इंग्लिश स्कूल का छात्र था और वह अपने भाई को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाने की दृष्टि से तैयारी करवा रहा था। उसे देखकर इस बच्चे के मन में अंग्रेजी पढ़ने की तीव्र इच्छा जागृत हुई और उसने अंग्रेजी वर्णमाला के 26 वर्णों को सीखा। घर आकर सारी बात अपनी माँ को बताई। अगले ही दिन इसके मामा उन दोनों बच्चों को लेकर अंग्रेजी स्कूल गये और उन्हें कक्षा प्रथम में दाखिल करा दिया और इसके मामा ने पढ़ने का पूरा खर्च अपने जिम्मे लिया और यहाँ भी नीलकण्ठन अध्यापकों का प्यारा बना।

इस स्कूल में IV फार्म (वर्तमान कक्षा 9) तक की कक्षा थी। पूज्य श्री एन० नारायण अय्यर उसके प्राध्यापक थे। निश्चय ही वे बहुत समर्थ व्यक्ति थे। उन्हें "टाइगर आफ आलप्पुजा" (आलप्पुजा* का शेर) के विशेष नाम से जाना जाता था। जो स्पष्ट, रूप से उनके शौर्य का परिचायक था।

मुझे अपनी आगे की पढ़ाई करने के लिये कोट्टायम के सी.एम.एस. कालेज में भेजा गया, जो तिरुवल्ला के उत्तर में 16 मील (26 कि०मी०) दूर है। फार्म V (10वीं कक्षा) अच्छी श्रेणी में पास करने के बाद मैं फार्म VI (एस.एस.एल.सी.स्तर) में प्रवेश किया।

उस जमाने में, आज की तरह यातायात की सुविधाएं नहीं थीं और सभी यात्रा पैदल ही की जाती थी। छुट्टी के बाद एक बार परीक्षा का परिणाम जानने के लिये, मैं कोट्टायम गया, फिर शीघ्र ही संदूक, किताबें और कपड़े लेने के लिये मैं घर आया। मेरी माँ एवं परिवार के अन्य लोगों के लिये यह खुशी का समय था।

वस्तुतः सांसारिक व्यक्तियों को सभी खुशियाँ उनकी इच्छाओं की पूर्ति से या उनकी कल्पनाओं की उड़ान से मिलती हैं। उसी प्रकार इस समाचार से पार्वती अम्मा भी मन ही मन में कल्पनाओं की उड़ान में भविष्य के प्रति आशान्वित तथा खुश थीं। उस समय मेरे दो भाई तथा दो बहनें थीं। मेरा एक भाई कृष्ण पिल्लइ बहुत ही कुशाग्र और मेहनती था।

"अस्माकम् तु मनोरथो परिचिता प्रासादवापी तद् क्रीडा कानन केलि कौतुकः जूषामायुः परम क्षीयते"

*कलरी - जहाँ बच्चों को शरीर विकसित करने के लिये विभिन्न खेल तथा अभ्यास कराया जाता है।

*आलप्पुजा इस राज्य के पश्चिमी समुद्र तट का बड़ा वाणिज्यिक तथा सामुद्रिक केन्द्र है।

पिता और मामा को उससे बहुत ज्यादा उम्मीदें थीं। दोनों ही बालक बहुत कुशाग्र बुद्धि थे और एक मेट्रीकुलेशन में आ गया था। अच्छे उज्ज्वल भविष्य आशा और खुशी से विचारों से पूरा माहौल भरा था। जैसे अब कहीं कोई कमी नहीं है, इस विचार से घर के बड़े-बूढ़े लोगों का दिल गदगद था। शीघ्र ही इस पर से पर्दा उठ गया। इसके बाद जो कुछ भी हुआ वह निश्चय ही इतना भयंकर था, जिसे शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता।

नीलकण्ठन पिल्लइ उस समय अपने घर पर मात्र एक दिन रुका। उसी रात में उसे दाहिने पैर में थोड़ा-थोड़ा दर्द हुआ। माँ ने जब उसके बारे में जानना चाहा तो उसने माँ को बहलाते हुए कहा कि कोई खास बात नहीं है। बालक के अन्दर यह डर था कि यदि उसने सच बता दिया तो घर के लोग उसे कोट्टायम जाने से मना कर देंगे। अगले दिन प्रातः 5 बजे कुछ हल्का खा-पी कर वह चल दिया। उसके पैर का दर्द बढ़ने लगा, किन्तु दर्द का विचार किये बिना वह 10 बजे चंडगनाशेरि (तिरुवल्ला से 8 कि०मी० उत्तर तथा कोट्टायम से 16 कि०मी० दक्षिण एक शहर) जा पहुँचा। उस दिन, चंडगनाशेरि, जो मात्र 8 कि०मी० था, पहुँचने में 5-6 घंटे लगे। थकान और दर्द से निढाल और भूख से व्याकुल वह मार्ग में वट वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया। उसी समय उस मार्ग पर एक नम्बूदरि ब्राह्मण आ रहा था। उसने कहा कि तुम बहुत थके और कमजोर लग रहे हो, घर चलने का न्यौता देते हुए उन्होंने कहा कि मेरे घर चल कर कुछ भोजन कर लो, फिर आगे जाना। प्रसन्नता से उस सज्जन ब्राह्मण के घर जाकर मैं पहले नहाया, फिर भोजन किया और उसके बाद आगे की यात्रा शुरू की। उन सज्जन से फिर कभी दोबारा मुलाकात का सुअवसर नहीं मिला। उन सज्जन की सहृदयता और दयालुता ने मेरे मन पर एक अमिट छाप छोड़ी है और जब भी मैं उस क्षण को याद करता तो मेरे मन तथा मस्तिष्क पर वह और गहरी हो जाती है। कुछ और आगे चलने पर, मैंने सामान ढोने वाले को, तेजी से जाकर कालेज हास्टल में सामान रखकर, चले जाने के लिये कहा। उसने तेजी से जाकर हास्टल में सामान रखा और लौटते हुए वह रास्ते में मुझे मिल गया, किन्तु अपने दर्द के बारे में उसे मैंने कुछ भी नहीं बताया, क्योंकि मुझे डर था कि यदि माँ को इसके बारे में पता चलेगा तो वह बहुत दुखी होगी। आदमी के छोटे दृष्टिकोण को देखिये — यह सही है कि निश्चित रूप से अपनी पढ़ाई को जारी रखने की प्रबल इच्छा के कारण मैंने ऐसा किया। किसी प्रकार रुक-रुक चलते हुए मैं सांय 5 बजे हिन्दू हास्टल पहुँचा। पहुँचते ही मैं

दर्द के मारे गिर गया। हास्टल के प्रबन्धक श्री विल्वाट्टात्तु राघवन नाम्बियार और मेरे सहपाठियों ने दर्द निवारण के लिये, क्या किया जाये, पर विचार-विमर्श किया। यह सोचकर कि यह दर्द हड्डी के स्थान से हट जाने के कारण या किसी खिंचवा के कारण है, वे मुझे क्रिश्चियन मदर के पास ले गये और मेरे पैर की मालिश करवायी। इससे दर्द और बढ़ गया। बाद में यह सच्चाई सामने आयी कि नीलकण्ठन पिल्लइ का दर्द *रिहमेटिस्म तथा पैरालिसिस (पक्षाघात) से प्रभावित होने के कारण है।

यह ज्ञात होने पर वे मुझे वैद्य के पास ले गये। उसने सलाह दी कि इस स्थिति में पैर पर मालिश करवाना भारी भूल थी तथा समझाया कि मैं शीघ्र तिरुवल्ला लौट जाऊँ। यह मेरे कोट्टायम पहुँचने के तीसरे दिन की बात है। घर कैसे पहुँचा जाय? दर्द इतना था कि मैं एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता था। स्थिति कुछ ऐसी थी कि मैं सीधा पीठ के बल लेट जाता था, इस असहनीय दर्द के कारण करवट लेना भी मेरे वश की बात नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में मुझे कौन तिरुवल्ला पहुँचाता। मेरे सहपाठी ही नहीं, हॉस्टल के सभी लोग मुझे चाहते थे। उन्होंने तिरुवल्ला पहुँचाने के लिये आपस में विचार-विमर्श किया। मेरे दो सहपाठियों एन० पी० बेलु पिल्लइ तथा गोविन्द पिल्लइ मुझे घर छोड़ने आये। करीब 10 बजे रात्रि को हम लोग छोटी सी चप्पू वाली नाव में बैठे तथा अगले दिन 2 बजे दोपहर को हम लोग पेरिंगरा घाट जा पहुँचे। वहाँ से घर पहुँचने के लिये डेढ़ नाडिका समय चाहिये, पर वहाँ कैसे पहुँचा जाये।

मेरे घर के समीप 'उरयिल' नाम से एक घर था, जिसके गृह स्वामी श्री केशव पिल्लइ थे और मुझसे विशेष प्रेम रखते थे और यह बात वेलु पिल्लइ को भी पता था। वेलु पिल्लइ मेरी बीमारी का समाचार अचानक मेरी माँ तथा परिवार के सदस्यों को बताने में झिझक रहा था। उसने नाव ही में मेरे लेटने का इंतजाम किया और केशव पिल्लइ को मेरे स्वास्थ्य तथा आने की सूचना देने चला गया। सूचना से चिन्तित और परेशान होकर केशव पिल्लइ मेरे घर गये तथा मेरे मामा श्री पदम्नाभ पिल्लइ को समाचार दिया, किन्तु मेरी माँ को कुछ नहीं बताया। किन्तु मेरी माँ ने केशव पिल्लइ, मामा तथा अन्य परिवार के सदस्यों के चेहरे देखकर यह अनुमान लगा लिया कि कोई भयंकर दुर्घटना हुई है। मेरी माँ कुछ दिन पूर्व से

*रिहमेटिस्म तथा पैरालिसिस : इस बीमारी से प्रभावित होने पर शरीर का कोई भी भाग प्रभावित होता है तथा वह भाग अपनी शारीरिक शक्ति की क्षमता खो देता है।

खराब तथा डरावने सपने देख रही थी और मेरी माँ के हाथों से तेल से भरा मिट्टी का बर्तन छूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। इस कहावत की सत्यता उनके सामने थी।

दोपहर के करीब 3 बजे मेरे मामा, केशव पिल्लइ, बेलु पिल्लइ तथा 2-3 कुली एक आराम कुर्सी लेकर पेरिंगरा घाट पर नाव के पास आये। मुझे कुर्सी में बैठाकर धीरे-धीरे करीब 4 बजे घर पहुँचा दिया। मेरी माँ को सारी बात का पता लगा तो उन्होंने धैर्य खो दिया। मेरे मामा तथा अन्य परिवार के सदस्यों ने उन्हें सात्वना दी तथा यह समझाया कि आगे क्या करना है। उन्होंने आराम से एक जगह लेटने का इंतजाम कर दिया। वेलु पिल्लइ तथा गोविन्द पिल्लइ को शीघ्र कोष्ठायम वापस जाना था। माँ ने उन्हें पेट भर भोजन कराके, वापस जाने के लिये आवश्यक पैसे देकर विदा किया।

अन्यथा चिन्तितम् कार्यम् दैवम् अन्यत्र चिन्तयेत्

(हम व्यर्थ ही चिन्तित रहते हैं जबकि भगवान हमारे लिये अन्यत्र कुछ और ही सोचता है।)

*वन्नुवोणम् कज्जिञ्जु विशुवेन्नुम्
वन्निल्लल्लो थिरुवातिरयेन्नुम्
इत्थमोरोन्नु चिन्तिच्चिरिक्कवे
चत्तुपोकुन्नु कष्टम् शिवः शिवः*

(ओणम् आया और चला गया। विशु का त्यौहार भी हो चुका, किन्तु थिरुवथिर (अर्द्ध दर्शनम्) नहीं आया है। इन्हीं बातों के बीच या अन्य विचारों में, हे भगवान् (शिव) मनुष्य इस दुनियाँ से चला जाता है।)

यहाँ भी सारे स्वप्नों पर तुषारापात हो गया। फिर भी आशा की नयी ज्योति जीवित हो रही थी। मेरे भयंकर दर्द था। दर्द इतना था कि यदि कोई मेरे पलंग को भी छू लेता तो दर्द बढ़ जाता। मेरी भूख चली गयी थी, जितनी मैं कोशिश करता कि अपने दर्द और कष्ट के बारे में मैं अपनी माँ एवं परिवार वाले को न बताऊँ, उतना ही सब व्यर्थ हो जाता। मेरे परिवार के सभी लोग मेरे कारण बहुत दुखी थे। मेरे पिता तीर्थ यात्रा पर रामेश्वरम् गये हुए थे। मेरी शिक्षा का सारा खर्च मेरे मामा श्री गोविन्द पिल्लइ वहन

कर रहे थे। वे मुसिफ कोर्ट में अमीन¹ थे और वह कार्यालय के कार्य से बाहर गये थे। मेरे पिता भी पक्षाघात के रोगी थे और उन्हें चेङ्गन्नूर² के श्री नानू वैद्य के आयुर्वेदिक उपचार से लाभ हुआ था। हर एक को उस वैद्य के प्रति अत्यधिक विश्वास था और मेरे मामा स्वयं मेरे उपचार के लिये उन्हें लाये और उनके बताये गये तरीके से उपचार शुरू कर दिया गया। मेरे पिता मेरी दशा को देखकर व्याकुल हुए, फिर भी उन्हें सारे कष्टों को सहने की शक्ति थी।

किसी आयुर्वेदिक चिकित्सा की तैयारी करना तथा उससे रोगी की चिकित्सा भौतिक रूप से करना बहुत ही श्रम साध्य कार्य था। उस जमाने में चिकित्सक केवल दवा की सामग्री और उनका अनुपात बताते थे। फिर उन पेड़-पौधों को ढूँढ़ कर पहचानना, उनकी जड़, पत्ती और बीज आदि को तोड़ना, इकट्ठा करना, तेल तैयार करना और फिर क्षीरबला तैयार करना, कषाय को तैयार करना, जिसे बार-बार बदलकर 108 बार में तैयार किया जाता हो, के साथ ही बहुत से घी, तेल और अन्य लेप सामग्री तैयार करना आदि। इसके अतिरिक्त बहुत से लम्बे समय की प्रक्रिया वाले तथा कठिन मेहनत वाले कार्य घर के लोगों को ही अपने घर पर ही करने पड़ते। घर के सदस्यों के लिये अलग से यह अच्छा खासा काम होता था। विशेष रूप से 'किजिओ'³ या 'पिजिच्चिलो'⁴ से इलाज किया जाना हो तो 4-5 बाहरी व्यक्तियों की भी जरूरत अकसर पड़ जाती थी और इस सब कार्यों में अच्छा खासा पैसा भी खर्च होता था। यह मेरी माँ की क्षमता, लगन और कार्यों को समयानुसार ठीक ढंग से तैयार कर निपटाने की समझ थी कि वे बिना किसी विलम्ब के कार्यों को पूर्ण कर सकी।

उन दिनों केरल में सब जगह चिट फण्ड की स्कीम चला करती थी। माँ जब कभी भी चिट फण्ड की स्कीम में शामिल होतीं तो अधिकतर पहली बार में ही चिट उनके नाम निकल आती। उस धन के ब्याज से वह उस फण्ड की किश्तें भरती रहती थीं और इस प्रकार मूल धन बचा रहता है। इस प्रकार उन्होंने घर में प्रयुक्त होने वाला सामान कुछ नकद धनरशि, धान्य और जेवरात बना लिये। मेरे चाचा खर्चीले थे और कोई यह कह

1 अमीन : कोर्ट में केस को पेश करने वाला सहायक।

2 चेङ्गन्नूर : तिरुवल्लु से 11 किलोमीटर दक्षिण में स्थित एक शहर।

3 किजिओ : दवा को कपड़े पर लगाकर फिर शरीर पर लपेटना।

4 पिजिच्चिलो : तेल लगाकर मालिश करना।

सकता है कि मेरी बहनों की शादी में तड़क-भड़क में ही अपनी क्षमता से ज्यादा खर्च कर चुके थे और माँ के द्वारा इकठ्ठा किये गये धन, सामग्री आदि को लगभग समाप्त कर चुके थे। माँ को भी खुशी के मौकों पर खर्च करना अच्छा लगता था। माँ के मन में यह बात कहीं न कहीं हमेशा घूमती रहती कि मेरे बच्चे जब बड़े होंगे, तो मेरे पास किसी बात की कमी नहीं होगी। उनकी सारी उम्मीदें मेरे पर टिकी थीं और ऐसे कठिनतम मौकों पर मैं बिल्कुल बिस्तर से लगा था। पूरे घटनाक्रम को देखकर पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसी परिस्थिति में, मेरे कारण, वात्सल्यमयी माँ और परिवार के अन्य सदस्यों पर क्या गुजरी होगी। हे भगवान! स्व कुछ आप का खेल है। कौन इस रहस्य को समझ सकता है।

अचिन्त्यवैभवाय नमो नमः

परमपिता परमेश्वर आपको शत्-शत् प्रणाम। आप हमारी सोच और समझ से परे हैं।

श्री नानू वैद्य की चिकित्सा से मुझे कोई खास लाभ नहीं हुआ। इसके बाद श्री कारक्कल श्री माधव वैद्य से उपचार कराया गया। इसके बाद भी अष्ट वैद्य, श्री वयस्करमूस से उपचार हुआ। 'किजिओ' और 'पिजिच्चिलो' का उपचार भी 4-5 बार कराया गया और इस पर अच्छा खासा पैसा भी खर्च हुआ।

रोग ग्रस्त होने के उपरान्त भी मैंने अपने समय को पूर्णतः व्यर्थ नहीं जाने दिया। बचपन से ही मुझे प्रातः उठकर स्नान करके मन्दिर जाने, रामायण और भागवत् को सुनने और पढ़ने की उत्कण्ठा रहती थी और एकादशी, प्रदोष आदि धार्मिक दिनों में आवश्यक उपवास तथा धार्मिक कर्म में रूचि थी। मेरे पिता, एजुत्तच्छन्ते रामानुजन् की श्री भागवतम् पढ़कर, माँ और अन्य को सुनाते थे। कभी-कभी मैं भी उसे सुनता था। एक बार जब प्रहलाद की कहानी पढ़कर सुनाई जा रही थी तो मुझे सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। क्या मुझे भी कभी प्रहलाद की तरह भक्ति प्राप्त होगी?

जैसे ही मेरे मन में इस विचार ने संकल्प लिया, मेरी बीमारी के कारण उत्पन्न कठिनाई और दुख से मुझे छुटकारा मिल गया। मेरा सारा दुःख इस कारण था कि बीमारी के कारण मैं अपने घर परिवार के लिये परेशानी का कारण बन गया हूँ। अभी भी मैं दूसरों के दुःख से चिन्तित था। जब आसपास के क्षेत्र के लोग मुझे देखने आते, वे कहा करते थे, इतने अच्छे लड़के को ऐसा हो गया ना! वे दुःखी होते तो मैं उन्हें सात्वना देता।

मैं जब तिरुवल्ला में स्कूल में पढ़ा करता था, तो मैंने कई श्लोक हृदयंगम कर लिये थे। मैं "प्रबुद्ध भारतम्" इत्यादि मैग्जीन भी पढ़ा करता था। मैंने भगवद् गीता का अंग्रेजी में अनुवाद भी पढ़ा। इसके बाद भी मेरे मन में संस्कृत भाषा में लिखे मूल ग्रंथ को पढ़ने की इच्छा जगी। इसी कारण से मेरे मन में संस्कृत पढ़ने की बलवती इच्छा थी। मेरी बीमारी से रोग ग्रस्त होने पर पलंग पर पड़े रहने पर यह इच्छा लगभग पूरी हुई।

एक बार जब श्री के० पी० नीलकण्ठ पिल्लई जो बीमारी के समय मुझे देखने आये, उन्होंने मुझे भण्डारकर के संस्कृत की पाठ्य पुस्तक के दो भाग दिये। मैंने अपने आप दोनों पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दी। मैंने भगवद् गीता को हृदयंगम कर लिया। जब मैं मलयालम के स्कूल में पढ़ा करता था उस समय मैंने अमरकोश, सिद्धरूपम् संस्कृत ज्ञान दीपिका, श्री रामोदन्तम् इत्यादि पुस्तकें और बहुत से संस्कृत श्लोक पढ़े थे। अब बीमारी में बिस्तर पर लेटे-लेटे मैंने भर्तृहरि और अन्य कवियों की रचनाएं भी ध्यानपूर्वक पढ़ी और कुछ हद तक इस प्रकार संस्कृत को समझने की क्षमता पैदा हुई।

बिस्तर पर पड़े-पड़े इस प्रकार 5 साल का लम्बा समय व्यतीत हो गया। उपचार जारी रहा। मेरे अन्दर ये विचार घुमड़ते रहते थे कि मेरे माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य मेरे कारण बहुत सा दुःख और कष्ट पा रहे हैं। अब मैं छड़ी के सहारे थोड़ा बहुत चल लेता था। बहुत से लोग इस बीच मुझे देखने आये। वे भगवान गुरुवायूरप्पन की महिमा का वर्णन किया करते थे। गुरुवायूर में पक्षाघात से ग्रसित श्री नारायण भट्टतिरि ठीक हो गये और मैंने नारायणीयम् के श्लोकों के बारे में सुना था, जो उनके हृदय से स्वतः भगवान के सामने प्रकट किये। मेरे मन में विचार आया कि महान स्थान गुरुवायूर पहुँचा जाये। एक तो गुरुवायूर बहुत दूर था और दूसरे उससे भी अधिक कठिन माँ और परिवार के सदस्यों से वहाँ जाने की अनुमति मिलना।

अतः मैं बिना किसी को बताए किसी प्रकार चला जाऊँ। वैसे तो मैं शारीरिक रूप से कमजोर था, किन्तु मानसिक रूप से मैं कोई कमजोरी या कमी नहीं महसूस कर रहा था। चङ्गनाशेरि मेरे घर से मात्र 6 मील (9 कि०मी०) दूर था। यदि मैं वहाँ किसी तरह पहुँच जाऊँ तो मैं तोणि (छोटी नाव) से नदी के मार्ग से एर्नाकुलम जा सकता हूँ और फिर बैलगाड़ी से त्रिचूर पहुँच सकता हूँ और गुरुवायूर, त्रिचूर से मात्र 16 मील (25 कि०मी०) है। मैंने यह सारी सूचना इकठ्ठा की। "ईश्वरो रक्षतु"

(भगवान मेरी रक्षा करें), जिस रात्रि मैंने जाने की योजना बनायी थी, मैंने उस दिन आवश्यक तैयारी की। एक छोटे से बण्डल में 2-3 किताबें, 2-3 कपड़े और थोड़े पैसे एकत्र किये। बिस्तर में इस सबको छिपाकर रख दिया, जिससे किसी को पता न चले। मैंने एक छोटा सा पत्र लिखकर तैयार किया। आप सब लोग और मैं भी दुःखी हूँ, इस कष्ट का निवारण करने के लिये मैं अभी घर छोड़कर जा रहा हूँ। किसी को दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है, अतः मैं पत्र लिखकर जा रहा हूँ। उस रात्रि को मैंने कषाय (काढ़ा) लिया। अगले दिन की भी दवा तैयार थी। मैं काढ़ा और खाना पी-खाकर सो गया। मेरा कमरा अन्दर था और माता-पिता तथा घर के अन्य सदस्य आगे बरामदे में सोते थे। मैं उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था, जब घर के सभी सदस्य गहरी नींद में सो जायें। करीब आधी रात में जब सब लोग गहरी नींद में सो गये, मैं गठरी दबाये एक छड़ी के सहारे चुपचाप कमरे से बाहर निकल आया। मैंने एक तकिया बिस्तर पर रखा और पत्र को दरवाजे पर चिपका दिया। मैं एक ऐसा जघन्य अपराध करने जा रहा था जो मैंने कभी सोचा नहीं था। मेरे मन में दृढ़ विश्वास था कि गुरुवायूर पहुँचकर पूजा करने से मुझे बीमारी से छुटकारा मिल जायेगा। इस विश्वास के कारण मेरे मन में यह विचार ही नहीं आया कि घर से गायब होने से मेरे माता-पिता को असहनीय दुःख होगा। यह भगवान की इच्छा थी।

फिर बरामदे से निकलकर मैं आंगन में आ गया और वहाँ से सीधे सड़क पर जब मैं करीब 1/2 मील चला गया तो मुझे जान-पहचान का एक व्यक्ति दिखाई दिया किन्तु भाग्यवश उसने मुझे नहीं देखा। यदि उसने देखा होता तो मेरे जीवन की कहानी कुछ और ही होती। शायद भगवान की इच्छा थी जो मुझे ले जा रहे थे। मन्दिर के पूर्वी प्रवेश द्वार पर पहुँच कर मैंने भगवान को प्रणाम किया और क्षमा याचना की, और उस अन्धेरी रात्रि में मैंने अपनी यात्रा जारी रखी। भोर होते ही मैं पेरुन्न (चङ्गनाशशेरि) जा पहुँचा। वहाँ एक विख्यात सुब्रह्मण्य का मन्दिर है और उससे सटा हुआ सत्र (एक छत से ढका हुआ स्थान जहाँ लोग इकठ्ठा रहते हैं - एक प्रकार की सराय)। इस सत्र के अन्दर जाकर उसकी देखभाल करने वाले से स्वीकृति लेकर अपने सामान को रखकर थोड़ी देर विश्राम किया। मैंने उसे सब सच-सच बता दिया। वह मेरे घर-बार तथा चाचा इत्यादि के बारे में अच्छी तरह जानता था।

उसने मुझसे घर वापस जाने का आग्रह किया और यह भी धमकी दी कि वह घर वालों को सीधे-सीधे सब कुछ बता देगा। मैंने धीरे-धीरे

समझा बुझा कर उसे जब सब बताया और उसे घर से गुरुवायूर जाने का कारण समझाया, तो वह बड़ी मुश्किल से सहमत हुआ। मैंने उसे एक जोड़ा नये कपड़े भेंट किया।

जो भी होगा, देखा जायेगा, मैं पहले नहाकर मन्दिर में प्रार्थना करूँ। पिछले 5 वर्षों से मैंने साधारण पानी से नहीं नहाया था। मैं 5 अम्लीय पत्तियों और फूल की बुड़ी को पानी में उबाल कर फिर पानी को ठंडा करके नहाता था। अब मुझमें काफी साहस था। मैंने मन्दिर के तालाब में डुबकी लगायी और फिर नहाकर मन्दिर में भगवान की पूजा करने गया। सत्र की देखभाल करने वाला मुझे भोजन के लिये अपने घर ले गया। अच्छा चावल और रसम खिलाया। ऐसा नहीं था कि मैं भूखा नहीं था फिर भी खाना मेरे गले से नीचे नहीं उतर रहा था। मैं एकाएक माँ और घर के अन्य सदस्यों के बारे में सोचकर चिन्तित हो गया।

क्या मुझे घर वापस जाना चाहिये? किन्तु मेरा मन उसके लिये तैयार नहीं था। मन ही मन मैंने गुरुवायूर जाने का निश्चय किया। खाना खाकर मैं सत्र वापस आ गया। करीब 4 बजे सायं मैं घाट बाजार (जहाँ देसी नाव इंतजार करती थी) की ओर चला। मुझे ऐसा लगता था कि कोई देखभाल करने वाला भी मेरे साथ चले।

वह बाजार का दिन था। चङ्गनाशशेरि बहुत बड़ा विख्यात व्यापारिक केन्द्र था। बहुत सी सामग्री और सब्जियाँ बाजार के दिन यहाँ बेचने के लिये दूर-दूर से लाई जाती थी और विभिन्न सामग्रियों से भरकर देसी नाव दूसरे स्थानों को ले जाने के लिये तैयार की जाती थी। मैं एर्नाकुलम् जाने वाली नाव के पास पहुँच गया। नाव वाले की अनुमति लेकर अन्दर जाकर बैठ गया। यह हो सकता था कि कोई तिरुवल्ला से इस ओर जाये, अतः ऐसे लोगों से बचने के लिये मैं नाव में अन्दर केले के घौतों की तरफ छिपकर बैठ गया। नाव का किराया 4-5 आना (25-30 पैसे) से अधिक नहीं था।

यहाँ मुझे एक आदमी मिल गया जो मेरा सहयात्री बनने को तैयार हो गया। वह एक लम्बा अच्छा मजबूत व्यक्ति था और जो बिना किसी उद्देश्य के किसी भी जगह जाने के लिये तैयार था। जब उसने नाव पर चढ़ने से पहले मुझसे नाव में साथ चलने के लिये बातचीत की तो उसे लगा कि मेरे साथ उसे चलना चाहिये और वह मेरे साथ नाव में बैठ गया। वह अपने घर से झगड़कर आया था और घर से दूर भाग जाना चाहता था।

भगवान की सहायता के बारे में विचार कीजिये। यह असहाय

व्यक्तियों का सबसे बड़ा सहारा है। भगवान उन सबकी समय-समय पर सहायता करते हैं, जो उनको याद करते हैं। वह निश्चय ही सच्चे मायने में हमारे माता, पिता, मित्र और बन्धु हैं और ज्ञान, धन और सब कुछ हैं।*

जो यह सत्य समझता है, वह सब कुछ समझ गया। जो सच्चे मन से उसकी प्रार्थना करने की इच्छा रखते हैं, उसे सत्य से परिचित कराने के लिये उनके जीवन में दुर्भाग्य के क्षण और कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। "विपदा सन्तु नाः शाश्वत" देवी कुन्ती यह प्रार्थना करती थीं कि हमारी कठिनाइयाँ बनी रहें।

वह नाव 8-9 बजे रात्रि तक वहीं घाट पर खड़ी रही। यात्रियों को इस कारण अत्यन्त असुविधा और कष्ट का अनुभव हुआ। आज यात्रा की सुविधाएं कई गुना बढ़ गई हैं। आज बस, स्टीम बोट, रेलगाड़ी और इन सबसे बढ़कर वायुयान की सुविधा है। रात्रि 9 बजे के बाद नाव ने चलना शुरू किया। निश्चय ही मेरे मन को बहुत बड़ी राहत मिली। अगले दिन दोपहर को हम लोग एक स्थान "तन्नीरमुक्कम" जा पहुँचे। वह एक कर लेने वाली चेक पोस्ट थी और कर लेने वाले सरकारी सेवक वहाँ तैनात थे जो नाव के सामान की चेकिंग करते थे। इससे कुछ देर यात्रियों को आराम और राहत भी मिला और यह अवसर भी था जब कोई स्नान और भोजन कर सकता था। मैं और मेरा सह-यात्री नाव से बाहर आ गये। मन्दिर के तालाब में स्नान करके, मन्दिर में जाकर पूजा अर्चना की और दूकान में आकर कुछ खाने की सामग्री खरीदी। कुछ फल और एक दुकान से मुलायम चावल लिये और भोजन शुरू कर दिया। उन दिनों 5-6 नावें चङ्गनाशोरि से तन्नीरमुक्कम जाती थीं। उनमें से एक नाव से एक आदमी चिल्ला कर कह रहा था कि उस आदमी तथा इस आदमी को मत जाने दो। मैं तिरुवल्ला से आ रहा हूँ और वह (मेरे लिये) बिना बताये घर से आया। उसकी माँ और घर के अन्य सदस्य बहुत दुखी हैं और बेहाल हैं। अतः इस व्यक्ति को तिरुवल्ला वापस भेजना चाहिये। जैसे ही यह घोषणा सुनाई दी, पुलिस ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने मुझे धमकाया

और कहा कि पुलिस सुरक्षा में मुझे तिरुवल्ला ले जाया जायेगा। मुझमें एकाएक साहस आ गया। मैंने उनसे कहा — मैं अपनी परीक्षा के लिये एर्नाकुलम जा रहा हूँ। यदि मुझे आपने जबरदस्ती वापस भेजा तो मैं परीक्षा नहीं दे पाऊँगा और आप लोग इसके परिणाम के जिम्मेदार होंगे। मेरे द्वारा बिना हिचकिचाए और बिना डर के कहे, मेरी बात सुनकर उनके दिमाग में संदेह हो गया। उन्होंने कहा — तुम अपना गठ्ठर खोल कर दिखाओ। मैंने अपना बंडल खोला और उन्हें दिखा दिया। उन्होंने उसमें कपड़े और किताबें देखीं। वे केसरिया रंग का कपड़ा नहीं देख पाये जो उसके नीचे था। उन्होंने मुझे एर्नाकुलम जाने की इजाजत दे दी, वैसे ही नाव वाला जल्दी कर रहा था, मैं शीघ्रता से नाव में बैठ गया। आपाधापी में मैं कुछ भी नहीं खा पाया था, किन्तु मेरे सहयात्री ने भरपेट भोजन किया।

हवा नाव की दिशा में बह रही थी, जबकि यात्रा की दूरी निश्चित थी। हवा तीव्र चल रही थी, इसलिये कम समय में अगले दिन प्रातः 7 बजे हम एर्नाकुलम पहुँच गये। हम दोनों वहाँ उतर गये।

तन्नीरमुक्कम में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के दुख के बारे में जानकर मैं अत्यधिक उद्विग्न हो गया। जैसे ही मैंने एर्नाकुलम की धरती पर पैर रखा, मैंने डाक तार विभाग के आफिस की जानकारी प्राप्त की, क्योंकि मैं एर्नाकुलम इससे पहले नहीं आया था। मेरी माँ मुझे घर के आसपास भी जाने नहीं देती थी। माँ ने मुझे कोट्टायम इसलिये भेज दिया था, क्योंकि मेरी पढ़ाई के लिये ऐसा करने से बचा नहीं जा सकता था। मैं अपनी माँ की आँखों का तारा था, मैंने टेलीग्राफ आफिस ढूँढकर तिरुवल्ला एक टेलीग्राफ भेजा "Proceeding Guruvayur none need grieve" (गुरुवायूर जा रहा हूँ, कोई दुःखी नहीं होना)।

एक झील के किनारे बसे होने के कारण एर्नाकुलम के भवनों की भव्यता, शान और खूबसूरती तीन गुनी बढ़ जाती है। किन्तु यह मेरे लिये कोई मायने नहीं रखती थी। मैंने वहाँ मन्दिर की स्थिति की जानकारी चाही। मन्दिर के तालाब में स्नान करने के बाद मैंने मन्दिर के देवता की पूजा की। मन्दिर से कोई भी पके चावल खरीद सकता था। हम लोगों ने चावल खरीदे और खाये। हमें त्रिशूर जाना चाहिये। यहाँ से बैलगाड़ी या घोड़ा-गाड़ी मिलती थी जो 4-5 आदमियों को ले जा सकती थी। उन दिनों सामान्यतः लोग पैदल ही त्रिशूर की यात्रा करते थे। मैं इतनी दूर चल कर नहीं जा सकता था। एक बैलगाड़ी में कुछ और लोगों के साथ मैं बैठ गया और त्रिशूर की यात्रा शुरू की। मेरा सह-यात्री बैलगाड़ी में नहीं

*संस्कृत श्लोक :

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रवणम् त्वमेव
त्वमेव सर्वम् मम देव देवः॥

बैठा, किन्तु उसने मुझे नहीं छोड़ा। वह पैदल ही बैलगाड़ी के साथ-साथ चलता रहा। सांय 4 बजे हम त्रिशूर पहुँच गये। मैंने 6-7 आने (37-44 पैसों) किराया दिया होगा। वहाँ कई होटल थे। हम एक ब्राह्मण होटल में गये और सारा सामान वहाँ रख दिया। मैं वटकुम्नाथ (शिव) के मन्दिर में पूजा करने का बहुत इच्छुक था। मन्दिर के तालाब में स्नान करके मैं मन्दिर के एक खाली स्थान में घुस गया। मार्गदर्शक की सहायता के बिना इस बड़े मन्दिर में नियमानुसार पूजा करना सम्भव नहीं था। एक ऐसा आदमी मिल गया, जिसकी सहायता से हम दोनों ने विधि-विधान पूर्वक पूजा की। आरती (दीपाराधना) पूर्ण हो चुकी थी। मार्गदर्शक ने कहा, अब आप अपने होटल लौट जायें। यहाँ पर बहुत चोर हैं और आप का सामान गायब हो सकता है। इस कारण हम शीघ्र होटल वापस चले गये। हमने भोजन किया और रात्रि होटल में गुजारी।

भोर होते ही हम गुरुवायूर के लिये चल पड़े, जो लगभग 25 कि०मी० की दूरी पर है। मेरे पास बैलगाड़ी के किराये भर के भी पैसे नहीं थे, अतः हमने पैदल चलने का निश्चय किया। मैं किसी प्रकार छड़ी के सहारे चल पाता था। हमने यात्रा शुरू की और लोगों से रास्ता पूछते-पूछते आगे बढ़ते रहे। मेरी इस यात्रा में कष्ट के समय मेरे सह-यात्री ने सहायता की। कुछ अवसरों पर वह मुझे गोद में उठा कर चला। मैं वर्णन नहीं कर पा रहा हूँ। किसी प्रकार थोड़ा चलकर, थोड़ा बैठकर, थोड़ा घसीटकर, कभी-कभी तो पस्त होकर निढाल होकर जमीन पर लेट गया, पर किसी प्रकार मैं गुरुवायूर जा पहुँचा। बस मेरा सौभाग्य था।

मन्दिर के बाहर पूर्वी गोपुरम् (मन्दिर का प्रवेश द्वार) के आगे एक दीपस्तम्भ है। एक लम्बा ग्रेनाइट का खम्बा, जिस पर सैकड़ों दीप तेल, रूई की बत्ती जलाई जाती होगी। यह खम्बा श्री सी० संकरन नायर द्वारा स्थापित करवाया गया था। उस खम्बे के पास मैं पहुँच गया। मन्दिर के गर्भ-गृह का द्वार खुले हुए थे। यह लगभग 5 बजे का समय था।

तत्तावत् भाति साक्षात् गुरुपवनपुरे।

हन्त भाग्यम् जनानाम्।*

*यह प्रथम पंक्ति श्री मेलपत्तूर नारायण भट्टतिरि की अमर रचना "नारायणीयम्" से ली गयी है। यह भगवान नारायण की महिमा में वर्णित उनके विभिन्न अवतारों की प्रशंसा में लिखी गयी है।

मन्दिर के गर्भगृह से चारों ओर तीव्र प्रकाश निकलता है। इस अविस्मरणीय दृश्य को देखकर मेरे सारे कष्ट गायब हो गये जैसे सूर्य निकलने से अन्धकार भाग जाता है। प्रथम जो बात मेरे मन में आयी, वह यह थी, कि मैं गुरुवायूर पूजा करने इससे पहले क्यों नहीं आया। मैंने मन को समझाया कि अब ही सही, सौभाग्य से अब तो मैं गुरुवायूर आ गया। स्नान करने के पश्चात् मेरा मन पूर्ण रूप से भगवान का दर्शन करने के लिये विचलित था। स्नान करने के बाद मैं मन्दिर के अन्दर अपने सहयात्री के साथ जा पहुँचा। गर्भगृह के बाहर खड़े होकर मैंने भगवान की पूजा शुरू कर दी और उनके आशीर्वाद को महसूस किया। हम पुनः मन्दिर के पूर्वी खम्बे के पास पहुँच गये और गीले कपड़े सुखाने के लिये डाल दिये। चूँकि पूरे दिन भोजन नहीं किया था, इस कारण मेरा मन खाने के बारे में सोचने लगा।

मेरी ऐसे व्यक्ति से जान-पहचान हो गयी जो प्रतिदिन भजन और पूजा करता था। मैंने उसे कुछ पैसे दिये। करीब 9 बजे रात्रि में वह कुछ पके चावल लेकर आ गया, जो भगवान गुरुवायूरप्पन को चढ़ाये गये। पूर्वी गोपुर के पश्चिमी बरामदे में बैठकर हमने चावल खाये। नमक और पानी ही साथ था, किन्तु उस भोजन को करने में मुझे बहुत आनन्द आया। मैं कह सकता हूँ कि उससे पहले तथा उसके बाद मैंने ऐसा स्वादिष्ट भोजन नहीं किया। Hunger is the best sauce - भूख, खाने के स्वाद को कई गुना कर देता है, यह कहावत सच है। खाने के बाद हमने पूर्वी द्वार के बाहर जमीन पर कपड़ा बिछाया और पसर कर लेट गये और फिर खूब सोये।

(3) गुरुवायूर एवं नारायणीयम्

बहुत कम लोगों को ही इस स्थान तथा इस मन्दिर के बारे में ज्ञान होगा, अतः इस मन्दिर के बारे में एक-दो बातें बताना चाहता हूँ। गर्भ गृह के अन्दर जो विग्रह स्थापित है वह देवताओं के गुरु (बृहस्पति) और वायु-देवता द्वारा सम्मिलित रूप से स्थापित किया गया था। इस कारण इस विग्रह में विशेष देवत्व है। यह मूर्ति पवन देव और देव गुरु बृहस्पति को एक नदी में दिखाई दी थी। दोनों ने मूर्ति के स्वरूप एवं देवत्व की महिमा को समझकर उसे जन-साधारण की भलाई के लिये एक आदर्श स्थान पर स्थापित करने का निश्चय किया। उनके द्वारा चयन किये गये स्थान का नाम गुरुवायूर (गुरुपवनपुरम्) और देवता का नाम गुरुवायुरप्पन - गुरुपवनाधीशान पड़ा। यह बहुत प्राचीन मन्दिर है। ऐसा सुना जाता है कि श्री मेल्पत्तूर नारायण भट्टितिरि जो पक्षाघात के कारण हिलने-डुलने से लाचार थे, को एक उरी (छीका) में गर्भगृह के सामने लटका दिया था। उन्होंने उरी पर बैठ कर भगवान की प्रार्थना की। उनके हृदय से निकले उन गीतों को नारायणीयम्* के नाम से पहचाना जाता है जो कि एक अमर कृति है। इन रचनाओं में श्रीमद् भागवतम् (भागवत) का पूरा निचोड़ है। जैसे ही रचना का कार्य पूर्ण हो गया, वह रोग से पूर्णतयः मुक्त हो गये और उन्हें भगवान के दर्शन भी हुए। इस रचना का अन्तिम दशक दस पंक्तियों के श्लोक में लिखा गया है, की प्रथम पंक्ति 'अग्रे पश्यामि' (मैं सीधे अपने सामने भगवान को देखता हूँ) से प्रारम्भ है।

यह रचना सौ से अधिक दशकों में है, जिसमें सामान्यतः 10 पंक्तियों के श्लोक हैं, किन्तु किसी-किसी दशक में 11-12 पंक्तियों के श्लोक भी हैं। प्रत्येक दशक की अन्तिम पंक्ति में भगवान (गुरुवायूरप्पन) से स्तुति की गयी है "गुरुपवन पुराधीश माम् पाहि" हे गुरुपवनपुर के स्वामी, मुझे रोग से मुक्त करें।

"को दीर्घ रोगों, भव इव साधो"।

"भव संसार"? अर्थात् संसार में होना ही सबसे बड़ा रोग है? (इस संसार में होना अर्थात् जीवन और मृत्यु का चक्र)।

"शरीरमाध्यम् खलु धर्म साधनम्" निश्चय ही शरीर धर्म के साधन का माध्यम है। यह शरीर रूपी नाव (धर्म का आचरण करते हुए) हमें संसार रूपी नदी के उस पार ले जाती है। निश्चय ही हमें अपने शरीर की भली प्रकार देखभाल करनी चाहिये। भगवान के निरन्तर भजन से शारीरिक रोग और सांसारिक रोग से मुक्ति मिल जाती है।

मैंने पूजा करने वाले लोगों से पूजा की पद्धति, साधना का तरीका और मन्दिर में की जाने वाली अर्चना के बारे में सभी सूचनाएं एकत्र कीं। सुबह की शौच आदि क्रिया के लिये मन्दिर से दूर जाना पड़ता था। सुबह शौच आदि की क्रिया से निवृत्त होकर मैं और मेरा सहयात्री जब मन्दिर वापस आ रहे थे तो उसने मुझसे कहा "मेरी यहाँ रुकने की इच्छा नहीं है", मैं अभी वापस घर जाना चाहता हूँ। उसके पास कोई धन नहीं था। उसने अपनी सोने की बाली और करघनी किसी को बेच दी और रुपये प्राप्त कर, बिना कोई देरी किये वह घर लौट चला। उसे तिरुवल्ला होकर अपने घर जाना था। उसने मेरे घर जाने का और मेरे बारे में सारे समाचार घर वालों को बताने का वायदा किया। मैंने सोचा, क्या यह आदमी सिर्फ मेरी सहायता एवं मुझे मार्ग में सहयोग करने के लिये भगवान ने भेजा था? मैंने भगवान की असीमित दयालुता (ईश्वर कारुण्यम्)* के लिये शान्त मन से हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

एक बार पुनः मैं अकेला हो गया। मेरा समय मन्दिर के तालाब में स्नान करने, भगवान की पूजा करने और जप करने तथा मन्दिर की परिक्रमा करने में व्यतीत होता था। कुछ पूजा करने वाले मित्रों ने मेरे रोज के खाने तथा रहने का इंतजाम पास के एक नम्बूदरि ब्राह्मण के घर पर कर दिया। प्रत्येक दिन का खर्च 2 आना (12 पैसे) से ज्यादा नहीं होता था। मैं दिन में एक बार खाना खाया करता था और वह भी मन्दिर की 12 बजे की पूजा समाप्त होने के बाद।

क्या आनन्द की बात थी कि ठीक 3 बजे प्रातः मुख्य पुजारी (नम्बूदरि) मन्दिर के गर्भ गृह के द्वारा खोलता था और प्रत्येक दिन बिना क्रम तोड़े मैं स्नान करके मन्दिर पहुँच कर "निर्मल्य दर्शनम्" करता था। एक दिन पहले का भगवान के चन्दन का लेप, फूल की माला और आभूषण आदि हटाया जाता था और फिर विग्रह को तिल के तेल का लेप किया जाता था

*"ईश्वर कारुण्यम्" मलयालम भाषा में प्रथम बार आया जिसका अर्थ है भगवान की दयालुता या दया और इसी के आधार पर पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद का नाम "डिवाइन कम्पैशन" रखा गया।

*नारायणीयम् के श्लोक संस्कृत में वर्ष 1588 में पूर्ण हुए थे।

और फिर तेल को 'वाक के महीन चूर्ण से' पोछा जाता था, उसके पश्चात् विग्रह का अभिषेक किया जाता था, इस अभिषेक तीर्थ को 'वाकच्चावर्त' कहा जाता है। वाकच्चावर्त को पवित्र तथा सिद्ध औषधि माना जाता है। जब वाकच्चावर्त एक छेद से छिड़का जाता तो बहुत से लोग उसका कण प्राप्त करने के लिये खड़े रहते थे और अपने सिर, मुख और आँखों में मलते थे। मैं भी भीड़ को चीरकर कुछ कण प्रत्येक दिन इकट्ठा करता। वाकच्चावर्त के बाद सुधा अभिषेक होता था, उबला चावल भगवान को प्रसाद में चढ़ाया जाता तथा (इसे मलर या नेलपोरी नैवेद्यम् कहते हैं) उषा पूजा (प्रातः की पूजा), पंथीरधि पूजा और ऊक पूजा (दोपहर की पूजा या प्रसन्न पूजा) जब यह पूजा हो रही होती है, तो इन सभी पूजा में वाद्य यंत्र बजाये जाते तथा गान होता है। मन्दिर के सोपान पर गीत गोविन्दम् की अष्टपदी एक विशेष यंत्र इडक्का के साथ गायी जाती है। गीत गोविन्दम् की रचना महान कवि श्री जयदेव ने की है। संस्कृत भाषा में रचित यह पूरी रचना भक्ति और प्रेम से सराबोर है। पूरी रचना भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है जयदेव स्वयं कहते हैं —

यदि हरि स्मरणे सरसम् मनो

यदि विलास कला सुकुतूहलम्

सुनु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

यदि हम भगवान को प्रेम से स्मरण करते हैं। यदि हममें कला को विकसित करने की जिज्ञासा है तो जयदेव की सरस्वती यानि रचना को सुनो।

यह कहा जा सकता है कि जयदेव ने उपरोक्त श्लोक में आत्म प्रशंसा की है किन्तु यह बिल्कुल सत्य है, उन्होंने जो रचना की है उसमें सत्य और वास्तविकता है। उनकी अमरकृति (गीत गोविन्दम्) का भावार्थ सत्य और वास्तविकता का बोध करता है। जब मैं नाराणीयम् और अन्य रचनाओं को तन्मय होकर पढ़ता हूँ तो मेरे संस्कृत के ज्ञान का वर्धन होता है।

मैं सभी पूजाओं में यथा सम्भव सम्मिलित रहता था जबकि मैं अष्टपदी की सुन्दर अभिव्यक्ति और उसके भाव में खोकर उसके लिखने की प्रशंसा मन ही मन करता और जब मैं राधा के वियोग का वर्णन सुनता तो मेरे दिल में एक दर्द सा महसूस होता, धीरे-धीरे मैंने पूरी अष्टपदी को आत्मसात् कर लिया और उसका भावार्थ भी समझ गया।

अब तक घर का मोह मेरे मन से निकल चुका था। एक दिन जब

दोपहर की पूजा करके मैं मन्दिर से बाहर निकल कर जैसे ही वापस जाने के लिये मुड़ा, मैंने अपने चाचा को वहाँ खड़े पाया। मेरे इन चाचा को मेरे प्रति विशेष स्नेह था। उन्हें देखते ही मैंने उनको साष्टांग दण्डवत् किया। भगवान के दर्शन करके वे भी प्रसन्न चित्त थे। वे मुझे घर ले जाने के लिये आये थे। मेरे बिना बताये चले आने के कारण उपजा उनका सारा क्रोध अब समाप्त हो चुका था। बहुत प्रसन्नता के साथ उन्होंने कहा — "तुम्हारे कारण ही मुझे भगवान के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ"। उन्होंने गुरुवायूर में मेरे ठहरने की उचित व्यवस्था कर दी। यद्यपि गुरुवायूर में उनकी कई दिन रुकने की इच्छा थी, किन्तु सरकारी नौकर होने के कारण 2-3 दिन बाद ही उन्हें घर वापस जाना पड़ा।

मेरे माता-पिता और मेरे घर के सदस्यों के मन में मेरे कारण जो बेचैनी थी अब वह कम हो चुकी थी और मैं भी घर वालों की ओर से निश्चिन्त था।

मैं सामान्यतः मन्दिर के सरोवर में दो बार स्नान करता था और कभी दो से भी अधिक बार। जो तेल मन्दिर में विग्रह को मला जाता था उसे मैं स्नान करने से पूर्व अपने सिर पर लगाता था। मुख्य पुजारी के सेवक मण्णारत्तु गोपालन नायर से जान-पहचान होने के कारण मुझे कुछ सुविधाएं मिल जाती थी। यह सब ईश्वर की इच्छा थी। वह मुझे मुख्य पुजारी के पास ले गया और मुख्य पुजारी के घर की चहरदीवारी में स्थित एक स्थान पर रहने के लिये स्वीकृति दिला दी और वहीं भोजन के लिये भी इंतजाम कर दिया। मैं मुख्य पुजारी के खाने के बाद ही भोजन कर सकता था लेकिन भोजन अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त किया जा सकता था। भगवान को जो नैवेद्य में चढ़ाया जाता था उसमें अच्छे से अच्छा। मैं अपने को इस विशेष परिस्थिति के लिये भाग्यशाली मानता हूँ। अब मैं कभी-कभी रात्रि में भी भोजन करता था।

मन्दिर का द्वार प्रातः 3 बजे से प्रतिदिन खुलता था। अवर्णनीय प्रसन्नता आँखों और हृदय को होती थी। जब मैं निर्मल्य दर्शनम् करता था, मन पूर्ण शान्ति और निर्मग्नता की स्थिति को महसूस करता था और यही शान्ति और प्रसन्नता ही स्थिर है। बहुत से रोगी जो यहाँ आते हैं उसमें से अधिकतर रोग मुक्त होकर जाते हैं। मेरे प्रकरण में यह बात चरितार्थ हुई और धीरे-धीरे इस अनुभव से, विश्वास और दृढ़ होता गया। एक कुंजुन्नी नैयर अपनी वाक शक्ति खो चुके थे। उसके घर वाले उन्हें नियमित रूप से गुरुवायूर में पूजा में दान आदि के लिये लाते थे। कुछ

दिनों के बाद उनके मुख से अनायास 'कृष्ण' निकला और उसके बाद से वह गाने लगे और भगवान की महिमा का वर्णन करने लगे और अन्ततः वह भगवान गुरुवायूर के अनन्य भक्त हो गये।

जब मन्दिर का गर्भगृह प्रातः 3 बजे खुलता था तो मैं नारायणीयम् का प्रथम दशक गाया करता था "सांद्रानन्दा व बोधात्मक" और मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा लगाया करता था। कभी-कभी मैं अन्य भक्तों को इन दशकों के अर्थ समझाया करता था। दोपहर की पूजा के लिये जब द्वार खुलते तो मैं नारायणीयम् के अन्तिम दशक को गाया करता था जो अग्रे पश्यामि..... से प्रारम्भ होती है।

पैर में दर्द और सामान्य अस्वस्थता की स्थिति से मैं धीरे-धीरे मुक्त होता गया। अब मैं बिना छड़ी की सहायता से भी चल लेता था। उपचार और चिकित्सा दोनों ही प्राकृतिक थीं Naturopathy – Natural cure – प्रकृति की चिकित्सा प्रणाली – प्राकृतिक स्वास्थ्य लाभ। ठंडे पानी में स्नान करना, अच्छे दृश्यों को देखना, शुद्ध वायु, चारों ओर स्वच्छ और पवित्र वातावरण, भागवतम् (भागवत) और अन्य पवित्र कथाओं को सुनना, हरिनाम का संकीर्तनम् (कीर्तन), जप, ध्यान आदि में ही मन रमा रहता था। अपने शरीर के रोग के बारे में सोचने का मौका ही नहीं था। मन हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहता था और वह प्रसन्नता धीरे-धीरे शरीर के रंग-रंग में प्रवेश कर रही थी। ऐसी स्थिति को महसूस करने के लिये किसी भी मनुष्य को उच्चता की श्रेणी को प्राप्त करना होगा।

मैंने वहाँ 5-6 महीने भगवान की दया दृष्टि में व्यतीत किये। माँ ने छोटे भाई के साथ एक अनुचर को भेजा। मैंने उन्हें वापस भेज दिया। अन्ततः मैंने भी घर वापिस जाने का निर्णय लिया।

"परोपकारार्थम् इदम् शरीरम्" यह शरीर दूसरों की सेवा के लिये है। मैंने यह सत्य बचपन से सीखा था। गुरुवायूर में मेरे गाँव के पास का व्यक्ति आ गया। 3-4 दिन वह मेरे पास रहा। उसके पास पैसे नहीं थे। 4 दिन के बाद उसे बुखार और सिर दर्द हो गया और अगले दिन उसके चेहरे पर लाल-लाल दाने उभर आये और यह चेचक के लक्षण थे। यहाँ लोग चेचक से बहुत घबराते थे। वहाँ आसपास आतंक सा छा गया। अब मैं क्या करूँ? गोपालन नायर (मुख्य पुजारी का सेवक) भी मुझ पर जोर डाल रहा था कि बीमार व्यक्ति को यहाँ से ले जाओ। उस समय गर्मी का मौसम था। मैंने मन्दिर के पश्चिमी द्वार के बाहर की ओर निकलने वाले मार्ग पर एक पुल देखा। पहले मैं चुपचाप उस व्यक्ति को पुल के नीचे ले

गया और उसे वहाँ लिटा दिया। फिर मैंने ऐसी जगह ढूँढी जो घने पेड़ों से घिरी थी। मैं उसे वहाँ ले गया और आराम से लिटा दिया। यह सब मैंने अपने आप किया। मैं सुबह और शाम उसके लिये भोजन तथा दवाएं ले जाता था। कुछ मुसलमान उस क्षेत्र के पास रहते थे। उस व्यक्ति की कष्टमय और असहाय दशा देखकर मानवता के नाते उन्होंने भी मेरी सहायता की। यह सब भगवान की महानता है और इससे अधिक मैं क्या कहूँ। अन्ततः वह व्यक्ति रोग मुक्त हो गया और उसने स्नान किया। वह कुछ दिन और मेरे पास रुका।

अब मैंने घर जाने का मन बना लिया। मैंने एक छोटे से टिन में, देवता को लगाया जाने वाला, तेल इकठ्ठा कर भर लिया और कुछ अन्य चीजें भी रख लीं। गुरुवायूर के निकट एक चावक्काड, नाम का स्थान है। लोग यहाँ से नाव के माध्यम से केले एवं अन्य सामग्री खरीदने के लिये चंडगन्नाशरी जाया करते थे। मैंने भी उनमें से एक नाव में यात्रा करने का विचार किया। मुख्य पुजारी भगवान का प्रतिनिधि माना जाता है, उनकी अनुमति एवं आशीर्वाद प्राप्त कर दिन के समय मैं एक दिन अपने बोरिया-बिस्तर गठरियों के साथ नाव में जा बैठा। चेचक के रोग से मुक्त हुआ वह व्यक्ति भी मेरे साथ था। मुझे 2-3 दिन नाव में गुजारने पड़े। बीच में जहाँ नाव रोक दी जाती, हम लोग स्नान और भोजन कर लेते थे। एक बजे रात्रि में हमारी नाव चंडगन्नाशरी के बाजार में घाट (नाव के खड़े करने वाले स्थान) पर जा पहुँची। मेरे साथ जो व्यक्ति था, उसके साथ मैंने अपना सामान पहले से भेज दिया और उसी समय बिना रुके स्वयं अकेले में पैदल तिरुवल्ला की ओर चल पड़ा और 3 बजे प्रातः घर जा पहुँचा। मेरे पैर में कोई खास दर्द नहीं था किन्तु पैर बहुत कमजोर हो गये थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं थी कि मेरी माँ की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। अब बहुत जल्दी प्रातःकाल स्नान करना तथा देवता की पूजा करना मेरी अनिवार्यता थी। कुछ थोड़ी देर आराम करने के बाद मैं मन्दिर गया और तालाब में स्नान करके श्री बल्लभ की पूजा की। मैं प्रातः 9 बजे घर वापस आ गया और भोजन करके आराम किया। मैंने अपने अनुभव हर्षपूर्वक उन सभी लोगों को बताये, जो मुझसे मिलने आये थे। घर में अब चारों ओर खुशी का वातावरण था।

(4) गुरु की खोज में

मैं अपनी पढ़ाई पुनः प्रारम्भ करने का इच्छुक था। मुझे स्कूल छोड़े हुए 5 वर्ष व्यतीत हो चुका था। VI वीं फार्म (मेट्रीकुलेशन या X स्टैण्डर्ड) के विद्यार्थियों से बातचीत करने पर यह समझ में आया कि निश्चय ही मैं कोई खास भूला नहीं था।

कुछ भी हो, मेरे पिता मुझे कोट्टायम ले गये। ऊरयिल केशव पिल्लइ एक विख्यात वकील थे। उस समय वह अपनी वकालत कोट्टायम में करते थे। वह मेरे पिता के घनिष्ठ मित्र थे। हम सीधे ही कोट्टायम उनके घर (तिरुनक्कर मन्दिर के पास था) गये। वह मेरे स्वभाव के बारे में जानते थे। अत्यन्त खुशी के साथ उन्होंने मुझे अपने घर पर रख लिया। जब तक मैं वहाँ रहा अपनी सुविधा के अनुसार मैं उनके भतीजे को पढ़ाता था।

खाना खाने के बाद पुनः स्कूल में दाखिला लेने के लिये हम 11 बजे प्रातः सी.एम.एस. स्कूल गये। उस स्कूल के प्रधानाचार्य एक अंग्रेज श्री असक्विथ थे। जब मैंने उन्हें सारी बातें विस्तार से बताईं तो उनकी प्रतिक्रिया थी — इस बच्चे को स्कूल छोड़े हुए 5 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं अतः VI फार्म में दाखिला सम्भव नहीं है, मैं केवल IV फार्म में दाखिला दे सकता हूँ (फार्म IV — कक्षा 8 के समतुल्य था)।

मेरे पुराने सहपाठी अब तक स्नातक (ग्रेजुएट) हो चुके थे तो फार्म VI में ही दाखिला लेने में स्वाभिमान को धक्का लग रहा था, फार्म IV के दाखिला लेने के बारे में सोचना ही बड़ा कष्टदायी महसूस हो रहा था।

मैंने बड़े साहस के साथ प्रधानाचार्य से कहा, "श्रीमान्, आप मुझे VI फार्म में ही दाखिला दीजिये। उस विशेष वर्ष में सौ छात्रों ने V फार्म की परीक्षा दी थी और उसमें से 9 छात्र सभी विषय में पास हुए थे, शेष को प्रमोशन दिया गया था और मैं उन 9 में से एक हूँ, यह सुनकर मिस्टर असक्विथ, स्वयं जाकर उस वर्ष के परीक्षाफल का रजिस्टर ले आये और उन्होंने उस मोटे रजिस्टर के पन्ने पलट कर देखे। उन्होंने उस वर्ष की इन्ट्री देखी और रजिस्टर बन्द कर दिया। उन्होंने मुझे प्रधानाध्यापक के पास भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे मेरा दाखिला फार्म VI में करें। उन्होंने आदेश दिये कि मेरे शारीरिक स्वास्थ्य के फिटनेस का प्रमाण पत्र एक डाक्टर से प्राप्त किया जाये।

प्रत्येक व्यक्ति आयुर्वेदिक चिकित्सक वयस्कर तिरुमेनि को विशेष सम्मान देता था (वयस्कर तिरुमेनि केरल के 8 उच्च श्रेणी के आयुर्वेदिक चिकित्सकों में से एक थे), यह सोचकर कि तिरुमेनि का चिकित्सा प्रमाण-पत्र (medical certificate) प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है, कुछ उचित भेंट लेकर मैं, अपने पिता के साथ लगभग 4 बजे शाम को उनके घर पहुँचा। जैसा कि पहले भी कहीं मैंने जिक्र किया है कि तिरुमेनि ने मेरा उपचार किया था। उन्होंने मुझे पहचान लिया और हमने उन्हें सारी स्थिति से अवगत कराया तथा पूरी बात समझायी। उसी समय प्रधानाध्यापक श्री पी० एम० चाको वहाँ आ गये। तिरुमेनि ने उनसे मेरे बारे में बातें स्पष्ट कीं तथा मेरे पक्ष में भी बोले। श्री चाको अगले दिन मुझे भर्ती करने के लिये तैयार हो गये।

अगले ही दिन मैंने स्कूल में दाखिला ले लिया और कक्षा में जाकर पढ़ाई शुरू कर दी। सावधानी एवं ध्यान से पढ़ाई करने के उपरान्त भी मैं VI फार्म की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया किन्तु मुझे निराशा नहीं हुई। उसके बाद मैं कभी स्कूल नहीं गया। मैंने घर पर रह कर ही अपना अध्ययन जारी रखा। इसी बीच मेरे चाचा की मृत्यु हो गयी और मैं पुनः पुराने रोग से ग्रस्त हो गया। उपचार फिर से शुरू किया गया। एक बार मैंने परीक्षा देने हेतु परीक्षा शुल्क (फीस) भी जमा किया, किन्तु मैं परीक्षा के समय बीमार पड़ गया, यहाँ तक कि मैं ठीक से चल भी नहीं पाता था, तब मैंने निर्णय किया था कि अब मैं आगे अध्ययन नहीं करूँगा। मैं पुनः गुरुवायूर चला गया और 5-6 माह रुकने के बाद वापस आ गया। कुछ समय बाद मेरे पिता की मृत्यु हो गयी और माँ बीमार हो गयी। मेरी माँ की इच्छा थी कि मृत्यु के समय मैं उनके पास रहूँ।

माँ की बीमारी और बढ़ गयी और लगातार उनकी चिकित्सा चलती रही। अपनी बीमारी के बावजूद माँ गृहस्थी का सारा काम बिना किसी बाधा के सम्हालती थी। फिर बीमारी के कारण तीन दिन तक वह बिस्तर पर रही। मैं लगातार उनके पास रहा और भगवान का नाम स्मरण करता रहा। तीसरे दिन रात्रि में उनका स्वर्गवास हो गया।

मैं बिना रुके भगवान से उसकी शान्तिपूर्वक तथा कष्ट और पीड़ा रहित मृत्यु के लिये प्रार्थना करता रहा। फिर भी जब उनकी आत्मा शरीर से बाहर निकली, मुझे असहनीय दर्द, आक्रोश और दुख का अनुभव हुआ। सत्य कहा जाये तो मैं बेसुध हो गया।

अस्ताम् तावदीयं प्रसूति समये दुर्वरशूलव्यधा
नैरुध्यम् तनुशोषणम् मलमयी शय्या च सांवल्सरी
एकस्यापि गर्भ भार भरण कलेशस्य यस्याः क्षमो।
दातुम् निष्कृति मुन्नतोपि तनयस्तयै
जनन्यै नमः तस्यै जनन्यै नमः

अगले दिन शवदाह मुखाग्नि और अन्य धार्मिक रीति-रिवाज के अनुसार क्रिया-कर्म किये गये और बांद के सारे क्रिया-कर्म मेरे तथा मेरी छोटी बहन द्वारा पूर्ण किये गये। मेरा एक भाई देवीकुलम् में सरकारी कर्मचारी था। टेलीग्राम प्राप्त होते ही वह शीघ्र घर आ गया। पिण्डदान तक के सारे कर्म पूर्ण करने के बाद 16वें दिन महाभोज का आयोजन किया गया। पुजारियों को भोजन कराके तृप्त किया गया। 41 दिन तक मैं दीक्षा में रहा और उस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और उन्हें दक्षिणा दी गयी।

सही मायने में अब मैं पूर्णतयः स्वतंत्र था। इसका अर्थ था कि अब मैं अपनी सुविधा के अनुसार जैसा मन चाहे, उस प्रकार से मैं भक्ति के लिये समय दे सकता था, क्योंकि पहले माँ मुझे हर जगह जाने की स्वीकृति नहीं देती थी। अब मैं अपने मन का मालिक था। मैंने कभी भी अपना समय व्यर्थ नहीं गवाँया। जब मैं बीमार होकर बिस्तर पर पड़ा होता तब भी मैं समय मिलते या तो पढ़ता रहता या फिर दूसरों को पढ़ाता। मेरे संस्कृत के थोड़े से ज्ञान ने मुझे असीमित किन्तु अच्छा मार्ग दिखलाया। मैंने छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। मन्दिर के निकट एक छोटा सा भवन एक कक्षा के रूप में परिवर्तित हो गया, जहाँ मैं बच्चों को थोड़े समय के लिये पढ़ाया करता था। एक सज्जन मुझे कल्लुप्पारा नामक स्थान पर ले गये। वहाँ मैंने कुछ बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। वह छोटा सा अध्ययन कक्ष बाद में एक छोटे स्कूल में परिवर्तित हो गया। मैं फिर अस्वस्थ होकर बिस्तर पर लग गया और घर वापिस आ गया।

दिल जो करना चाहता था उसके करने में निरन्तर बाधाएं आ रही थीं। अब यथासंभव मैंने अपना पूरा समय भगवान की भक्ति और पूजा में लगा दिया। सुबह प्रातः सूर्य निकलने से पूर्व मैं मन्दिर पहुँच जाता। तिरुवल्ला का मन्दिर निश्चय ही पवित्र और बड़ा माना जाता था। मैं वहाँ जप, ध्यान, श्लोकों का गायन और पवित्र ग्रंथों को पढ़ता। अब मैंने नियमित रूप से मूल संस्कृत में भागवत् पढ़नी शुरू कर दी। मन्दिर के निकट 'शंकर वेलिल' गृह में रहने वाली एक गृहणी ने भागवत सुनने की इच्छा प्रकट की। उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये मैं प्रत्येक रात्रि में

उनके घर जाकर भागवत का पाठ करता था। उस स्त्री का बड़ा बेटा नानू पिल्लइ और अन्य भी इस पाठ को नियमित रूप से सुनते थे। नानू पिल्लइ का मेरे प्रति असीम स्नेह, श्रद्धा और आदर था। वह मेरा सहपाठी भी था।

मन्दिर में भी सांय दीप-आराधना (आरती) के बाद सामूहिक भक्ति गीत गाये जाते थे। बचपन से ही इस प्रकार के भक्ति संगीत को सुनने का मुझे शौक था। मैं मधुर भक्ति संगीत को ड्रम एवं वाद्य यंत्रों के साथ सुनकर बहुत ही प्रसन्नता महसूस करता था और इनकी शहद ऐसी मधुर धुन पर मैं अपने को नृत्य करने से भी नहीं रोक पाता था। यह पूरा संगीतमय उत्सव प्रतिदिन 2 घंटे तक चलता था। उसके बाद मैं शंकरवेलिल के घर भागवत् का पाठ करने जाता था। वह गृहणी भागवत पाठ सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न होती थी। एक माँ की तरह उनका स्नेह, श्रद्धा और सम्मान मेरे प्रति पुत्रवत् लगातार बढ़ता गया। वह साध्वी सौभाग्यशाली स्त्री निश्चय ही मेरी दूसरी माँ थी, जो मुझे मेरी माँ की मृत्यु के बाद मिली थी। मैं हर्षपूर्वक यह नया जीवन जी रहा था।

मेरे एक अभिन्न मित्र परमु पिल्लइ थे, जो मुंसिफ कोर्ट में क्लर्क थे। उन दिनों श्री एम० आर० नारायण पिल्लइ मुंसिफ थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे और श्री राम कृष्ण परमहंस के परम भक्त थे। उनके विशेष लगाव के कारण 1910 में तिरुवल्ला में रामकृष्ण संघ की स्थापना की गयी थी। उसके अधिकतर सदस्य क्लर्क और वकील थे। सामूहिक रूप से बैठकर वार्तालाप करने का कोई एक स्थान न होने के कारण रविवार सांय 7 बजे बारी-बारी से प्रत्येक सदस्य के घर पर बैठक होती थी, वहाँ कीर्तन और सम्बन्धित साहित्य पढ़ा जाता था। जब परमु पिल्लइ के घर पर सदस्यों के इकठ्ठा होने की बारी आयी तो उसने मुझे भी उस आयोजन में भाग लेने के लिये जबरदस्त आग्रह किया। मैंने वहाँ जाकर देखा कि कुछ लोग वहाँ बैठे हुए हैं। उनके मुखों पर न तो कोई उत्सुकता थी और न कोई इच्छा थी। मैं भी वहाँ जाकर बैठ गया। मेरे पास संस्कृत में लिखी भागवत थी, उन्होंने स्वामी जी (मुझसे) से कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। मैं न तो स्वामी था और न कोई धार्मिक व्यक्ति था, उन्होंने भक्ति के कारण स्वामी जी का उद्बोधन मेरे लिये किया था। मैंने भक्ति और श्रद्धा से भगवान का ध्यान किया और भागवतम् (भागवत) खोलकर उसका कुछ भाग पढ़ा। आज भी वह भाग मुझे भली प्रकार से याद है "जैसे ही भगवान कृष्ण की बांसुरी की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी बहुत सी गोपिकाएं उन्मादी

मन से दौड़ती हुई जंगल में वहाँ जा पहुँची, जहाँ श्री कृष्ण बैठे हुए बांसुरी बजा रहे थे। भगवान ने मधुर स्वर में सबको शान्त कर समझाया। उन्होंने तब कहा — “आप लोगों के लिये इस तरह क्रूर जंगली जानवरों से भरे वन में आना उचित नहीं है। प्रत्येक स्त्री के लिये उसका पति ही देवता है यदि आप अपने पति की सेवा भक्ति से करती हैं तो आप क्या नहीं प्राप्त कर सकतीं”, “आप सब कुछ प्राप्त कर सकती हैं — आपकी मेरे प्रति अमिट भक्ति है इसमें कोई संदेह नहीं। अब आपने मुझे देख लिया है और मैं भी आप लोगों को देखकर अति प्रसन्न हूँ। अब आप लोगों को निश्चय ही अपने घर लौट जाना चाहिये”। गोपिकाओं को यह सुनकर जितना दुख हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह स्वाभाविक है कि वे सभी यह सुनकर अत्यन्त उद्विग्न और भगवान से नाराज थीं। रोती हुई आवाज में उन्होंने भगवान से कहा — “हे भगवान, कृपया इस प्रकार का दुख देने वाले शब्दों का प्रयोग न करें। यह मानकर कि आप ही हमारे सर्वस्व हैं, सभी कुछ छोड़कर हम आपकी शरण में आये हैं”।

यह भागवत का वह भाग था जिसको पढ़कर उसका भावार्थ उनको समझाया था, वहाँ सभी लोगों को बहुत आनन्द मिला। सही कहा जाये तो सभी लोगों की आँखों में आँसू आ गये थे। यह पाठ रात्रि 9 बजे समाप्त हुआ। मंगल आरती और प्रसाद के वितरण के बाद सभी लोग अपने-अपने घर वापस चले गये और मैं प्रत्येक दिन की तरह भागवत का पाठ करने “शंकर वेलिल घर” जा रहा था तभी एक व्यक्ति लालटेन लेकर मुझे ले जाने के लिये वहाँ आया।

जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ कि श्री एम० आर० पिल्लइ को रामकृष्ण संघ से विशेष लगाव था। सदस्यों ने उस बैठक में जो कुछ हुआ था, उसका वर्णन उनसे किया। उन्हें जिस क्षण आज की बैठक के बारे में पता चला, उन्होंने मुझसे मिलने की इच्छा व्यक्त की।

मैं उस चपरासी के साथ उनके घर पहुँचा। उन्होंने मेरा स्वागत किया और सम्मान के साथ बैठाया। उस समय उनके घर में और भी सम्माननीय व्यक्ति उपस्थित थे। वह भी भागवतम् (भागवत) का पाठ सुनना चाहते थे। उनके पास भागवत थी। मैंने उन्हें पढ़कर सुनाया, वे तथा अन्य व्यक्ति भी भागवत का पाठ सुनकर प्रसन्न हुए। यह पहला मौका था जब मैं उनसे मिल रहा था और मेरा उनके साथ एक नाता जुड़ गया। यह मित्रता पूर्ण रूप से निरन्तर बनी रही। यह सब भगवान द्वारा पूर्व निर्धारित था। अब वह इस दुनिया से जा चुके हैं किन्तु मित्रता के वह सुन्दर

संस्मरण आज भी मेरे मन-मस्तिष्क में ताजे हैं। उन्होंने पुनः मुझे एक चपरासी के साथ “शंकर वेलिल घर” भिजवाया।

संघ की हर बैठक में भाग लेने के लिये मुझसे आग्रह किया गया और मेरा उससे अलग हटने का कोई कारण नहीं था। इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे संघ का अध्यक्ष चुन लिया। उसी समय ऐसी जगह प्राप्त की गयी, जो मेरे तथा एम० आर० के घर के समीप थी। जहाँ पर संघ अपनी नियमित बैठक कर सकता था। यह बंगला प्रसिद्ध वकील श्री उरयिल केशव पिल्लइ का था। इस मकान पर श्री एम० आर० पिल्लइ की उपस्थिति में संघ की बैठक होती थी। यह स्वामी निर्विकारानन्द जी का पूर्व आश्रम था।

अब नये उत्साह और भक्ति के साथ, लोग भक्ति गीत, भजन कीर्तन, जप आदि करते तथा पवित्र पुस्तकों का पाठ करते थे और यह पूर्व में घर-घर आयोजित होने वाली बैठक से ज्यादा नियोजित तरीके से सम्पन्न होती थी।

मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मुंसिफ श्री एम० आर०, श्री रामकृष्ण के परम भक्त थे। इससे पहले वह हरिष्पाट्ट में मुंसिफ थे। हरिष्पाट्ट उनका जाना-पहचाना स्थान था और उन्होंने वहाँ भी श्री रामकृष्ण संघ की स्थापना की थी। वकील श्री सुब्बाराय अय्यर, डा० चेल्लपा और अन्य इसके प्रमुख सदस्य थे। श्री निर्मलानन्द स्वामी जी उस समय बंगलौर आश्रम के अध्यक्ष थे। वह श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। सभी लोग इतने भाग्यशाली नहीं होते कि वे रामकृष्ण परमहंस के दर्शन कर सकें। कौन उनके शिष्य के दर्शन करने का सौभाग्य खो सकता है। हरिष्पाट्ट संघ ने स्वामी निर्मलानन्द जी को हरिष्पाट्ट में आमंत्रित किया। वकील श्री सुब्बाराय अय्यर बंगलौर जाकर स्वामी श्री निर्मलानन्द जी को अपने साथ ले आये, उन्होंने एम० आर० को हरिष्पाट्ट में स्वामी जी के पहुँचने के दिन की सूचना भेजी। एम० आर० हरिष्पाट्ट जाने के लिए तैयार थे। मैं और एम० आर० प्रतिदिन मिलते थे। जब एम० आर० से स्वामी जी के आने का समाचार मिला, मैंने उसके दर्शन करने की उत्सुकता प्रकट की। एम.आर. यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए।

उन दिनों श्री स्थाणु आशारी एक योगाभ्यासी, एम० आर० के यहाँ रुका करते थे। ऐसा माना जाता था कि वे अक्सर समाधि लगाने के अनुभवी थे। वह विवाहित थे और उनका परिवार और बच्चे थे, उनका घर तिरुवनन्तपुरम में था। काफी लोग उनको गुरु समान मानते एवम् उनके भक्त थे। श्री आशारी और श्री एम० आर० के साथ हम तीनों एक नाव पर

पुलिकेज से एक शाम को हरिष्पाद के लिये रवाना हो गये। कोइक्कलेत्तु वेलु पिल्लइ के घर हम लोगों के रुकने का इंतजाम था। वहाँ पर एक अच्छा सा श्रीकृष्ण का मन्दिर था। हमने भोजन करने के बाद रात्रि वहाँ पर गुजारी, अगले दिन हमने कृष्ण मन्दिर जाकर पूजा की और भोजनानन्तर विश्राम किया।

मेरा मन स्वामी जी के विचार से परिपूर्ण था। जल्दी से जल्दी स्वामी जी के दर्शन करने की उत्सुकता मेरे मन में बढ़ती जा रही थी। करीब 11 बजे प्रातः हम लोग हरिष्पाद के लिये चल दिये, यह यात्रा कुछ दूर बैलगाड़ी से और कुछ दूर पैदल की गयी। करीब 12 बजे हम लोग हरिष्पाद मन्दिर के समीप वलिय कोट्टारम् (बड़ा महल) पहुँचे। यहाँ स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। महल के अन्दर आते ही मैंने अपने गाइड एवं दिशा निर्देशक श्री सुब्बराय अय्यर से स्वामी जी के बारे में जानकारी प्राप्त की।

स्वामी जी अपना भोजन समाप्त कर चुके थे और आराम कर रहे थे। मेरे मन में स्वामी जी के उच्छिष्ट को खाने की बड़ी इच्छा थी। मैंने पूछा कि स्वामी जी ने जिस पत्ते पर भोजन किया है क्या वह अब भी रखा है? और मुझे जवाब मिला, हाँ पत्ता अब भी वहीं रखा है, मैं शीघ्र वहाँ गया और जो कुछ भी बचा था, खा गया और उससे मुझे बड़ा संतोष मिला। वापस आकर मैं एम० आर० के पास बैठ गया और उत्सुकता से स्वामी जी के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगा।

एक छोटे से मण्डप में एक मंच बना था, उस पर एक कुर्सी रखी हुई थी जिस पर स्वामी जी को बैठना था। आराम करने के बाद स्वामी जी सांय 4 बजे विराजमान हुए।

वस्त्रम् वपुस् वचनम् विद्या विनयमेन्निवा
वकारमञ्चुमिल्लात्तोन निस्सारन भुवि केवलम्

व - वस्त्रम्	-	स्वच्छ और शरीर को अच्छे लगने वाले कपड़े
व - वपुस्	-	स्वस्थ शरीर
व - वचनम्	-	अच्छी वाणी
व - विद्या	-	ज्ञान
व - विनयम्	-	विनम्रता

स्वामी जी में यह पाँचों वकार पूर्ण रूप से थे। एक लम्बा शरीर और शानदार व्यक्तित्व, (अजानबाहु) आँखों में चमक, (सिंह की आँखों की तरह)। चेहरे पर साहसिक मुस्कान, मोह माया से दूर कान्तिमान चमकता चेहरा (प्रलय के समय रुद्र रूप - संहार रुद्र) सभी की आँखें स्वामी जी की ओर घूम गयीं।

स्वामी जी का स्वागत किया गया। तेजस्वी आँखों से चारों ओर देखने के बाद स्वामी जी बैठ गये। एम०आर० और मैं तथा अन्य कई लोग नीचे जमीन पर एक बैन्च पर बैठ गये।

मैं एक छोटा महत्वहीन व्यक्ति था और अपने को स्वामी जी के पास जाने के लिये अयोग्य समझता था, मैं उनको चढ़ाने के लिये कोई भेंट नहीं लाया था, बस मेरे पास तुलसी की एक माला थी। क्या स्वामी जी इसे स्वीकार करेंगे? स्वामी जी के चरण कमलों तक कैसे पहुँचा जाये? जब मेरा मन इन सब बातों से बुरी तरह परेशान था, उन प्रेम मूर्ति स्वामी जी ने मेरी ओर देखा और दूसरों से पूछा, क्या यह भक्त नहीं है? जैसे ही मैंने यह शब्द सुने। एकाएक मैंने साहस जुटाया और सब कुछ भूलकर दौड़कर स्वामी जी के चरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। वास्तव में मैंने साष्टांग प्रणाम नहीं किया था, बल्कि मेरा सिर उनकी गोद में था और यह करके अन्जाने में मैंने अपना सारा भार (शारीरिक और मानसिक) तथा समस्याएँ उनको अन्तरित कर दी थीं। आज भी क्या मेरा सिर उनकी गोद में नहीं है? मुझे महसूस होता है कि एक स्नेही पिता की तरह स्वामी जी ने मुझे स्वीकार कर, अपने छोटे बच्चे की तरह गोद में बैठा लिया। मेरा सारा बोझ उतर गया। यह सब भगवान की कृपा का परिणाम था - ऊँ।

कोटि युगडु.लायि सञ्चयीच्चीदुन्न

पुण्य फलमाणी मर्त्यजन्मं

तेदुविन सद्गुरु पादपदमम्

पुनर्नेदुविन सौभाग्य ज्ञानामृतम्

यह मानव (असाधारण) जन्म करोड़ों युगों के पुण्य का संचयी फल है और इससे भी बढ़कर अच्छे सद्गुरु के चरण कमलों का सौभाग्य प्राप्त करना और उससे अधिक अमृतरूपी शुद्ध ज्ञान और सौभाग्यशाली जीवन का होना है।

(5) भक्ति और प्रसाद

मैं वापिस अपनी जगह आकर बैठ गया। आयोजकों ने मंगल पत्र समर्पित किया एवम् स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। स्वामी जी उस दिन कुछ शब्द ही बोले, "आपने जो आदर मुझ महत्वहीन व्यक्ति को दिया है, वह मेरी श्रेष्ठता के कारण नहीं है, बल्कि मात्र मेरे गुरुनाथ की दया का परिणाम है"। जब वे कुछ शब्द कह रहे थे, उनकी आँखों से अविरल अश्रु बहने लगे। वे लोग कितने भाग्यशाली हैं और उन्हें कितना आशीर्वाद प्राप्त है, जो अपने गुरु के चरणों की भक्ति से बंधे हैं।

"गुरोरंधि पदमे मनश्चेन्नलग्नं ततःकिमततःकिम् ततःकिम्, ततःकिम्" (यद्यपि कोई व्यक्ति सभी भौतिक सुख सुविधाएं एवम् धन प्राप्त कर सकता है, फिर भी यदि गुरु के चरणों में उसको भक्ति नहीं है, तो वह सारा धन एवम् सुख सुविधाएं किसी काम का नहीं है। किसी काम की नहीं है।)

कुछ देर वार्तालाप करने के बाद स्वामी जी अपने कमरे में विश्राम करने चले गये। सभी दर्शक एवम् सदस्य अपने हृदय में स्वामी जी के दर्शन एवम् उनके मधुर वचनों से संतुष्ट होकर अपने-अपने घर चले गये।

उस रात्रि, एक सज्जन ब्राह्मण श्री सुब्रह्मणियम अय्यर मुझे और कुछ अन्य लोगों को अपने घर ले गये। वहाँ खाना खाने के पश्चात् मेरा मन केवल स्वामी जी के विचारों में निमग्न रहा और मैं उन विचारों के साथ ही सो गया।

अगले दिन प्रातः हम पुनः हरिष्पाट्ट पहुँच गये। उस दिन सुब्रह्मणियम मन्दिर में स्वामी जी के सम्मान में भजन यात्रा का आयोजन किया गया, उसमें मैंने भी भाग लिया। हृदयग्राही भक्ति गीतों को सुनकर मुझे बहुत रोमांच का अनुभव हुआ। उस शाम को स्वामी जी ने वहाँ के हाई स्कूल में एक लम्बा भाषण दिया।

उस रात्रि मैं पुनः एम० आर० के साथ बड़े महल (वलिय कोट्टारम्) स्वामी जी के दर्शन के लिये पहुँच गया। भक्ति पूर्वक स्वामी जी को साष्टांग दण्डवत् कर, मैं उनके समीप खड़ा हो गया। स्वामी जी ने मुझसे कई चीजें पूछी। अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुम गीत गोविन्दम् की

अष्टपदी जानते हो? कृपया गाकर सुनाओ"। (मैंने पूर्व में भी गीत गोविन्द के बारे में वर्णन किया है) मुझे गीत गोविन्दम् की सारी अष्टपदी पूरी याद थीं। शुरुवात "मामियम् चलित" मुझे राग और ताल के बारे में कोई ज्ञान नहीं था। स्वामी जी की प्रसन्नता के लिये मैंने बिना हिचकिचाहट और संकोच के अष्टपदी गाकर सुनाया। हरिष्पाट्ट अच्छे संगीत के लिये विख्यात है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि किसी को मेरा गायन खराब नहीं लगा।

उसके बाद अपने पास बुलाकर मुझे आदेश दिया, "तुम तिरुवल्ला वापस चले जाओ। वहाँ तुम संघ को बढ़ाओ"। उन्होंने मुझे "नीलकण्ठ भक्त" के नये नाम से पुकारा, जो मुझे मिला, वह क्या पुनर्जन्म नहीं था?

अगले दिन हम तिरुवल्ला लौट गये और स्वामी जी बैंगलोर वापस गये। वे मुझे अक्सर बैंगलोर से पत्र लिखते थे। पहले पत्र एम० आर० के माध्यम से आते थे। बाद में पत्र सीधे आने लगे। मैं उन पत्रों को भक्ति पूर्वक सम्हाल कर रखता था। फिर भी मेरे अक्सर यात्रा करने के कारण कभी कहीं सारे पत्र खो गये।

(6) गुरु का सामीप्य

एम० आर० के साथ भारत के मुख्य तीर्थों की यात्रा शुरू करने की इच्छा से मैंने तिरुवनन्तपुरम से यात्रा प्रारम्भ की। हम सबसे पहले स्वामी जी के दर्शन करने बैंगलोर आये। बैंगलोर आराम से समय बिताने का एक प्रमुख केन्द्र है। स्वामी अभेदानन्द जी के मन में बैंगलोर में एक आश्रम स्थापित करने का विचार आया और उन्हीं के द्वारा इस आश्रम के नीव का पत्थर रखा गया था, जो एक अच्छे क्षेत्र में स्थित है। स्वामी निर्मलानन्द जी ने उसका निर्माण कार्य पूर्ण करवाया और उसे वर्तमान स्थिति तक लाये। एक विशेष प्रकार की शान्ति और आनन्द का अनुभव इस आश्रम में होता है। आश्रम का प्रत्येक भाग और कोना साफ और सुथरा रखा जाता है। पूरा क्षेत्र फूलों की महक और आम के बागीचों से भरा है। स्वामी जी एक महान व्यक्ति हैं और सभी क्षेत्रों की उन्हें भली-भांति जानकारी है। वे बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न हैं। यह कहने की कोई खास आवश्यकता नहीं है कि स्वामी जी की महानता और प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप उनके द्वारा चलाये जा रहे आश्रम में स्पष्ट दिखाई दे रही है।

एम० आर० और मैं 3-4 दिन प्रसन्नता पूर्वक रहे। उन्हीं दिनों स्वामी जी को कुछ प्रसिद्ध लोगों ने नीलगिरि आने का निमन्त्रण दिया। स्वामी जी हम दोनों को साथ ले गये और हम लोग आराम से नीलगिरि पहुँच गये। वहाँ रेलवे स्टेशन पर बहुत से लोग स्वामी जी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे स्वामी जी को स्टेशन से अपने साथ लेकर गये। स्वामी जी के साथ हम दोनों भी गये और हमें एक अच्छे से बंगले में ठहरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब कभी भी स्वामी जी इस रास्ते से गुजरते थे, वकील परप्पनडु।डी, श्री कुंजीराम मेनन, अपने यहाँ बुलाते थे और स्वामी जी भी अक्सर वहाँ आया-जाया करते थे।

सभी जानते हैं कि नीलगिरि एक ठण्डा स्थान है। हम वहाँ गर्मी में अप्रैल या शायद मई में पहुँचे। यह मेरा ठण्डे स्थान पर रुकने का पहला अनुभव था। स्वामी जी यहाँ प्रतिदिन भाषण देते थे और लोगों से बातचीत करना चाहते थे। आज इतने समय के बाद मुझे वह भाषण याद नहीं है, किन्तु एक घटना ऐसी है, जो मुझे आज तक याद है।

एक बार एक प्रसिद्ध वकील श्री हरिपट्टु कृष्ण अय्यर स्वामी जी के

दर्शन करने आये। उन्होंने स्वामी जी से एक नास्तिक के दृष्टिकोण से वार्ता करनी शुरू की। जब वह लौटे तो उनके दृष्टिकोण में थोड़ा परिवर्तन था। जब उन्हें समझाया गया कि "मैं" कौन हूँ और क्या हूँ, तो वह आस्तिक हो गये।

मैं तुम्हें देख सकता हूँ (अन्तःकरण को देख सकता हूँ), अतः मैं समझता हूँ कि तुम्हारा शरीर आत्मा से अलग है, देखो, क्या मैं अपने पूरे शरीर को नहीं देख पा रहा? अतः आत्मा शरीर से अलग है। इसी प्रकार आत्मा मस्तिष्क को, ज्ञानकोश और अहंकार को समझने में सक्षम है। अतः आत्मा, आत्मा निश्चय ही मन और ज्ञानकोश से अलग है। इसी आत्मा को वेदों और अन्य ग्रंथों में एक ही स्वर में घोषित किया है -

चक्षुषश्चक्षु श्रोत्रस्य श्रोत्रम्

आँखों की आँख तथा कानों के कान यही वास्तव में मैं (आत्मा) है, परमात्मा है आदि-आदि यह उनका विस्तार से व्याख्यान था।

मैं वहाँ करीब एक सप्ताह तक रुका। प्रत्येक दिन मैं बाजार जाया करता था। एक बार बाजार से लौटते समय पानी बरसने लगा। पानी जोरदार नहीं था, हल्की फुहार ही पड़ रही थी। किन्तु मेरे पास अपने को पानी से सुरक्षित रखने का कोई साधन, छाता इत्यादि नहीं था। मेरे कपड़े पूरी तरह भीग गये और जब मैं स्वामी जी के पास पहुँचा, तो मैं ठंड से कांपने लगा। स्वामी जी के कमरे में आग जल रही थी। जैसे ही उन्होंने दूर से मुझे देखा, उन्होंने पुकार कर मुझसे कहा, "यहाँ आओ, आओ जल्दी आकर बैठ जाओ" और मुझे आग के निकट बैठाया। स्वामी जी की मेरे पर यह कृपा और दयालुता। किन्तु स्वामी जी कभी-कभी बहुत निष्ठुर हो जाते थे -

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसमादपि"

(हीरे से अधिक कठोर और फूल से अधिक कोमल)।

यह बड़े लोगों के दिल ऐसे ही होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि महात्माओं का व्यक्तित्व ऐसा ही होता है। मैंने यह स्पष्ट रूप से स्वामी जी में कई बार देखा है।

मैं उस समय अग्नि की हल्की गरमाहट का आनन्द ले रहा था। मैं आग को तीव्र करने के लिये लकड़ी की जलावन को छेड़ने लगा। स्वामी जी का पूरा व्यवहार बदल गया। उन्होंने मुझे डांटना शुरू कर दिया। जिस प्रकार से मैं आग में लकड़ी रख रहा था, स्वामी जी को पसन्द नहीं था। वह एक कलाकार प्रकृति के व्यक्ति थे और कलात्मकता उनकी कार्यशैली

में भरी थी। वह मेरे इस कार्य की अक्षमता को पूर्ण रूप से समझ चुके थे। वह अपने एक हाथ में कच्ची चपाती लेकर आये और मेरे पास बैठ गये। तुम्हें पता है कि इसे कैसे पकाया जाता है? मैं क्या कह सकता था? स्वामी जी ने उस बड़ी चपाती के चाकू से कई छोटे छोटे टुकड़े किये और उन्हें आग में पकाया। बाद में उस पर घी चुपड़ कर रखा और हम दोनों ने खाया और साथ में वे चाय लाये जो हम दोनों ने पी। झिड़कते हुए उन्होंने मुझसे कहा, "सन्यासी को सारे कार्य करने का तरीका आना चाहिये"। जिन लोगों को अपना कार्य अच्छी तरह करने की योग्यता नहीं है वे लोग सन्यास की स्थिति को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। शायद तुम सभी लोगों के दिमाग में श्री राम कृष्ण के बारे यह धारणा हो सकती है कि वह मूर्ख (Idiot) किसी भी कार्य को करने में अक्षम थे। "तुम्हारी सन्यास के बारे में यह जानकारी हो सकती है"।

ठीक है, जैसा है, ठीक है। वह बहुत ही सक्षम और शीघ्र (कम से कम समय में) कार्य पूर्ण करने वाले व्यक्ति थे। वह हम लोगों के कार्य को बहुत बारीकी से देखते थे और डांटते थे और हमारी कमी को तुरन्त ही दूर करते हैं। जब हम लोग अपने कपड़े धोकर सुखाने के लिये टांग रहे होते थे, वे आकर हमें दिखाते कि कपड़े सुखाने के लिये कैसे फैलाये जाते हैं। जब कपड़ों को तहाने के लिये लाया जाता था तो वह बहुत सावधानी पूर्वक कैसे तह लगायी जाती है और कैसे कपड़ों के किनारे आपस में मिलाकर तह लगायी जाय कि कपड़े में कोई सिकुड़न न आये, पूरा कपड़ा एकरूपता में तह करके दिखाते थे।

यद्यपि श्री राम कृष्ण सामान्यतयः ध्यान और समाधि की स्थिति में रहा करते थे, तद्यपि उनकी आंखें अपने चारों ओर सावधानी से प्रत्येक चीज को देखती थीं। प्रत्येक चीज की सफाई, पुछाई और चमकाई और उनको ठीक से लगाना और उन्हें उनके सही स्थान पर रखना, आंगन में झाड़ू लगाना, चावल पकाना, सब्जी काटना, इन्हें छोटा काम समझकर नहीं करना चाहिये, यदि यह सभी कार्य स्वच्छता के साथ, सुन्दरता के साथ और बारीकी के साथ कर लगे, तो अन्य कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर उसे अधिक क्षमता से निखार कर प्रशंसा योग्य तरीके से कर लगे।

क्या तुम अनुमान लगा सकते हो कि हम लोगों को प्रशिक्षण प्राप्त करते समय कितनी डांट पड़ती थी? एक बार मेरे एक गुरुभाई एक लोहे का बर्तन बाजार से ले आये। मेरे गुरुभाई बहुत सीधे-साधे थे, अतः व्यापारी ने उन्हें धोखे से टूटा बर्तन दे दिया। श्री रामकृष्ण बर्तन देखकर

उसी क्षण सब कुछ समझ गये। अपने हाथ में बर्तन लेकर आर ७५१ विभिन्न स्थानों पर थपथपाकर, उन्हें दिखलाया, कि आवाज सुनकर, कोई भी जान सकता है कि बर्तन टूटा है। उन्होंने गुरुभाई को खूब फटकार कर बाजार वापस भेजा और उस बर्तन को बदलकर अच्छा बर्तन लाने के लिये कहा।

मैंने सब कुछ ध्यान पूर्वक सुना और धीरे से दिमाग में बैठा लिया और धीरे-धीरे विचारों में एक परिवर्तन शुरू हो गया। क्या यह झूठा स्वाभिमान नहीं है, जो सारे कष्टों का कारण है? अब मेरी पक्की धारणा है कि स्वामी जी की फटकार में अच्छी सलाह के माध्यम से अहंकार तथा ३. १मता को पूर्ण रूप से समाप्त करने के गुण थे।

बड़े लोगों के विचारों को कौन समझ सकता है और कैसे? स्वामी जी के निर्देश पर मैं और एम० आर० अपने शहर के लिये वापस चल पड़े। स्वामी जी के निर्देश के अनुसार इधर-उधर घूमना व्यर्थ है। एम० आर० तिरुवनन्तपुरम के लिये तथा मैं तिरुवल्ला के लिये निकल गया। इसमें बहुत अधिक बताने की जरूरत नहीं है कि स्वामी जी के साथ नीलगिरि में रहने के कारण मेरी जीवनचर्या में अच्छा खासा सुधार आ गया।

तिरुवल्ला में रहते हुए मेरा सारा समय और ध्यान विशेष रूप से आध्यात्मिक कार्यों पर पूर्व की तरह रहता था। धीरे-धीरे लोगों ने भजन-कीर्तन और धार्मिक पुस्तकों के पारायणम् (पाठ) के लिये दूसरे स्थानों पर ले जाना शुरू कर दिया। कई स्थानों पर भजन संघ की स्थापना हो गई।

एक बार मैंने कन्या कुमारी जाकर मन्दिर में देवी की पूजा की और कुछ दिन रुका और दूसरी बार रामेश्वरम् जाकर मैंने अपने माता-पिता के फूल समुद्र में सिरवाये। वहाँ भी मैं एक सप्ताह रुका। वहाँ पर कई और तीर्थ हैं। पुजारी मुझे सभी जगह ले गये और मुझसे सभी मन्दिरों के सरोवरों में स्नान करके बलि* करवा दिया। सेतु में स्नान करने के बाद मैंने फूल समुद्र में डुबो दिये। यद्यपि वहाँ के पण्डे लोगों को कष्ट देते हैं और तीर्थ यात्रियों को बहुत परेशान करते हैं, किन्तु नये आने वाले के लिये उनका सहयोग लेना अति आवश्यक है।

मैं तिरुवल्ला लौट गया। तिरुवनन्तपुरम में एक वेदान्त संघ की स्थापना की गयी और डा. तम्पी को उसका अध्यक्ष बनाया गया।

*बलि - जाती हुई आत्मा की स्वतन्त्रता के लिये दान।

तिरुवनन्तपुरम के संघ के निमंत्रण को स्वीकार करते हुए अगले बार स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम आये। इसकी सूचना तिरुवल्ला भी भेजी गयी।

श्री एम० आर० उस समय भी तिरुवल्ला में मुंसिफ थे। श्री कृष्ण अय्यर और श्री सी०के० कृष्ण पिल्लई को तिरुवल्ला से प्रतिनिधि के रूप में तिरुवनन्तपुरम भेजा गया। वे तिरुवनन्तपुरम गये और स्वामी जी के दर्शन किये। उन्होंने संघ के कार्यक्रमों में भी भाग लिया।

स्वामी जी से वार्तालाप करते समय उन्होंने अपने आप ही स्वामी जी से यह बताया कि तिरुवल्ला में एक मठ स्थापित करने का भी विचार है। स्वामी जी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। लौटने पर उन्होंने यह सूचना एम० आर०, मुझे और अन्य को दी। एम० आर० स्वामी जी के परम भक्त थे, किन्तु उनका स्वप्न में भी मठ स्थापित करने का विचार नहीं आया था। वह बेचैन हो गये कि अब क्या किया जाय। स्वामी जी से कह दिया गया है, अतः किसी भी प्रकार मठ की स्थापना की जाय।

कुछ ही दिनों बाद ही स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम से हरिप्पाट्ट आ जायेंगे और वहाँ से तिरुवल्ला आयेंगे। तब तक सारे आवश्यक इंतजाम कर लिये जाने चाहिये, जिससे आश्रम के नींव का पत्थर रखा जा सके। किन्तु आश्रम के लिये जमीन कहाँ है? और कौन जमीन देगा? ये विचार पूरी तरह छाये हुए थे। एक दिन मैं और एम० आर० पालियक्कर महल गये। जब हमने उसके तत्कालीन मुखिया कोइत्तम्बुरान को सारी बातें बताई तथा परिस्थिति से अवगत कराया तो वह जमीन देने के लिये तैयार हो गये। अगले ही दिन करुमालि महल की चार दीवारी के अन्दर की कुछ जमीन दान दे दी और उसकी रजिस्ट्री भी कर दी।

कुछ आवश्यक कार्य जमीन पर करवाने शुरू कर दिये गये। शिलान्यास का पत्थर भी तैयार करवाया गया। स्वामी जी अब तक हरिप्पाट्ट पहुँच चुके थे। मैं और एम० आर० हरिप्पाट्ट जा पहुँचे और स्वामी जी के दर्शन किये। हम लोगों ने स्वामी जी को शिलान्यास करने के लिये आमंत्रित किया और वापस तिरुवल्ला लौट आये।

दिन-रात हम लोग स्वामी जी के आगमन का बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोगों ने स्वामी जी की अध्यक्षता में संघ का वार्षिक दिन स्थानीय एम.जी.एम. स्कूल में मनाने का निर्णय लिया। श्री रामकृष्ण परमहंस के बारे में कुछ लिखने तथा पढ़ने का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा गया। मुझे और भी कई कार्यों के दायित्व सौंपे गये थे। स्वामी जी के आने के एक दिन पहले मैं प्रातः जल्दी उठ गया और कुछ कागज पर लिखा।

पर क्या? भगवान जाने। अगले दिन प्रातः स्वामी जी कुछ सेवकों के साथ नदी में छोटी नाव से तिरुवल्ला की पुलिककीज घाट आ पहुँचे। सुबह ही से सैकड़ों लोग घाट के पास स्वामी जी के स्वागत के लिये पहुँचे हुए थे। स्वामी जी का पूरे सम्मान के साथ स्वागत किया गया। साथ-साथ एम० आर० के घर तक वाद्ययन्त्रों का संगीत भी बजाया गया, जो दो मील (3 किलोमीटर) दूर था। यद्यपि एक गाड़ी वहाँ स्वामी जी के लिये तैयार थी, किन्तु स्वामी जी पैदल ही चलकर आये।

थोड़ी कुछ देर आराम करने के बाद स्वामी जी ने नये आश्रम (भविष्यादाश्रम) का शिलान्यास 10 बजे प्रातः किया और उत्सव पूरी पवित्रता व शुद्धता के साथ पूर्ण किया गया। तब वह एम० आर० के घर खाना खाने तथा आराम करने के लिये लौट गये।

संघ की बैठक ठीक 4 बजे सायं शुरू हो गयी। कुछ सज्जन जैसे श्री हरिपाट्ट सुब्बाराय अय्यर भी वहाँ मौजूद थे। स्वामी जी ठीक समय से गाड़ी पर बैठकर स्कूल आ गये। बहुत से लोग समूह में वहाँ पहले से मौजूद थे। स्वामी जी बैठ गये। स्वागत भाषण पढ़ा गया। अगला कार्यक्रम, श्री रामकृष्ण के बारे में बताया जाना था। मैं धीरे से उठा और स्वामी जी के चरण छूकर उस लेख को पढ़ा। बाद में स्वामी जी ने कहा कि सभी लोगों ने भक्त का लेख बहुत ध्यान पूर्वक सुना है। यह पुस्तक के रूप में छपना चाहिये।

इसके बाद स्वामी जी ने लोगों को स्वयं सम्बोधित किया और कहा, "यदि किसी को अध्यात्म के बारे में कुछ भी संदेह है तो मुझसे पूछे"। कुछ प्रश्न पूछे गये। स्वामी जी द्वारा गम्भीर आवाज में सटीक उत्तर दिये गये कि प्रश्न करने वाला निरुत्तर हो गया। स्वामी जी में उच्च श्रेणी की कुशलता थी कि वह प्रश्न पूछने वाले को अपने उत्तर से चुप करा देते थे।

आज भी मुझे पूछा गया एक प्रश्न विशेष याद है। उस बैठक में विद्वानों की मंडली एकत्रित थी। एक प्रमुख अध्यापक ने पूछा, Can A Robber be a God?" (क्या कोई डाकू भगवान हो सकता है?) स्वामी जी ने कहा, "Never-Never, A Robber can never be a God?" (नहीं, कभी नहीं — कभी नहीं, एक डाकू भगवान नहीं हो सकता)। स्वामी जी ने यह उत्तर जिस प्रकार तथा जिस शक्ति पूर्वक दिया, उससे पूरा दर्शक वर्ग बहुत जोर-जोर से हंसने लगा।

उसी रात्रि को स्वामी जी को कोट्टायम के लिये जाना था। उस शाम

को काफी लोग स्वामी जी के दर्शन करने एम०आर० के घर गये। उन सबसे विदा लेकर, स्वामी जी छोटी नाव से कोट्टायम के लिये रवाना हो गये। मैं भी उनके साथ गया। अगले दिन हम कोट्टायम पहुँचे। स्वामी जी को श्री पद्मनाभ तम्पी के घर पर विश्राम करना था। उनके घर 4 बजे सायं एक बैठक भी थी। स्वामी जी को सुनने भीड़ उमड़ आयी। स्वामी जी तम्पी के घर गये और खाना खाकर एर्नाकुलम होकर बैंगलोर के लिये रवाना हो गये। मैंने स्वामी जी के साथ चलने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने मुझे मना कर दिया और मुझे निर्देश दिये कि मैं तिरुवल्ला लौट जाऊँ और आश्रम का निर्माण कार्य पूर्ण कराऊँ। अतः मैं तिरुवल्ला लौट गया।

स्वामी जी हरिप्पाट्ट में प्रस्तावित आश्रम का शिलान्यास करने के लिये अगली बार हरिप्पाट्ट आने वाले थे। यह मलयालम का चिङ्गम (तमिल में अवनि, अंग्रेजी में अगस्त-सितम्बर) का महीना था। मैं हरिप्पाट्ट पहले ही पहुँच गया था। इस अवसर पर स्वामी जी बड़े महल में ठहरे थे। श्री पद्मनाभन तम्पी वहाँ प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट थे। श्री सुब्बाराय अय्यर, कुलत्तुमणि, चेल्लप्प स्वामी, मैं और कुछ अन्य लोग वहाँ लगातार स्वामी जी की सेवा में मौजूद रहे।

प्रत्येक दिन प्रातः छः बजे ध्यान का अभ्यास होता था। जिसको ध्यान के अभ्यास में विशेष रुचि थी, उन्हें ही वहाँ भाग लेने की स्वीकृति दी गयी। स्वामी जी सामने बिल्कुल शान्त बैठते थे। जो भक्त ध्यान के अभ्यास में कुशलता प्राप्त करना चाहते थे, वे पहले स्वामी जी को सम्मान सहित साष्टांग प्रणाम करते थे और अपने स्थान पर चुपचाप शान्त बैठ जाते थे। दरवाजे बन्द कर दिये जाते और चारों ओर पूर्णतया खामोशी का वातावरण होता। उसके कुछ देर बाद कार्यक्रम के अन्त में स्वामी जी ऊँ के उच्चारण से एक प्रार्थना शुरू करते और शान्ति मंत्र को समाप्त करते और उठ जाते। सभी प्रतिभागी अपने-अपने स्थान छोड़कर चले जाते। उसके पश्चात काफी पीकर स्वामी जी अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो जाते।

कई लोग उत्सुकतापूर्वक स्वामी जी के दर्शन के लिये आते। कई बार मैं अंग्रेजी न जानने वाले आगंतुकों के विचार और प्रार्थना स्वामी जी को बताया करता था। मैं और कुछ अन्य लोग शाम को स्वामी जी के साथ सायं की सैर के लिये पैदल चला करते थे। मुझे कोई अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है कि स्वामी जी के साथ जीवन में वे क्षण मेरे लिये सातवें स्वर्ग की खुशी प्राप्त करने के बराबर हैं। यह मेरे लिये सबसे बड़ा आशीर्वाद है।

स्वामी जी नवजवानों का विशेष ध्यान रखने थे। जब तिरुवल्ला या अन्य स्थानों से छात्र स्वामी जी के दर्शन के लिये आते, स्वामी जी मुझसे विशेष रूप से कहते — देखो ये सब अच्छे लड़के हैं। तुम विशेष ध्यान देकर इनका मार्गदर्शन में सहायता करो तथा इन्हें सही मार्ग बतलाओ। अब इसमें से कई लोग सन्यासी हो चुके हैं।

शिलान्यास करने का मुहूर्त अष्टमी रोहणी (जन्माष्टमी) के प्रातः का रखा गया। उत्सव की तैयारी स्वामी जी के निर्देश में चल रही थी। डा० स्वामी — स्वामी चितसुखानन्द जी ने आश्रम के लिये एक जमीन का हिस्सा दान किया। भोर होते ही एक जुलूस, जिसमें सजे-धजे हाथियों के ऊपर श्रीरामकृष्ण और श्री विवेकानन्द जी के चित्र थे, के साथ-साथ वाद्य यंत्रों का संगीत था, को लेकर स्वामी जी जुलूस के आगे-आगे चल रहे थे। शिलान्यास स्थल पर भगवद् गीता का पारायणम् (पाठ) तथा चंडी पाठ चल रहा था। मुझे गीता पाठ के लिये चुना गया था। गीता का पाठ समाप्त होते ही स्वामी जी जुलूस के साथ स्थल पर पहुँच गये।

डा० तम्पी, श्री एम० आर०, श्री वेलुपिल्लई और अन्य लोग भी जुलूस के साथ चल रहे थे। श्री राम कृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के चित्र एक पूजा के लिये निर्धारित स्थान पर रख दिये गये। स्वामी जी ने स्वयं उनकी पूजा की। तब एक निर्धारित मुहूर्त पर स्वामी जी ने अपने पवित्र हाथों से शिलान्यास किया। हरिओम!

प्रसाद वितरण के बाद सभी लोग चले गये। स्वामी जी अपने सेवक के साथ बड़े महल की ओर रवाना हो गये। वहाँ एक बड़े भोज का आयोजन था। 12 बजे तक सब लोगों ने भोजन कर लिया और उसके बाद सबने विश्राम किया। 4 बजे सायं स्वामी जी की अध्यक्षता में एक जनसभा स्कूल के प्रांगण में शुरू हुई। श्री सुब्बाराय अय्यर, पद्मनाभन तम्पी और अन्य लोगों के भाषण के बाद आश्रम निर्माण के लिये धन इकट्ठा करने की शुरुआत हुई। स्वामी जी ने स्वयं एक रूपया देकर इसकी शुरुआत की। बहुत से लोगों ने अधिकाधिक धन देने का वचन दिया।

स्वामी जी कुछ और दिन हरिप्पाट्ट में रुके और उसके बाद छोटी नाव से कोल्लम के लिये रवाना हो गये। मैं भी उनके साथ था। कोल्लम में स्वामी जी के साथ हम लोग डा० रामन तम्पी के घर रुके।

स्वामी जी अपने साथ चलने वालों की सुख सुविधा का ध्यान रखते थे। कुछ दिनों कोल्लम में रहने के बाद हम लोग तिरुवनन्तपुरम से होकर कन्याकुमारी आ पहुँचे। मैं पहले भी कन्याकुमारी आ चुका था, किन्तु स्वामी

जी के साथ यात्रा करने और रहने का आनन्द ही कुछ और था। कन्याकुमारी में हम एक सत्र (धर्मशाला) में रुके। हम लोग प्रतिदिन मन्दिर जाकर देवी मां की पूजा करते थे और फिर विवेकानन्द पाषाण (राक) पर जाते थे और वहाँ बैठकर ध्यान करते थे। स्वामी जी वहाँ से कोल्लम होकर बेंगलोर के लिये रवाना हो गये और मुझे तिरुवल्ला वापस भेज दिया।

तिरुवल्ला में आश्रम का निर्माण करीब-करीब पूर्ण हो गया था। हरिष्पाट्ट में मूर्ति स्थापना एवम् प्राण प्रतिष्ठा का उत्सव मेष (अप्रैल-मई) माह में निर्धारित था। स्वामी जी ने निर्देश दिया कि तिरुवल्ला आश्रम में मूर्ति स्थापना और प्राण प्रतिष्ठा का समय उसी अवधि में निर्धारित किया जाय। "टू बर्ड इन वन शाट" वे एक ही बार में दोनों कार्य निपटाना चाहते थे।

पैसा इकट्ठा करने के लिये सम्भावित दान दाताओं की एक सूची तैयार की गई। हम धन एकत्रित करने के लिये जगह-जगह गये, आश्रम के लिये लकड़ी लाये। आश्रम का निर्माण कार्य श्री गोपाल पिल्लइ को अनुबन्ध (Contract) पर दिया गया था, जो उनके द्वारा एक गति से बढ़ रहा था, अप्रैल तक भवन का कार्य भी पूर्ण हो गया। स्वामी जी हरिष्पाट्ट पहुँच गये थे। मैं भी वहाँ गया। स्वामी विशुद्धानन्द जी भी स्वामी जी के साथ आये थे। बहुत जोरदार तथा शानदार तरीके से मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा स्वामी जी के पवित्र हाथों से की गयी।

हरिष्पाट्ट में थोड़ी देर विश्राम करने के बाद स्वामी जी, स्वामी विशुद्धानन्द के साथ तिरुवल्ला पहुँच गये। यहाँ भी जुलूस और अन्य आयोजन किये गये। वर्ष 1913 ई० में अक्षय तृतीया के दिन प्राण प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया। इसके बाद स्वामी जी द्वारा एक सारगर्भित भाषण दिया गया। परम्पनडु।डी के श्री कुंजीराम मेनन ने स्वामी जी के भाषण का अनुवाद अंग्रेजी न जानने वाले श्रोताओं के लाभ के लिये रूचि के साथ किया। स्वामी जी ने आश्रम में अपने रुकने का दायित्व मुझे सौंपा। भिक्षा लेकर (स्वयं पाक) स्वयं खाना पकाना। प्रतिदिन की पूजा तथा नैवेद्यम्। युवा लोगों के लिये ब्रह्मचारी बनाने हेतु प्रशिक्षण, धार्मिक सिद्धान्तों की साधना — उन्हें जनसाधारण में प्रसारित करना और अन्य विभिन्न प्रकार के कार्य और क्रिया-कलाप को सम्पादित किया। स्वामी जी चेंड्गन्नूर से कोल्लम होकर तब बेंगलोर के लिये रवाना हुए।

अब मेरे पास एक ऐसा स्थान था, जहाँ मैं अपनी आध्यात्मिक जीवन की साधना बिना किसी बाधा के स्वतन्त्र रूप से कर सकता था। जब कभी मैं तिरुवल्ला (श्री बल्लभ) मन्दिर में पूजा करता और गर्भ गृह के अन्दर मूर्ति नमन करता, मेरे मन में इच्छा होती कि मैं मूर्ति के और करीब जाऊँ। यद्यपि मैं आश्रम में अकेला था, किन्तु तब भी कई युवा आश्रम आया करते और कार्यों में सहयोग करते — ये रमण पिल्लइ, पदमनाथ पिल्लइ और गोविन्द पिल्लइ आदि थे। स्वामी जी द्वारा मुझे निर्देशित किया गया था कि उनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाय। अतिथि भी अक्सर आते रहते थे। एम० आर० भी अपने परिवार के साथ आया करते थे और पूजा में भाग लेते। सायंकाल के ध्यान, कीर्तन और भजन के समय सामान्यतः 8-10 लोग भाग लेते थे और विशेष अवसरों पर ज्यादा संख्या में लोग आया करते थे। कई लोगों द्वारा विशेष पूजा बीच-बीच में भी की जाती थी। कभी-कभी दूसरे स्थानों मान्मार, कवियूर आदि से भी लोग आते और भजन आदि में भाग लेते तथा दान देते थे। रविवार के दिन मैं पेरिडूर, मुत्तूर, मेप्राल आदि स्थानों पर जाता और छात्रों के बीच भक्ति की भावना जाग्रत करता।

प्रत्येक वर्ष हम लोग श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का जन्मदिन मनाते थे। वार्षिक उत्सवों का आयोजन किया जाता। स्वामी जी प्रतिवर्ष आश्रम में आकर दर्शन देते या अन्य समय आश्रम में आते, उस समय मैं स्वामी जी के साथ समय व्यतीत करता, जो प्रतिदिन मेरी भक्ति और शक्ति को धीरे-धीरे बढ़ाता रहता था।

किल बिषमौक्कयुम पोक्कुवानुल्लोरु

सिद्धौषोधं महत् पाद सेवा

श्रद्धयाय चैयकिलो चित्तमतेलिज्जाशु

भक्तियुम मुक्तियुम लभयामाकुम

अर्थ — पापों को दूर करने के लिये सबसे बड़ी औषधि महापुरुषों के चरण कमलों में सेवा है। यदि यह कार्य पूर्ण भक्ति के साथ किया जाय। दूषित मन पूर्ण शुद्ध हो जाता है और भक्ति और विमुक्ति मिलती है।

स्वामी जी निर्मल हृदय व्यक्ति थे। वह कुछ भी नहीं छुपा पाते। जब कभी भी उनके मस्तिष्क में कोई बात आती, तो वह सभी के सामने आती थी, कुछ छुपा नहीं रहता। वह बहुत गहराई से सभी लोगों की कार्य प्रणाली को देखते थे और विशेषकर मेरी। वे मेरी गलती पर मुझे बुरी तरह फटकारते, जब वहाँ कई लोग इसके गवाह होते और तब मेरी गलती को ठीक करते। कई बार उन्होंने मुझे पीटने के लिये छड़ी भी उठाई। मैं केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। स्वामी विवेकानन्द का जन्मदिन समारोह प्रगति पर था। एक बड़ी जनसभा स्वामी जी की अध्यक्षता में कन्या पाठशाला में आयोजित थी। जब बहुत से प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा भाषण हो गया तो उसके बाद सचिव के रूप में मैंने भी कुछ भाषण दिया। स्वामी जी को मेरे भाषण की भाषा या वाणी (बोलने का तरीका) पसन्द नहीं आया। सभा समाप्त होने पर हम लोग आश्रम आ गये। वहाँ बहुत से लोग उपस्थित थे। लोग मेरे प्रति प्रेम और श्रद्धा रखते थे। आश्रम पहुँचते ही मैंने स्वामी जी के लिये काफी बनाई और एक गिलास काफी लेकर स्वामी जी के पास पहुँचा। स्वामी जी को काली काफी पसन्द थी और वह भी बिल्कुल भाप उठती गरम हो। स्वामी जी मुझे कई बार चाय और काफी बनाने का सही तरीका बता चुके थे। मैं स्वामी जी के पास हाथ में काफी का गिलास लेकर खड़ा था और मुझे देखते ही वह शेर की तरह मेरे ऊपर गरजने लगे — "What! You are posing as Bhakta? You are a false Bhakta. Try to become true Bhakta. And why do you care for these Ashram made of stone & timber? Build the Ashram in your own heart and instal Sree Guru Maharaj there."

(तुम अपने को भक्त बनते हो, तुम झूठे भक्त हो, यथार्थ भक्त होने के लिये कोशिश करो। फिर तुम पत्थर और लकड़ी के बनाये आश्रम के बारे में इतने गौरव से क्यों सोच रहे हो। तुम अपने दिल के अन्दर आश्रम बनाओ उसमें गुरु महाराज को बिठाओ।) क्या दैविक शब्द थे, किन्तु उस समय वे अमर मधु ऐसे शब्द, सही मायने में मुझे अच्छे नहीं लगे। और क्या हो सकता है मेरा अहंकार ही उसका कारण था। अब मैं उन अमृत रूपी शब्दों को गृहण करने की क्षमता और उसकी माधुर्य को सहर्ष स्वीकार करने योग्य हुआ हूँ।

उसके बाद स्वामी जी ने काफी पी और आराम किया। मैं अन्य कार्यों में लगातार व्यस्त रहा। कुछ दिन रुकने के बाद, स्वामी जी मान्मार हरिप्पाट्ट, कोल्लम, तिरुवनन्तपुरम और कन्याकुमारी होकर फिर बैंगलोर के लिये रवाना हो गये। तिरुवितांकूर के अन्दर स्वामी जी के साथ मैं जाया

करता था और उस समय आश्रम चलाने का उत्तरदायित्व किसी और को सौंप देता था।

यद्यपि तिरुवल्ला आश्रम में स्वामी जी को रुकने पर कोई सुख-सुविधा नहीं मिल पाती थी, किन्तु वर्ष में एक बार वह अवश्य ही आया करते और 4-5 दिन लगातार रुकते थे। मुझे स्वामी जी के यहाँ के प्रवास में हो रही असुविधा से काफी दुःख होता। मैं हमेशा सोचा करता कि स्वामी जी के रुकने के लिये अधिक बड़ा और आरामदायक जगह का निर्माण किया जाय। तब मैं वेलियत्तु आशान के पास दौड़ गया। वह एक पुराने नायर परिवार के सदस्य थे। उनके पास बहुत सी जमीन जायजाद थी। "किन्तु देवी लक्ष्मी चंचल हैं और स्थायी रूप से कहीं एक स्थान पर नहीं टिकती"। उनकी जमीन अब दूसरों के पास थी। अब उनके पास तुकलशेरी में ऊँचे स्थान पर एक बंजर टुकड़ा था। वह स्थान आश्रम के लिये सर्वथा उपयुक्त था। मैंने आशान को अपनी आवश्यकता से अवगत कराया। उन्होंने उसी क्षण प्रसन्नता पूर्वक जमीन को दान में देना स्वीकार कर लिया। स्वामी जी से अनुमति मिलने के बाद हमने उस जमीन की रजिस्ट्री करा ली। स्वामी जी के तिरुवल्ला आने पर एक बार मैंने वह जमीन उन्हें दिखाई। उन्हें वह जमीन पसन्द आयी।

समय ऐसे ही व्यतीत होता चला गया। "कालो न यातो वयमेवयताः" सत्य यह है कि समय नहीं बढ़ता, किन्तु हमारी आयु बढ़ती रहती है और मृत्यु की ओर अग्रसित होती है।

स्वामी जी मुझे नियमित रूप से पत्र लिखा करते थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा : 'मैं प्रेसीडेण्ट महाराज (रामकृष्ण संघ के भारत के अध्यक्ष जो बेलूर मठ कलकत्ता में रहते थे) को अपने साथ कन्याकुमारी लाना चाहता हूँ। उनके स्वागत के तथा विभिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार रहने के सभी इन्तजाम करो। मैं उनके आने की तिथि आगे आने वाले समय में अलग से सूचित करूँगा। मुझे यह पढ़कर हर्ष हुआ और कंपकंपी भी छूट गयी। तिरुवल्ला आश्रम की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर थी। आश्रम का कार्य किसी तरह ढपकते हुए चल रहा था। मैंने कभी भी आश्रम के प्रतिदिन के खर्च के लिये धन इकट्ठा करने की इच्छा नहीं की। "अर्थम् — अनर्थम्" (धन दुःख का कारण है)।

फिर भी कुछ धनराशि प्रेसीडेण्ट महाराज की यात्रा के लिये भेजने का सौभाग्य हो गया। शीघ्र ही मुझे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें प्रेसीडेण्ट महाराज का अपने सेवकों के साथ बहुत जल्दी आने का समाचार था। मैं

आलुवाय रेलवे स्टेशन पहुँच गया। मेरे अनुसार यह वर्ष 1916 की बात है। पद्मनाभन तम्पी और अन्य लोग आलुवाय पहले से आ गये थे और महाराज तथा उनके साथ के अन्य लोगों के ठहरने के लिये अलुवापुज (पेरियार नदी) के किनारे एक अच्छा घर तय कर लिया था।

मैं और अन्य लोग आलुवाय रेलवे स्टेशन पर महाराज जी की गाड़ी के आने का उत्सुकता से इन्तजार कर रहे थे। महाराज जी अपने कुछ सदस्यों के साथ उसमें आ रहे थे। करीब 4 बजे सायं ट्रेन आ गयी। लोगों की उद्विग्नता और आकुलता का वर्णन करना असम्भव था। पहले स्वामी जी बाहर आये, फिर प्रेसीडेंट महाराज* धीरे से ट्रेन से उतरे। सभी ने उन्हें झुककर प्रणाम किया। मुझे निश्चय ही महात्मा के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दिव्यता की झलक थी, उनके मुख मण्डल पर, एक दिव्य शान्ति छाई थी। महाराज जी के साथ 3-4 सन्यासी, 2 ब्रह्मचारी और एक खाना बनाने वाला था। स्वामी जी के निर्देश पर कुंजीराम मेनन, अप्पू मेनन, नारायण नायर और अन्य भक्त रास्ते में एकत्रित थे।

हम लोग प्रेसीडेंट महाराज के लिये निर्धारित आवास पर पहुँच गये। स्वामी जी ने मुझसे कहा "देखो ये तुम्हारे भगवान हैं, जो आ गये। तुम अब इनसे मंत्र दीक्षा और अन्य चीजें प्राप्त करोगे"। यद्यपि मैं स्वामी जी के साथ 4-5 वर्ष से था, किन्तु उनके मुख से कभी भी ध्यान या मंत्रोपदेश एक शब्द भी नहीं सुना था। स्वामी जी से यह सुनकर मैं गदगद हो गया और महाराज की सेवा करने की मेरी इच्छा दोगुनी हो गयी। मैं महाराज जी के साथ आये अन्य लोगों को प्रसन्न करने या सन्तुष्ट करने में प्राणपण लग गया।

महाराज के अतिरिक्त निर्मलानन्द स्वामी जी, शंकरानन्द स्वामी जी, दुर्गानन्द स्वामी जी, भूमानन्द स्वामी जी तथा यतीश्वरानन्द स्वामी जी, ब्रह्मचारी गोपाल भी थे। शंकरानन्द स्वामी जी वर्तमान अध्यक्ष हैं। यतीश्वरानन्द स्वामी जी अब बैंगलोर आश्रम में हैं।

महाराज, आलुवाय में आराम से रह रहे थे। वे आराम कुर्सी पर टेक लगाये हुए नदी की ओर देख रहे थे। भक्त जन उनके दर्शन के लिये आ रहे थे। महाराज हमेशा ध्यान की अवस्था में रहते थे। वह कभी ज्यादा बातचीत नहीं करते थे। फिर भी वह कभी-कभी विख्यात मंदिरों की

महत्ता एवम् वृन्दावन तथा अन्य तीर्थों की पवित्रता के बारे में बताते थे। जो सभी को प्रसन्नता प्रदान करता। केवल उनका दर्शन मात्र ही कृपा थी और यदि वह दर्शन के साथ अपने अमृत रूपी वचन से भी हमें कृतार्थ करें तो उसके क्या कहने।

यह मेरी आदत बन गयी थी कि जब भी मुझे समय मिलता मैं उनके पास जाकर खड़ा हो जाता। यह मेरे लिये असम्भव था कि मैं उनकी ओर से अपनी दृष्टि हटाऊँ। जब मैं एक बार उन्हें लगातार देख रहा था, तो उन्होंने मुझे इशारा करके अपने पास बुलाया और कहा — "What do you want, what do you want" (तुम क्या चाहते हो — तुम क्या चाहते हो)। उस क्षण मेरे मन में आया कि वे मुझे अपने पैरों की पादुका देने की कृपा करें। यह सुनकर उन प्रभु ने कहा यह चमड़े के चप्पल हैं। कलकत्ता लौटने पर मेरे द्वारा प्रयुक्त की जा रही अपनी लकड़ी की पादुका (खड़ाऊँ), भेज दूँगा और उन्होंने अपने निजी सचिव श्री शंकरानन्द स्वामी जी को सीधे निर्देश दिये कि एक जोड़ी पादुका मुझे भेज दी जायँ। वह पादुका अब भी तिरुवल्ला के श्री रामकृष्ण आश्रम में श्रद्धा से रखी है।

बारिश का मौसम होने के बावजूद भी दो-तीन दिन आराम से आलुवाय में रुकने के बाद एक रात्रि स्वामी जी एक विशेष स्टीम बोट से कोट्टायम के लिये रवाना हो गये। तेज पानी और हवा दोनों चल रहे थे, जिससे नाव इधर से उधर डोलने लगी, किन्तु प्रेसीडेंट महाराज ने सबको सात्वना दी और सभी सदस्य अगले दिन सुरक्षित कोट्टायम पहुँच गये। पद्मनाभन तम्पी ने एक बड़े भवन में उनके रुकने का इन्तजाम किया था। वहाँ वे एक-दो दिन रुके। कोट्टायम से वे एक कार द्वारा पद्मनाभन तम्पी तथा अपने निजी सचिव के साथ हरिप्पाट्ट चले गये। मैं और अन्य लोग स्टीम बोट से हरिप्पाट्ट गये। बहुत लोग जगह-जगह पर प्रेसीडेंट महाराज के स्वागत के लिये खड़े थे।

करीब 4 बजे सायं प्रेसीडेंट महाराज हरिप्पाट्ट पहुँचे। उनका हरिप्पाट्ट में भव्य स्वागत का आयोजन किया गया था तथा आश्रम तक पहुँचाने के लिये भी लोग गये। आयोजकों की तीव्र इच्छा थी स्वामी जी पालकी में बैठें तथा वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए पानी से भरे घड़े, कीर्तन तथा नादस्वरम् संगीत के साथ आश्रम ले जाया जाय। किन्तु महाराज इसके लिये सहमत नहीं हुए। क्या मैं अपने विवाह के लिये जा रहा हूँ? हरिप्पाट्ट आश्रम में उन्होंने आराम किया। हम लोग स्टीम बोट से हरिप्पाट्ट लगभग 8 बजे सायं पहुँचे। मैं सीधे प्रेसीडेंट महाराज के पास पहुँचा और उन्हें

*प्रेसीडेंट महाराज — स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज थे, (जो राखाल और श्री महाराज के नाम से विख्यात थे) श्री राम कृष्ण परमहंस के परम् भक्त शिष्य थे और रामकृष्ण संघ वेल्लूर, कलकत्ता के प्रथम अध्यक्ष थे।

साष्टांग नमन किया। फिर स्वामी जी के दर्शन करके मैंने खाना खाया और सो गया।

महाराज निश्चय ही हरिष्पाद आश्रम में आराम से थे। स्वामी जी उनके आस-पास हमेशा तैयार रहते, ताकि वह उनकी छोटी से छोटी जरूरत पूरी कर सकें। वह केवल वहाँ देखकर ही समझा जा सकता है कि कितनी भक्ति पूर्वक स्वामी जी महाराज की सेवा करते थे। महाराज के साथ आये सन्यासी तथा ब्रह्मचारियों के ठहरने तथा सोने की अच्छी व्यवस्था करवाकर स्वामी जी एक ढके हुए बरामदे में सोते थे। आस-पास के क्षेत्र के भक्तजन झुण्ड में महाराज के दर्शन के लिये आते थे। स्वामी जी ने मुझसे कहा, "देखो कल सुबह महाराज मंत्र दीक्षा देंगे। तुम तैयार रहो, उचित रहेगा कि रात्रि में खाना न खाओ। अगले दिन प्रातःकाल जल्दी नहाकर तैयार रहो और हाथ में कुछ फूल और फल लिये रहना। मंत्र दीक्षा के बाद ही तुम पानी पीना"। "अगर तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं, मैं तुम्हें दूँगा" मैं बहुत खुश था। मेरे पास कुछ पैसे थे। स्वामी जी ऐसा और लोगों को भी समझा रहे थे और सभी तैयार हो रहे थे। मैंने बाजार जाकर फूल फल चन्दन लेप तथा अगरबत्ती खरीदी। सारी रात्रि मेरे मन में यह एकमात्र विचार रहा। मैं पूजा कक्ष के निकट खड़ा हूँ। स्वामी जी पूजा कक्ष बहुत सुबह पहुँच गये थे। श्री शंकरानन्द स्वामी जी पूजा कक्ष के बाहर खड़े थे। मेरे स्वामी जी भी वहीं थे। स्वामी जी ने सबसे पहले मुझे बुलाया और पूजा कक्ष में जाने को कहा। स्वामी शंकरानन्द जी को प्रणाम करने के बाद मैं कक्ष में गया। क्या दिव्य दृश्य था। दक्षिणमूर्ति स्वयं ध्यानावस्था में थे। मैंने महाराज के सामने साष्टांग — दण्डवत् कर प्रणाम किया। उनके निर्देश पर मैं एक निर्धारित स्थान पर बैठ गया। अर्चना पूर्ण होने पर और अन्य क्रिया कलापों के बाद मुझे मंत्रोपदेश दिया गया। मैं पूरी तरह कृतकृत्य हो गया। महाराज के चरणों में फल फूल अर्पित करने के बाद मैंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और फिर बिना किसी विचार के मैं बाहर आ गया। मैं फिर बहुत समय महाराज के शयन कक्ष में जप और ध्यान में मग्न रहा।

दोपहर को 12 बजे भव्य भोज का आयोजन हुआ। अगले ही दिन महाराज कोल्लम के लिये रवाना हो गये। मैं भी उनके साथ था। जब हम कोल्लम में डा० तम्पी द्वारा रुकने के लिये निर्धारित स्थान पर पहुँचे, तो रात्रि हो चुकी थी। हम लोग करीब 3 दिन रुके। अगली यात्रा तिरुवनन्तपुरम के लिये थी।

स्वामी जी ने पहले ही से 4-5 युवाओं को कोल्लम से तिरुवनन्तपुरम में रहने की आवश्यक व्यवस्था करने के लिये भेज दिया था। महाराज और उनके साथी सायंकाल तिरुवनन्तपुरम कार से पहुँचे। मैं और अन्य लोग बस के द्वारा जा पहुँचे। वह एक शुभ दिन था। अगला दिन त्रिकार्तिक था। पूरा भवन दीपावलियों से आलोकित था। प्रेसीडेंट महाराज को तिरुवनन्तपुरम में एक जगह शिलान्यास करना था।

तिरुवनन्तपुरम से 4-5 मील (6-8 किलोमीटर) दूर एक स्थान वट्टियूरकावु था। वह एक छोटी सी पहाड़ी थी। स्वामी जी को वहाँ एक आश्रम स्थापित करने की उत्कंठा थी। राज्य सरकार के एक इंजीनियर श्री बनर्जी के अनुरोध पर जमीन के मालिक, एक सरकारी ठेकेदार श्री घोष, ने जमीन का अधिकतर भाग आश्रम के लिये दान देने पर सहमत हो गये। पेरूरक्कड़ा (तिरुवनन्तपुरम शहर का एक भाग) के श्री वारियर तथा डा० तम्पी भी इस परियोजना के लिये इच्छुक थे। इस आश्रम के शिलान्यास के लिये शुभ समय तय किया गया। महाराज के आने के अगले दिन सुबह शिलान्यास का आयोजन किया गया। स्वामी जी उस स्थान को एक दिन पूर्व रात्रि को देखने गये और वहाँ पूजा तथा हवन इत्यादि किया। अगले दिन प्रातः प्रेसीडेंट महाराज कार से आश्रम स्थल पर पहुँचे। मैं और अन्य लोग उनके पीछे पैदल और घोड़ा गाड़ी से पहुँच गये। बहुत से लोग अपने आप वहाँ पहुँचे। प्रेसीडेंट महाराज ने संस्कृत एवम् अंग्रेजी में स्वागत भाषण दिया। महाराज के निर्देश पर शिलान्यास करने से पूर्व स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने पूजा सम्पन्न की। उसके बाद महाराज ने अपने पवित्र हाथों से नींव का पत्थर रखा, प्रसाद वितरण किया गया। एक ग्रुप फोटो भी ली गयी। उस चित्र की एक कापी कुछ आश्रमों में अब भी लगी है।

एक-एक करके लोग चले गये। प्रेसीडेंट महाराज एक कुर्सी पर विराजमान हो गये। उन्हें वह स्थान बहुत ही पसंद आया था। मैं उनके पास खड़ा था। उन्होंने मुझसे कहा "भक्त! यह कितना सुरम्य स्थान है, यह स्थान साधना और भजन के लिये सर्वथा उपयुक्त है। तुम इस स्थान पर रुको और कुछ युवाओं को ब्रह्मचारी (त्यागी) बनाओ।

महाराज की केरल यात्रा का मुख्य उद्देश्य कन्याकुमारी का दर्शन करना था। उद्देश्य पूर्ति के लिये खाना खाने के बाद थोड़ा विश्राम करके महाराज कन्याकुमारी के लिये कार से रवाना हो गये। वह सायंकाल वहाँ पहुँच चुके थे। मैं और अन्य लोग थोड़ी देर बाद वहाँ पहुँचकर उनके साथ हो गये। एक अच्छे से घर में उनके ठहरने का इन्तजाम किया गया था।

उनके साथी-सहयोगी उनके साथ वहाँ रहे। मैं और अन्य लोग एक सरकारी सत्र (धर्मशाला) में ठहरे।

उसी सायंकाल को महाराज दीपाराधना (आरती) के समय मां के दर्शन के लिये पैदल चल पड़े। हम लोगों ने भजन कीर्तन करते हुए उनका अनुसरण किया। महाराज बिल्कुल शान्त थे। स्वामी जी उनके पास थे। हम लोग मंदिर के अन्दर गये। गर्भ गृह में प्रवेश किया। जिन पर पूरा संसार निर्भर करता है, उस जगमोहनी, जगदुद्धारणी देवी मां की रत्नों से सजी सुन्दर मूर्ति को देखकर महाराज एकदम बेसुध हो गये। सब कुछ भूलकर बोले, ओह ! क्या भव्यता है। पूर्ण कृपा! हम सभी लोग कृतार्थ हो गये।

प्रसाद गृहण करने के बाद जब महाराज घर के लिये वापस आने को थे, बहुत सी कुमारी महाराज के पास आयीं और अपने हाथ बढ़ाये। महाराज के अलावा स्वामी जी भी हमेशा धन लेकर तैयार रहते। स्वामी जी, महाराज के हाथ में एक के बाद एक सिक्के रखते जाते। महाराज के पीछे-पीछे आवास तक कुमारियों का यह झुण्ड चलता रहता और आवास पहुँचने पर वापस जाता। यह प्रतिदिन होता था। दिन के समय बच्चे भी महाराज के निवास पर आया करते थे। कई बार महाराज बच्चों को खाने की सामग्री अपने हाथ से दिया करते थे। हम लोग महाराज का बच्चों के साथ वार्ता तथा हास-परिहास का आनन्द लेते थे। वह स्वयं बच्चे बनकर बच्चों के साथ हंसते बोलते और आनन्दित होते।

एक दिन वहाँ कुमारी पूजा की गयी। सभी कन्याओं को खाना खिलाया गया और प्रसन्नता पूर्वक अच्छे कपड़े दिये गये। उन कन्याओं ने खुशी के साथ नाचा और गाना गाया और अपने-अपने घर वापस चली गयी। छोटे बच्चों को खाना खिलाने से भगवान प्रसन्न होते हैं, यह सत्य है।

प्रेसीडेंट महाराज और उनके सहयात्री पूरे एक सप्ताह कन्याकुमारी में रहे। जब भी मुझे मौका मिलता मैं महाराज के पास चला जाता। एक दिन महाराज ने इन शब्दों के साथ मुझे सुशोभित किया — आह कितना रमणीय स्थान है? मैं, यहाँ से वापस जाना ही नहीं चाहता। यदि यहाँ एक कुटी बना दी जाय तो पूर्ण तपस्या के साथ शेष जीवन यहीं विश्राम करूँगा।" बड़े लोगों की मानसिक स्थिति को समझना आसान नहीं है। उनकी संसार की जीवन यात्रा कमल के पत्ते पर पानी की बूंद के समान है। पदम् पत्रम् इवा अम्भासि। (जिस प्रकार जल कमल के पत्ते को नहीं

भिगोता, उसी प्रकार भौतिक वस्तुएं उनके दिल को नहीं छूती)।

केवल सौभाग्यशाली महात्मा, जो ब्रह्मानन्द में सर्वदा रत रहते हैं, को विषय सुख स्पर्श नहीं कर सकता (क्या इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव उस आनन्द की अनुभूति को स्पर्श कर सकता है, जो ब्रह्मानन्द में निरन्तर रत रहने वाले सौभाग्यशाली महात्मा को प्राप्त होता है?) नहीं, कभी नहीं।

स्वामी जी के मन में मात्र एक ही विचार था — प्रेसीडेंट महाराज और उनके साथियों की पूर्ण संतुष्टि। स्वामी जी के पास जो थोड़ा बहुत खाली समय बचता तो मैं उनके पास जाकर बैठता। उन्हें सभी कलाएं और विज्ञान पता थे। मैंने उसका पूर्व में वर्णन किया है। एक दिन मैं और कुछ अन्य लोग स्वामी जी के पास बैठे थे। उन्होंने एक-एक करके बुलाया और हमारे हाथ (हस्त रेखा) देखने लगे। उन्होंने मुझे भी बुलाया। एक क्षण उन्होंने मेरा हाथ देखा, उन्होंने कहा, Bhakta, will go into a cave and go on meditating & meditating (भक्त, एक गुफा में जायेगा और निरन्तर ध्यान करता रहेगा)।

कन्याकुमारी में प्रवास का समय समाप्त हो रहा था। कन्या कुमारी जाने से पहले, महाराज ने कुछ लोगों को मंत्रोपदेश दिये। एक पदम्नाभ पिल्लइ, जो जर्मनी से वापस आये थे और दूसरे सुखानन्द स्वामी जी (वर्तमान में) इन दो को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उस समय श्री नाणु पिल्लइ नागरकोइल (कन्या कुमारी के उत्तर में 15 मील दूर एक छोटा शहर) में पी.डब्ल्यू.डी. इन्जीनियर थे। वह भी भक्त थे। वे विशेष निवेदन करके प्रेसीडेंट महाराज को नागरकोइल ले गये। मैं भी उनके साथ गया। एक भव्य भोज का आयोजन किया गया। भोजन के बाद रात्रि आराम कर महाराज नागरकोइल से अगले दिन प्रातः कोल्लम के लिये रवाना हो गये।

इस बार महाराज कोल्लम में 5-6 दिन रुके। डा० तम्पी पूर्व में महाराज से मंत्रोपदेश प्राप्त कर चुके थे। वह महाराज की इच्छाओं की पूर्ति हेतु तत्पर थे। यहाँ महाराज ने स्वामी अगमानन्द जी तथा दूसरों को मंत्रोपदेश दिया और एक इन्जीनियर को भी।

सुब्बाराय अय्यर और ब्रह्मचारी चेल्लप्पा हरिप्पाट्ट से कोल्लम आये। वे बड़ी आशा के साथ महाराज को एक बार पुनः हरिप्पाट्ट ले जाने के लिये आये थे। महाराज को भी हरिप्पाट्ट जाने में प्रसन्नता थी। किन्तु वे उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर पाये, क्योंकि अब बिना देर किये उन्हें कलकत्ता वापस जाना था।

महाराज विशेष स्टीम बोट से एर्नाकुलम के लिये रवाना हो गये। मैंने बहुत दिनों से आराम नहीं किया था और मेरा शरीर कमजोर हो गया था। किन्तु मेरे मन मस्तिष्क में जो मजबूती और शक्ति आयी थी वह दुर्लभ थी।

किल विषमौक्कयुम पोक्कुवानुल्लोरु
सिद्धौषोधं महत् पाद सेवा
श्रद्धयाय चेत्यकिलो चित्तमतेलिज्जाशु
भक्तियुम मुक्तियुम लभयामाकुम्*

दुर्लभम् त्रयमेवैतत् दैवानुगृहाहैतुकम्
मनुष्यत्वम् मुमुक्षुत्वम् महापुरुषाः समश्रयाः

(केवल तीन चीजें बड़ी दुर्लभता से मिलती हैं और वह भी भगवत् कृपा से। मनुष्य का जन्म, मोक्ष की इच्छा और बड़े लोगों का साथ और सेवा)

मैं प्रेसीडेण्ट महाराज की सेवा में निरन्तर दिन-रात लगा रहा, जैसे कि साक्षात् भगवान की सेवा की जा रही हो। मेरी महाराज का भोजन बनाने वाले के प्रति भी भक्ति थी। एक बार कन्या कुमारी में प्रवास के दौरान मैंने देखा कि भोजन बनाने वाले के कपड़े सरोवर के किनारे पड़े हुए हैं। यतीश्वरानन्द स्वामी जी वहाँ आये तो मैं उस समय स्वेच्छा से उसके कपड़े धो रहा था। यतीश्वरानन्द स्वामी जी ने यह समझा कि भोजन पकाने वाले के आदेश से मैं कपड़े धो रहा हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा, "What are you doing?" He (The cook) is taking too much advantage of your leniency. (तुम क्या कर रहे हो? यह खाना बनाने वाला तुम्हारी सहृदयता का फायदा उठा रहा है)। फटकारते हुए उन्होंने मेरे हाथ से कपड़े छीन लिये और उन्हें फेंक दिया। मेरे विचार से भोजन बनाने वाले को इस बारे में कभी पता भी नहीं चला होगा।

जैसा कि तुम जानते हो मैं एक अद्यावसानवेशा (मैं किसी कार्य के लिये प्रारम्भ से अन्त तक रहने वाला) हूँ। मैं सबको भोजन से संतुष्ट कराके अन्त में भोजन करने वाला हूँ। कुछ ऐसे अवसर भी आये जब आंकलन से अधिक लोग भोजन पर आ गये तो मैं बिना भोजन भी रहा हूँ। उस अवसरों पर मैं होटल को जाता भोजन करता और वापस आ जाता। प्रेसीडेण्ट महाराज को खुश करना बहुत आसान काम था, किन्तु उनके साथ आये, कुछ युवा संन्यासियों को प्रसन्न करना बहुत कठिन था।

*इसका अर्थ पृष्ठ-45 पर दिया जा चुका है।

कोल्लम में एक बार ऐसा हुआ। एक दिन अकेले मैं 16 लोगों को भोजन करा रहा था, भूमानन्द स्वामी जी ने नमक के लिये कहा, लेकिन गलती से मैं उनको शक्कर दे गया। ऐसा नहीं था कि उनको मुझसे स्नेह नहीं था, किन्तु उस अवसर पर उन्होंने मुझे कठोर भाव से फटकारा और पूछा कि जब मैंने नमक मांगा था तो मुझे शक्कर क्यों दी। स्वामी जी उनके बगल में बैठे थे। जिस क्षण उन्होंने अनावश्यक फटकार सुनी, स्वामी जी सिंह की तरह गरजने लगे "What, have you no eyes to see. Serving and serving, he is reduced to a skelton. He might have made a mistake. But this is no way to behave towards him." (क्या तुम्हें आंखों से नहीं दिखाई देता। भूखे रहकर और सेवा करते करते यह हड्डी का ढांचा रह गया है। उसकी गलती हो सकती है, किन्तु यह उससे बात करने का तरीका नहीं है)। जैसे शेर के गरजने से सारे जानवर चुप हो जाते हैं, वैसे सभी लोग बिलकुल चुपचाप हो गये। सभी लोगों ने अपना भोजन पूर्ण शान्ति के साथ किया और अपने-अपने स्थान पर चले गये।

मैंने इस घटना का जिक्र केवल श्री स्वामी जी के आश्रित लोगों के प्रति वात्सल्य को बताने के लिये ही किया है। यहाँ मैं श्रीकृष्ण की उस घटना का पुनः स्मरण कराना चाहता हूँ, जो अपना प्रण भूल कर, अपने रथ से कूदे और सीधे सुदर्शन चक्र हाथ में लेकर भीष्माचार्य के पास दौड़ गये।

अगले दिन प्रातः प्रेसीडेण्ट महाराज का विशेष स्टीम बोट से एर्नाकुलम जाना निर्धारित था। मेरे मन में उनके साथ कलकत्ता जाने की प्रबल इच्छा थी। मैं आश्वस्त था कि प्रेसीडेण्ट महाराज अपने आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। किन्तु मैं स्वामी जी की अनुमति के बिना कैसे जा सकता हूँ। जिस क्षण स्वामी जी को कलकत्ता जाने के मेरे विचार के बारे में पता चला, उन्होंने मुझसे पूछा - "If you go away, who will be here to look after my work, the Ashram etc." (यदि तुम कलकत्ता चले जाओगे तो आश्रम का काम तुम्हारे पीछे कौन देखेगा)। मेरे पास इसका उत्तर नहीं था।

प्रातः जल्दी ही मैंने काफी बनाई। स्वामी जी उससे ही पहले काफी पिये बिना घाट (रुकने का स्थान) को चले गये। मुझे आघात लगा। काफी को आग के पास रखकर मैं घाट की ओर भागा-भागा गया और नाव में चढ़ गया। स्वामी जी ने पूछा - "काफी कहाँ है?" मैं दौड़कर वापस आया और काफी लेकर गया तथा और सभी को काफी दी। स्वामी जी प्रसन्न थे।

नाव ने चलना शुरू किया और करीब 12 बजे दोपहर को त्रिकुन्नप्पुज़ पहुँची। सुब्बाराय अय्यर और चेल्लप्पा वहाँ खाने पर महाराज के आने का इन्तजार कर रहे थे। अब समय आ गया था, मैं प्रेसीडेण्ट महाराज उनके सहयोगियों और स्वामी जी से विदा लूँ। महाराज और स्वामी जी का आशीर्वाद लेकर मैं नावे से नीचे उतर आया। 4-5 मिनट में नाव आँखों से ओझल हो गयी। शिव-शिव।

मैं अपनी स्थिति का वर्णन कैसे कर सकता हूँ। जैसे चमकते हुए प्रकाश से कोई घने जंगल की अंधेरी गहरायी में डाल दे यह स्थिति थी। मैंने किसी तरह कुछ खाना निगला। चेल्लप्पा स्वामी के साथ मैं हरिप्पाट्ट आश्रम गया और आराम किया।

ओम् - ओम् - ओम्

(8)

श्री राम कृष्ण मिशन के कार्यों में सहयोग - आत्मिक शक्ति

अगले ही दिन प्रातः मैं पल्लीप्पाट्टु होकर तिरुवल्ला के लिये रवाना हो गया। पल्लीप्पाट्टु में कोइक्कल वालों का एक छोटा किन्तु सुन्दर कृष्ण भगवान का मन्दिर था। पूर्व में मैंने इस मन्दिर में एक दो महीने भजन पूजा की थी। एक बार मैंने वहाँ भागवत् सप्ताह भी किया था। उस मन्दिर के मालिक श्री गोविन्द पिल्लइ और श्री वेलु पिल्लइ को मैं जानता था।

मैं तिरुवल्ला लौट आया और आश्रम की देखभाल में जुट गया। मेरा मन प्रेसीडेण्ट महाराज की यात्रा और प्रवास के दौरान हुई बहुत सी घटनाओं में डूब गया। कलकत्ता पहुँचे ही उनके द्वारा प्रयुक्त लकड़ी के खड़ाऊँ, उन्होंने मुझे भेज दिये। मैं उन खड़ाऊँ की पूजा बड़ी भक्ति के साथ करता था। आज भी वह तिरुवल्ला के आश्रम में हैं।

बहुत से विचार मेरे मन में उठते हैं, जब मैं महाराज जी के मधुर शब्दों पर विचार करता हूँ। मैं पुनः कब भाग्यशाली हूँगा, जो मैं उनके अमृत रूपी वचन सुनूँगा और दर्शन करूँगा। एक बार, स्वामी जी, महाराज जी के शरीर पर तेल मल रहे थे। मेरी भी तेल लगाने की इच्छा थी। महाराज के पीछे जाकर खड़े होकर मैंने भी उनकी पीठ में तेल लगाना शुरू कर दिया। हंसते हुए महाराज ने कहा "What is Bhakta doing, painting? (भक्त क्या कर रहा है? पेंटिंग?) मैं बहुत हल्के-हल्के तेल लगा रहा था। तेल लगाने के लिये उस हिस्से को ठीक तरह से मालिश करना चाहिये था, किन्तु मैं यह नहीं जानता था।

महाराज हमेशा समाधि अवस्था में रहते। मैं जब भी उनके निकट जाता, वह यह कहते Meditate, meditate, no time to loose (ध्यान करो ध्यान करो, समय को बरबाद न करो)। जैसे ही महाराज करीब आते मन शान्त हो जाता। वह इतना तेज स्पन्दन अपने चारों ओर उत्पन्न करते थे। मैं निरन्तर उनके पास जाने की कोशिश करता। एक बार महाराज हरिप्पाट्टु के आश्रम में खाट पर लेटे थे। वह दृश्य मेरे मस्तिष्क में अब भी ताजा है। महाराज इस प्रकार दिखाई दे रहे थे।

करारबिन्देन पदारबिन्दम् मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्

वटस्य पत्रस्य पुटे सयानम्

बालम् मुकुन्दम् मनसा स्मरामि।

(श्रुषि मार्कण्डेय द्वारा यह दृश्य देखा गया था। स्वामी जी ने उस दृश्य का वर्णन किया है। बाल मुकुन्द (श्रीकृष्ण) जो अपने कमल रूपी हाथ से अपने कमल रूपी पैर के अंगूठे को अपने कमल मुख में रखे हुए हैं और एक वट पत्र पर टेक लगाये हुए)

कोटि युगङ्गलायि सञ्चयीच्चीदुन्न

पुण्य फलमाणी मर्त्यजन्मं

तेदुविन सदगुरु पाद पदमम्

पुनर्नेदुविन सौभाग्यम् ज्ञानामृतम्

मैं अब अधिकतर तिरुवल्ला आश्रम में रहता था। कभी-कभी मैं हरिष्पाट्ट और तिरुवनन्तपुरम जाया करता था। जब कभी स्वामी जी तिरुवल्ला आते थे, मैं हमेशा उनके साथ रहकर सेवा में लगा रहता, जब तक कि वे वापस नहीं चले जाते। स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम के आश्रम को पूर्ण करवाने के लिये बहुत अधिक भागदौड़ कर रहे थे। एक बार तिरुवनन्तपुरम के आश्रम के लिये धन इकट्ठा करने की मुहिम चलाई गयी तथा उसकी शुरुवात तिरुवनन्तपुरम में एक रात्रि की गयी। स्वामी जी ने उसके दान के रजिस्टर में अपना नाम स्वयं चढ़ाया और उसी समय एक रूपया दान दिया। उसी समय बहुत से लोगों ने धनदान करने की शपथ ली तथा रु० 2000 का धन देने का वादा लोगों ने किया।

पेरुरक्कडा श्री रामवारियर स्वामी जी के परम भक्त थे। वह आश्रम के लिये कुछ भी करने को तत्पर थे। उन्हें और अन्य को आश्रम के कार्य का दायित्व सौंप कर स्वामी जी कन्या कुमारी के लिये रवाना हो गये और वहाँ से बैंगलोर चले गये।

स्वामी जी मुझे अक्सर पत्र लिखा करते थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा "Bhakta, you go to Trivandrum. They are all sleeping. Wake them up." (भक्त, तुम तिरुवनन्तपुरम जाओ। वे सब सो रहे हैं, उन्हें जगाओ)। मैं उसी समय तिरुवनन्तपुरम पहुँच गया और स्वामी जी के भक्तों से मिला और उनको स्वामी जी का आदेश सुनाया। सभी लोगों ने अपने यथा सम्भव प्रयास शुरू किये। उन्होंने आवश्यक पत्थर लकड़ी तथा अन्य निर्माण सामग्री पहले ही इकट्ठा कर ली थी। मैं आश्रम के निर्माण क्षेत्र में 3 दिन रुका, जो पूर्णतयः वीरान था। श्री अरुणाचलम् पिल्लइ जो उस स्थान के मालिक थे, वह उस पहाड़ी के नीचे अपने परिवार के साथ रहते थे। वे मुझे नियमित रूप से भोजन भेजते थे। मैं दिन में एक ही बार भोजन

करता था। मैंने 3 दिन बड़े आराम और खुशी से गुजारे। तीसरे दिन प्रातः नौ बजे इंजीनियर श्री बनर्जी वहाँ आये। सभी लोग इससे प्रसन्न थे। उन्होंने आश्रम के लिये निर्धारित क्षेत्र का दौरा किया और वह स्थान चिन्हित किया जहाँ आश्रम का निर्माण हो सकता था और खूँटे लगवा दिये तथा क्षेत्र को चिन्हित कर लिया। निर्माण कार्य का मुखिया भी उनके साथ था और उसी दिन कार्य शुरू हो गया। मैं तब कन्या कुमारी गया और कुमारी के दर्शन करके तिरुवल्ला लौट आया। मैंने सारी स्थिति से स्वामी जी को अवगत कराया। कहने की आवश्यकता नहीं, स्वामी जी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम के आश्रम के प्रति विशेष ध्यान देते थे। उनकी इच्छा थी कि मूर्ति पूजा उत्सव भी प्रेसीडेण्ट महाराज द्वारा ही सम्पन्न होना चाहिये। स्वामी जी धन संग्रह के लिये जगह-जगह जाया करते थे। अक्सर वे तिरुवनन्तपुरम भी आया करते थे। दीवारें बन चुकी थी, पत्थर के बड़े खम्बे तराश कर चिकने करके उठाकर सीधे निर्धारित स्थानों पर रखे जा रहे थे। मैं भी स्वामी जी के साथ जाकर यह कार्य देखता था। बड़ई, राज, कारीगर और श्रमिकों को एक बड़ा भोजन स्वामी जी ने अपने आवास पर दिया, ताकि वे उत्साह पूर्वक अपने कार्यों को गति दे सकें।

उस अवसर पर स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम में काफी दिन रुके। केवल मैं उनके साथ था। यद्यपि स्वामी जी उन कार्यों की भाग-दौड़ में लगे रहा करते, किन्तु उनका मन शान्त था। स्वामी जी ने बहुत प्रसन्नता से कहा, "भक्त, देखो यह कितना अलग-थलग और वीरान स्थल है। यह हमें कितनी प्रसन्नता दे रहा है, क्योंकि यहाँ कोई और नहीं है। यहाँ आदमी भगवान को दिल से याद कर सकता है। बहुत जोर से गा सकता है, नाच सकता है। और कौन हम लोगों को देखेगा और सुन सकेगा।

श्री सी० के० कृष्ण पिल्लइ, जज, भी स्वामी जी के भक्त थे। हम उनके घर पर उनके निमन्त्रण पर गये। वहाँ से कन्या कुमारी और वहाँ से कोल्लम।

उत्तरी मलबार में कोयिलाण्डी नामक स्थान में वहाँ के कुछ प्रमुख व्यक्तियों द्वारा रुचि लेने पर एक "योग मठ" की स्थापना की गई। उस मठ के मुख्य सदस्य और कार्य कर्ताओं में श्री कृष्ण नायर, केलप्पन किडावु, इट्टिरारप्प मेनोन आदि थे। वर्ष 1915 में उन्होंने यह मठ स्वामी जी को देने के लिये प्रस्ताव किया। जब यह प्रस्ताव आया तो मैं भी कोयिलाण्डी में था। उस दिन से वह मठ रामकृष्ण आश्रम में बदल गया। स्वामी जी एक ऐसे सुयोग्य व्यक्ति की तलाश में थे, जो आश्रम को और

उसके अन्तर्गत संस्कृत स्कूल को चला सके और उन्होंने मुझे इस कार्य के लिये चुना।

उस समय कुछ ब्रह्मचारी तिरुवल्ला आश्रम में आया करते थे। श्री रमण पिल्लइ (शेखरानन्द स्वामी) रमण पिल्लइ (चित्भासानन्द स्वामी) पद्मनाभ पिल्लइ (निर्विकारानन्द स्वामी) पाचु पिल्लइ, शंकर अय्यर। एक दिन स्वामी जी ने डा० तम्पी से और अन्य से कहा "I am going to instal Bhakta at Quilandy" (मैं भक्त को कोयिलाण्डी में प्रतिष्ठित करने जा रहा हूँ)। मेरी जन्मभूमि तिरुवल्ला से यह परिवर्तन मुझे पसन्द आया। स्वामी जी ने निर्देश दिया — तुम आज ही कोयिलाण्डी चले जाओ। मुझसे कहा कि डा० तम्पी यदि तुम्हें पैसे दें, तो भी स्वीकार न करना और मुझे दस रुपये दिये। उन्होंने एक व्यक्ति को साथ किया, जो नाव के घाट तक मुझे छोड़ आया।

कोल्लम से एर्नाकुलम् के लिये ट्रेन से परप्पनडु।डी पहुँचा। वकील श्री कुंजीराम मेनन वहाँ रहते थे। वे स्वामी जी के बड़े भक्त थे और आश्रम के क्रिया-कलापों में विशेष रुचि रखते थे। एक-दो दिन उनके पास रुकने के बाद मैं एक शाम को कोयिलाण्डी जा पहुँचा। वहाँ मेरे आने पर जो घटना हुई, उसे मैं वर्णित करना आवश्यक समझता हूँ।

एक ब्रह्मचारी आशान ने जैसे ही मुझे दूर से देखा वह तीर की तरह मेरे पास आया और साष्टांग दण्डवत् किया। उसके बाद वह दौड़कर एक नारियल के पेड़ पर चढ़ गया और एक मुलायम सा नारियल पेड़ से तोड़ा और फिर नारियल को तोड़कर खोल अलग किया और हाथ में लेकर मेरे सामने खड़ा हो गया और मुझे नारियल पानी पीने के लिये तैयार किया। एक सच्चे स्नेह और प्यार का यह रूप। उसके बाद मैंने श्री कृष्णन नायर, जो उसे मठ के मुखिया रूप में वहाँ थे, उनसे बात की और ब्रह्मचारियों, अध्यापकों तथा छात्रों से वार्ता की और फिर विश्राम किया। नहाने के बाद प्रार्थना, ध्यान और फिर खाना। उस रात्रि मैं आराम से सोया।

अब मैं आश्रम के बारे में कुछ बातें बताऊँगा। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मठ पहले ही स्वामी जी को दिया जा चुका था। इसके बाद भी श्री कृष्णन नायर उसका संचालन कर रहे थे। वह आश्रम में ही रहा करते थे। जब मैं वहाँ पहुँचा, तो तीन ब्रह्मचारी भी वहाँ रहते थे। वे श्री कृष्णन नायर की सेवा करते थे। उनसे कृष्णन नायर नौकर की तरह व्यवहार करता था। इसके अतिरिक्त श्री कृष्णन नायर की एक पत्नी थी। आश्रम के पास ही आश्रम की एक जमीन पर वह रहती थी। मैं समझ चुका था कि मुझे

कोयिलाण्डी भेजने का अर्थ था मठ के आश्रम व जमीन की बागडोर, वास्तविक रूप से श्री कृष्णन नायर के हाथ से लेकर, स्वामी जी के अधीन करना था।

वहाँ एक छोटी सी संस्कृत-पाठशाला थी, जो आश्रम के अधिकार में थी। उसके लिये सरकार से थोड़ा सा अनुदान मिलता था। स्वामी जी ने मुझे ऐसे ही नहीं भेजा था। स्वामी जी ने आवश्यक आत्म बल दिया था, जिससे मैं इन कार्यों को भली प्रकार से कर सकूँ।

मैंने अपना कार्य कोयिलाण्डी पहुँचने के अगले दिन से ही प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले मैंने अपना ध्यान शिक्षा की ओर केन्द्रित किया। मैंने छात्रों से परिचित होना शुरू किया। बच्चे भी मेरे साथ खुश थे और उनकी संख्या बढ़ने लगी। मैं मुख्य अध्यापक हो गया। मैंने उन्हें थोड़ा-थोड़ा अंग्रेजी पढ़ाना भी शुरू कर दिया। जब इंसपेक्टर आफ स्कूल निरीक्षण पर आया, तो बहुत खुश हुआ और अनुग्रह धनराशि रु० 25/- बढ़ा दी।

धीरे-धीरे आश्रम के प्रबन्ध का कार्य श्री कृष्णन नायर से मुझे हस्तान्तरित हो गया। कृष्णन नायर आश्रम से हटकर अपने घर में पत्नी के साथ रहने लगे थे। फिर भी कभी-कभी वह यह देखने चले आते कि आश्रम में क्या हो रहा है। स्वामी जी वर्ष में एक बार आश्रम में अवश्य आते थे। वह आश्रम के कार्य से बहुत प्रसन्न थे।

स्वामी जी के निर्देशानुसार मैं आश्रम का कार्य निजी तौर पर देखा करता था। कुछ असरदार लोग जिन्होंने मन ही मन में आश्रम के प्रति मैं-मैं तथा मेरी-मेरी का विचार बनाया हुआ था, वे मन ही मन मेरे प्रति दुर्विचार पालने लगे। जब उन्हें लगा कि उनका आश्रम में कोई प्रभाव नहीं है, तो उन्होंने आश्रम को हथियाने तथा पुनः अपने वश में लेने के लिये प्रयास शुरू किये। उन्होंने कोशिश की कि वे अपने गुरु स्वामी को आश्रम के अन्दर रखें। उन्होंने उसके लिये मुझसे सहमति मांगी। जैसे ही मुझे उनके वास्तविक मन्तव्य का पता चला, मैंने अनुमति के लिये मना कर दिया कि स्वामी जी की पूर्व अनुमति के बिना सहमति नहीं दे सकता। यह उन्हें बिल्कुल पसन्द न आया और मैं कह सकता हूँ कि मेरे प्रति उनकी नाराजगी तथा आक्रामकता सौ गुना बढ़ गयी। जो ब्रह्मचारी मेरे साथ भी थे, वे छोड़कर जाना चाहते थे। मैं बिल्कुल अकेला था। छात्रों की पढ़ाई, पूजा, खाना बनाना, सामान का बाजार से खरीदना, कभी-कभी पोस्ट आफिस जाना, मुझे यह सारे कार्य अकेले निबटाने थे।

जब यह सारे कार्य इसी प्रकार आगे बढ़ रहे थे, एक दिन एक छात्र

ने, जो पास के मंदिर के पुजारी का बेटा था, अलग आकर मुझसे कहा, "स्वामी जी, कल बहुत से लोग मंदिर में आये थे। वे सभी आपको यहाँ से भगाना चाहते हैं। वे सब वहाँ चाय-पान करते समय यह बातें कर रहे थे। वे आज सायं इस आश्रम में जबरदस्ती घुस कर उस पर अधिकार करना चाहते हैं"। यह सब मैंने बहुत शान्ति से सुना। मेरी सारी शक्ति स्वामी जी की प्रदत्त थी। मैंने बच्चे से केवल कहा, "उन्हें आने दो"। मैं उस सायंकाल बिना किसी कार्य के पोस्ट आफिस गया। मुझे कोई डर नहीं महसूस हुआ। मैंने सोचा, यदि वे आते हैं, तो उन्हें अन्दर आने में किसी प्रकार की कठिनाई न महसूस हो। यह सोचकर मैंने आश्रम का सामने वाला दरवाजा, फाटक पूरा खुला छोड़ा तथा मुख्य दरवाजा भी खुला छोड़ दिया। मुझे पोस्ट आफिस जाने तथा वापस लौटने में करीब डेढ़ घण्टा लगा। मेरे मन में पक्का विश्वास था कि बिना मेरी अनुमति के एक बच्चा भी आश्रम की चार दीवारी के अन्दर नहीं आयेगा। और बिलकुल ऐसा ही हुआ। मैं जब पोस्ट आफिस से वापस आया, सब कुछ वैसा ही था, जैसा कि मैं छोड़ गया था। सत्य की शक्ति कुछ अलग है और ईश्वर की कृपा में भी एक अद्भुत शक्ति है। मैंने महसूस किया कि इन सभी क्षणों में स्वामी जी लगातार मेरे साथ थे। यह बताना आवश्यक है कि इस घटना ने मेरे विश्वास और भक्ति को और बल प्रदान किया।

कोयिलाण्डी आश्रम के कार्यों को करने में लगातार कठिनाइयाँ आती रही। यह प्रथम जर्मन युद्ध (प्रथम विश्व युद्ध) का समय था। चावल व अन्य सामग्रियों के मूल्यों में तेजी से वृद्धि हुई और आश्रम में प्रतिदिन 4-5 आदमियों के भोजन की व्यवस्था की जाती थी। मैं कभी-कभी सोचता था कि यदि चावल का मांड सबको मिल जाय तो उनका सौभाग्य है। मेरी आँखों से आँसू निकल आया करते थे और अगले ही क्षण समस्या का समाधान मेरी समझ में आ जाता कि समस्या ऐसे हल होगी। उसके बाद कभी भी ऐसी घटना नहीं हुई।

कुछ समय के लिये वकील श्री कुंजीराम पतियार - स्वामी चिन्मयानन्द - आश्रम में रुके। भक्त के साथ-साथ वह विरक्त आत्मा व्यक्ति थे। वह बच्चों को स्कूल में पढ़ाया करते थे। यह मेरे लिये बड़े सहायक थे। उनकी इच्छा थी कि वह सब कुछ त्याग कर आश्रम में रहें। अपना गृह त्याग कर वे बिना झिझक शीघ्र कोयिलाण्डी आश्रम में आ गये। अपनी वकालत छोड़कर कुंजीराम पतियार मलयालम अखबार "कुडियान" के सम्पादक हो गये। बाद में पट्टाभ्मी संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य बहुत वर्ष तक रहे।

अन्त में वह सन्यासी हो गये।

जब भी मैं अकेला होता, स्वामी जी मेरी सहायता के लिये युवा ब्रह्मचारी भेजा करते थे। एक बार रामशरणम् शेखरानन्द स्वामी जी मेरे साथ ठहरे यह वर्ष 1919 रहा होगा। स्वामी जी के पत्र लगातार आते रहते थे। मेरी बँगलोर जाकर स्वामी जी के पास रहने की इच्छा लगातार बढ़ रही थी। यदि मैं उनसे अनुमति मांगता हूँ तो मुझे नहीं मिलेगी। मैंने एक दिन एक पत्र में पद्य के रूप में स्वामी जी को सूचित किया कि मैं बँगलोर उन्हें देखने आ रहा हूँ और पूरे आश्रम को चलाने की जिम्मेदारी ब्रह्मचारी को सौंप दी और बँगलोर को चल दिया। अगले दिन नौ बजे प्रातः मैं बँगलोर आश्रम पहुँच गया। स्वामी जी अपनी काफी पीने के बाद बगीचे में कार्य कर रहे थे।

स्वामी जी की आदत थी कि जल्दी उठकर वह नित्यक्रिया से निवृत्त होकर काफी तैयार करते, स्वयं लेते और आश्रम में रहने वाले लोगों को देते। बर्तन वे स्वयं साफ करते थे और उसे उचित स्थानों पर रखते थे। वे उसके बाद धूम्रपान करते और बागीचे के लिये प्रयुक्त सामान लेकर बागीचे की ओर चले जाते।

स्वामी जी यह सारा काम बिलकुल शान्त होकर करते थे - शान्त बिलकुल शान्त।

यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलम् शम्भो तवाराधम्
(मैं जो भी कर रहा हूँ, हे भगवान शिव, सब तेरी आराधना है)

बुद्धिमान व्यक्ति स्वामी जी के जीवन के प्रत्येक क्षण से यह सिद्धान्त समझ सकते हैं। क्या कार्य को पूर्ण क्षमता एवम् सही तरीके से करने का नाम योग नहीं है?

निश्चय ही स्वामी जी एक सच्चे भक्त, योगी, ज्ञानी और कर्मी थे। यह सारी बातें मुझे अभी ही पूर्ण रूप से समझ में आयीं।

स्वामी जी ग्यारह बजे तक बागीचे का कार्य या पूजा कहिये, समाप्त करते, तब वह नहाने जाते थे, वह अपने कपड़े स्वयं धोते और सुखाने के लिये फैलाते थे। बड़ी सफाई सुथराई के साथ और बड़े करीने से। फिर पूजा गृह से चरणामृत लेकर वह खाने के लिये अपने निर्धारित स्थान पर जा बैठते। सारे आश्रम के ब्रह्मचारी और सन्यासी उनके साथ बैठते थे। खाना खाने के बाद धूम्रपान करके वे फिर आराम करते। तीन बजे हाथ-मुँह धोकर, वह चाय और उसके साथ फल या बिस्कुट इत्यादि

लेते। यह वह समय था जब लोग सामान्यतः आते और प्रणाम करते। वह छात्रों का स्वागत स्नेह और लगाव के साथ करते, बहुत गहरायी की बातें करते थे और उनको संतुष्ट करते थे। सांय की दीप आराधना (आरती) में भाग लेकर और भोजन समाप्त करके वह आराम से सोने के लिये चले जाते। उनके कमरे के पास में सोने का भाग्य भी मुझे मिला।

किल विषमौक्कयुम पोक्कुवानुल्लोरु

सिद्धौषौधं महत् पाद सेवा

श्रद्धयाय चैयकिलो चित्तमतेलिज्जाशु

भक्तियुम मुक्तियुम लभयामाकुम

मैं कहाँ हूँ? हाँ, मैं अपने हाथ में कुछ भेंट लिये हुए हूँ। मैं स्वामी जी के स्वभाव को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं डरते-डरते स्वामी जी के पास पहुँचा और वह भी पीछे की ओर से। एक बार उन्होंने मुड़कर मेरी ओर देखा। मैं स्वामी जी के चरणों में गिर गया। Who told you to come here (किसने तुम्हें आने के लिये कहा था?) उन्होंने गुस्से में मुझे फटकारा और वह व्यंगात्मक तरीके से मेरे पत्र की कविता के अंश पढ़ने लगे।

मैं बहुत ही दुखी था। उस समय मैं स्वामी जी के बाह्य व्यवहार को ही केवल समझ पाया। उन दिनों मुझमें क्षमता नहीं थी कि मैं स्वामी जी के अन्दर हृदय में जो प्यार, स्नेह से भरा है उसकी कार्य प्रणाली को समझ सकूँ। अब मैं समझ सकता हूँ कि यह आशीर्वाद के शब्द स्वामी जी ने मुझे और मजबूत बनाने के लिये घुमा-फिरा कर कहे थे।

मैं सोच रहा था कि मैं क्या करूँ, क्या मुझे यहाँ से चले जाना चाहिये? उस दशा में, मैं धीरे-धीरे चलता हुआ दरवाजे तक आया और धीरे से बाहर निकला। आज भी वह दृश्य मेरी आंखों के सामने था। एक घना जंगल क्षेत्र — अलग-थलग तथा चारों ओर निर्जन और मैं अकेला था — भगवान के सिवाय मेरी सहायता करने वाला कोई नहीं था। इस सोच ने मुझे आवश्यक साहस और समझने की शक्ति दी। मैं आश्रम लौट गया। स्वामी जी ने लोगों से पूछा — भक्त कहाँ है? स्वामी जी बहुत खुश थे और मैं वहीं आश्रम में रहा।

प्रेसीडेंट महाराज (प्रथम प्रेसीडेंट — स्वामी ब्रह्मानन्द जी — जिनकी तिरुवल्ला और अन्य स्थानों पर सेवा की थी) ने स्वामी जी के बारे में कुछ इस प्रकार कहा, "He is a terrible man. But he is a great devotee as well." (यह बहुत विकट आदमी है किन्तु ये बहुत बड़े भक्त भी हैं।) यह प्रश्न कि कैसे दो बिल्कुल विपरीत गुणों, जैसे प्रकाश और

अन्धकार एक साथ एक व्यक्ति में रह सकते हैं। स्वामी जी की जिन्दगी इसका जीता-जागता सटीक उदाहरण था। मैं 3-4 दिन खुशी के साथ रह ही पाया था कि एक दिन स्वामी जी ने कहा, Bhakta, why not you go to Tiruvalla and take charge of Ashram there? There all are hankering after you. (भक्त, क्यों नहीं, तुम तिरुवल्ला चले जाते और वहाँ के आश्रम का कार्यभार देखते? वहाँ सब तुम्हारे आने के लिये बहुत प्रतीक्षा कर रहे हैं।) यह कुछ नहीं, एक प्रकार का आदेश था और मैंने उसे खुशी के साथ स्वीकार किया। मैंने अगले दिन जाने का निश्चय किया।

स्वामी जी ने मुझे आज्ञा दी, कुछ पत्र उत्तर मलबार के भक्तों के लिये लिखूँ, मैं लिखने लगा। स्वामी जी ने अनौपचारिक तौर से मुझे अपनी कुर्सी पर बैठा दिया, वह एक गोल कुर्सी थी और स्वामी जी की पसंददीदा कुर्सी। मैं क्या कर सकता था? मुझे कुर्सी पर बैठना था और पत्र लिखने थे। स्वामी जी मेरे पास आकर खड़े हो गये और लिखने के बारे में बताने लगे। स्वामी जी के मातृत्व भरे प्यार को देखिये। मैं जब कभी ये सारी चीजें याद करता हूँ तो मेरा मस्तिष्क स्वामी जी के विचारों में खो जाता है।

स्वामी जी ने अगले दिन 4 बजे सांय: मुझे जाने की आज्ञा दी। स्वामी जी के निर्देश पर एक ब्रह्मचारी वीरेशन एक घोड़ा-गाड़ी ले आया। स्वामी जी ने मुझे तथा कोयिलाण्डी में रहने वाले अन्य लोगों के लिये नये कपड़े दिये और मुझे यात्रा के लिये धन दिया। सेलम में एक आश्रम था, उन्होंने बिल्व (बेल) के कुछ पौधे सेलम के आश्रम में लगाने के लिये दिये जो रास्ते में पड़ता था और मुझे घोड़ा-गाड़ी तक छोड़ने आये जो मुझे स्टेशन तक छोड़ने जा रही थी। ब्रह्मचारी वीरेशन मुझे स्टेशन तक छोड़ने आया। स्टेशन पहुँचकर वीरेशन ने मुझे गाड़ी में बैठाया और आश्रम लौट गया। उन दिनों में भी वीरेशन बहुत चतुर और योग्य युवक माना जाता था। आज वह सम्भवानन्द स्वामी जी के नाम से जाने जाते हैं।

अगले दिन मैं सेलम में उतर गया। स्वामी जी के एक बड़े भक्त के घर में जा पहुँचा, उन्हें स्वामी जी का पत्र दिया। उन्होंने बड़े प्यार से मेरा स्वागत किया। उसी शाम को मैं आश्रम चला गया। स्वामी जी के निर्देशानुसार मैंने जमीन खोदी, गढ़वों को खाद से भरा और फिर उन पर मिट्टी डाली और बेल के पौधे लगा दिये। उसके बाद मैं सेलम कभी नहीं गया। मैंने कई लोगों से सुना है कि वह पौधे अब मजबूत पेड़ बन गये हैं।

स्वामी जी के सेलम वाले भक्त का नाम नामगिरि था। उन्होंने मुझे कई प्रमुख व्यक्तियों से मिलवाया। वहाँ तीन दिन रुकने के बाद मैं

कोयिलाण्डी के लिये चल दिया। मैं रास्ते में पट्टाम्भी रूका, ताकि मैं कुंजीराम पतियार – स्वामी चिन्मयानन्द से, जो मुझसे बहुत स्नेह करते थे, मिल सकूँ। पट्टाम्भी से कोयिलाण्डी जा पहुँचा।

अब यह पूजा (दशहरा की नवरात्रि) का समय था। स्वामी जी द्वारा दिये गये नये कपड़े मैंने सब को बाँटे। मैंने सारी बातें ब्रह्मचारी को बता दीं। अचानक मेरे विचारों में परिवर्तन हो गया। स्वामी जी का निर्देश था कि मैं फिर तिरुवल्ला जाऊँ। तिरुवल्ला मेरा घर है, यदि मैं वहाँ जाता हूँ तो मेरी ध्यान और साधना के विकास में बाधा आयेगी, अतः मेरा मन वहाँ जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। स्वामी जी द्वारा बेंगलोर में की गयी फटकार ने मेरे इस सोच को बल दिया। क्या यह सम्भव है कि स्वामी जी के निर्देश का उल्लंघन किया जाय? मैंने इसके बारे में बड़ी गहरायी और विस्तार से सोचा। “Now I am going not to Tiruvalla but to Gokarnam, where I intend to do Tapasya for some time. Whatever I have done was only to please Swamiji. With Swamiji's blessings now I am going. All is false and I can not rest satisfied until and unless I come face to face with Truth. (अब मैं तिरुवल्ला नहीं, गोकर्णम् जा रहा हूँ, वहाँ कुछ समय तपस्या करूँगा। जो कुछ भी मैंने किया वह केवल स्वामी जी को प्रसन्न करने के लिये किया। स्वामी जी के आशीर्वाद से अब मैं जा रहा हूँ। सभी कुछ झूठा है मैं तब तक संतुष्ट नहीं हो जाता, जब तक कि मैं सच्चाई के सम्मुख न हूँ।)

स्वामी जी को ऐसा लिखकर मैं दौड़कर पोस्ट आफिस गया और चिट्ठी डाल दी। जब मैं वापस आया तो मैंने अपने कृत्य का विश्लेषण किया। ओह! क्या बेवकूफी है? मैंने महसूस किया कि मैंने बड़े दयालु और स्नेही स्वामी जी के प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है, लेकिन मैं अपने को जाने से रोक भी नहीं सका। क्या मुझमें अब भी झूठा अहंकार है? मेरे मन में जो विचार थे, वे किसी बुरे कार्य के लिये नहीं थे, केवल भगवान की पूजा के लिए थे। इस विचार ने मुझे सांत्वना दी। दुर्गा अष्टमी के दिन कुमारी पूजा सम्पन्न की गयी और मैं कोयिलाण्डी आश्रम लौट गया। जो कुछ थोड़ा बहुत पैसा था, मैंने ब्रह्मचारी को सौंप दिया और बिना एक पैसा लिये चला आया। मैं भगवान की शरण में हूँ।

त्वमेव सर्वम् मम् देव देव।

(हे भगवान, तुम ही मेरे सर्वस्व हो, देवताओं के देवता हो।)

द्वितीय अध्याय

आश्रम से करीब 2 मील (3 कि०मी०) दूर एक देवी का क्षेत्र है, जो शारिका मन्दिर के नाम से विख्यात है। वह रात्रि मैंने मन्दिर के कलत्तट्टिल* में गुजारी। अगले दिन मन्दिर छोड़कर मैं उडिपी के लिये चल दिया और 1-2 दिन में पहुँच गया। 'उडिपी' में भगवान श्रीकृष्ण का क्षेत्र है। श्रीकृष्ण के दर्शन करने के बाद मैं उडिपी में 3 दिन रहा। मुझे गोकर्णम् पैदल जाना असम्भव लगा। कुछ लोगों ने मुझे सलाह दी कि यह उचित होगा कि मैं बलच्ची से गोकर्णम् स्टीम बोट से जाऊँ। उसकी सलाह के अनुसार एक शाम को मैं बलच्ची पहुँच गया। मैं वहाँ बैठकर मंगलौर से आने वाली नाव की प्रतीक्षा करने लगा। मैंने सोचा था कि मैं मुफ्त में यात्रा कर सकूँगा। किन्तु बिना टिकट यात्रा करना असम्भव दिखाई दिया। बलच्ची में नाव आयी, सभी यात्री नाव में चढ़ गये और मैं अकेला रह गया। मैंने स्टेशन मास्टर को अपनी स्थिति बतलाई, उसने कहा, "तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? मैं तुम्हें बिना किसी कठिनाई के भेज देता। अब क्या किया जा सकता है? अच्छा, बताओ, तुम्हारे पास कितने पैसे हैं? जब मैंने खोजबीन की तो मुझे ढूँढ़कर 3 रुपये मिले। गोकर्णम् का किराया मैं समझता हूँ कि 5 रुपये लगता था। उसने बाकी पैसे अपनी ओर से मिलाये और मुझे टिकट दिया। उसने मुझे 8 आने (50 पैसे) खाने के लिये दिये। मैंने 2-3 आने (12-19 पैसे) में चिउड़ा लिये और मैं दौड़कर नाव के अन्दर बैठ गया।

यह मेरी पहली सामुद्रिक यात्रा थी। इससे पहले एक बार रामेश्वरम् जाते हुए समुद्र में एक छोटी दूरी पार की थी। नये-नये दृश्यों को देखकर मैंने सामुद्रिक यात्रा का आनन्द लिया। यदि पैसा है तो खाना कोई समस्या नहीं है। मेरे पास कुल 4-5 आना था और कुछ चिउड़ा। मैंने उस चिउड़ा को पीने वाले पानी के अन्दर डाल दिया और उसे मिलाकर खा लिया। उसी अवधि में चन्द्रग्रहण होने वाला था। एक पुजारी उस नाव में आया और विभिन्न स्थानों के लोगों से पैसे के लिये जबरदस्ती आग्रह करने लगा। मैं श्री स्वामी जी के द्वारा दिये गये कीमती कपड़े, पहने था, उसने मुझे धनवान आदमी समझा और मुझे भी परेशान करने लगा।

*कलत्तट्टिल : मन्दिर के अन्दर ठहरने का स्थान।

मैंने उसे कई बार समझाया कि मेरे पास कोई धन नहीं है किन्तु इसके बाद भी मैं उसे समझा नहीं पाया। वो मेरे पीछे पड़ गया। उसने कहा कि मुझे धन नहीं चाहिये, मैं आपको अपने घर ले जाने आया हूँ और आप मेरे घर ठहरें। अगले दिन नाव उसके स्थान पर पहुँच गयी। सब उतर गये। वहाँ से गोकर्णम् मन्दिर 3 मील (5 कि०मी०) था। वह ब्राह्मण पुजारी मुझे अपने घर ले गया और उसने मुझे वहाँ रुकने का निमंत्रण दिया। मैंने अपनी, जो छोटी-मोटी चीजें थीं, एक कमरे में रख दीं। उस समय रात्रि के 9 बजे थे। बिना देरी किये मैंने मन्दिर का सर्वेक्षण किया, नहाया और घर वापस आ गया। मैं बहुत भूखा था, उसने मुझे ठंडा चावल परोसा। जरा से चावल खाकर मुझे दस्त आ गया। मैं बरामदे में जाकर सो गया।

अगले दिन सुबह जल्दी उठकर मैं नित्य क्रिया से निवृत्त हुआ। मैंने अपनी सब चीजें घर में छोड़ दीं। उस दिन पूर्णमासी थी और चन्द्रग्रहण 5 बजे सायं से था। सुबह की पूजा के बाद मन्दिर 10 बजे बन्द हो जाता था। मैं समुद्र के किनारे चलते-चलते एक एकान्त सुन्दर स्थल पर पहुँच गया। वहाँ नहाने और स्वच्छ पीने के पानी और अन्य सभी सुविधाएँ थीं। वहाँ सीता राम का एक छोटा मन्दिर था। उस मन्दिर से जुड़ी हुई एक रसोई थी। यह एक काफी ऊँचा स्थल था, उसके नीचे लहराता समुद्र उसे गले से लगाये था। वहाँ से परिदृश्य बहुत ही सुरम्य दिखाई देता। स्नान करने के बाद मैं मन्दिर के बरामदे में बैठ गया और जप एवं ध्यान करने लगा। मैं 10 बजे ब्राह्मण के घर जा पहुँचा और भिक्षा ली, उसके बाद मैंने उस क्षेत्र के चारों ओर का सर्वेक्षण किया।

विख्यात है कि इस स्थान पर रावण ने कठिन तपस्या की थी। अब भी वहाँ एक छोटा सा तालाब है। कहा जाता है कि रावण ने पहला मल-मूत्र यहाँ त्यागा था। आज भी वहाँ का पानी छूने योग्य नहीं समझा जाता। इस मन्दिर में भगवान शिव का विग्रह है। विभिन्न स्थानों से हजारों लोग आज भी इस मन्दिर के दर्शन करने आते हैं। बिना रोक-टोक के कोई भी मन्दिर में जाकर पूजा कर सकता है, किन्तु मलयाली लोगों को यह छूट नहीं है। उन्हें 8 आना (50 पैसा) देकर ही मन्दिर में पूजा करने की स्वीकृति मिलती है। मेरे पास पैसे कहाँ थे?

छः बजे चन्द्र ग्रहण समाप्त हो गया। बहुत सी स्त्रियों एवं पुरुषों ने समुद्र में स्नान किया और पूजा करने के लिये मन्दिर चलने लगे। मैं भी पूजा के लिये उनके साथ था। मन्दिर में प्रवेश के लिये ब्राह्मण पुजारी मेरी ओर से पैसे देने लगा, किन्तु मैं धन ग्रहण नहीं करना चाहता था। मैं

श्लोक गाते हुए मन्दिर की परिक्रमा करता रहा और बाद में एक कोने में शान्त भाव से बैठ गया। गुरुदेव द्वारा दिये गये मन्त्रों का पाठ करता रहा और मैं बहुत प्रसन्न था। उस रात्रि मैं ब्राह्मण के घर जाकर, खाना खाकर सो गया। अब वह समझ चुका था कि मेरे पास कोई धन नहीं है। उसके फिर भी उसने मुझे बरामदे में सोने की अनुमति दी, किन्तु मैं यहाँ किसी के घर रुकने नहीं आया था।

अगले दिन ही मैं रामतीर्थ चला गया, राम मन्दिर एक निर्जन स्थान में था। बहुत से भिखारी गोकर्णम् आया करते थे। उनमें से बहुत से मलयाली भी होते थे। मैंने उनमें से किसी से भी मेलजोल नहीं किया। मैं मधुकरी भिक्षा पर रहने लगा। (मधुकरी भिक्षा / मधुरिका भिक्षा सन्यासियों की भिक्षा माँगने की एक प्रणाली है। इस भिक्षा के अनुसार सन्यासी किसी घर के सामने भगवान के नाम पर हल्की आवाज में घर की गृहणी को पुकार कर यह बताता है कि भिक्षुक आया है। और जो कुछ भी भिक्षा में दिया जाय, उसे स्वीकार करता है। इस प्रकार 4-5 घर से जो कुछ भी खाने की सामग्री मिले, उसे अगले भोजन में समाप्त कर लेना चाहिये और कुछ भी इकट्ठा नहीं करना चाहिये। यदि किसी घर से कोई भिक्षा नहीं मिलती तो सन्यासी को अगले समय का भोजन छोड़ देना चाहिये तथा पानी पीकर रहना चाहिये तथा भगवान का नाम लेना चाहिये। किसी घर में नियमित रूप से नहीं जाना चाहिये और न उस घर में पहले से भिक्षुक का हिस्सा तैयार होना चाहिये। यह मधुमक्खी के द्वारा कुछ फूलों पर जाकर मधु को इकट्ठा करने की कार्य प्रणाली के आधार पर बना है।) किन्तु राम मन्दिर से 2-3 घरों पर जाने और लौटने पर 2-3 घंटे लग जाते थे। कई बार, मैं 2-3 दिन बिना खाना खाये रहता था।

सारी पूजा की सामग्री समय से पूर्व ही इकट्ठा करने की आवश्यकता होती है।

“शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्”

यदि शरीर की ठीक तरह से देखभाल न की गयी, वह धीरे-धीरे कमजोर होकर समाप्त हो जायेगा, मस्तिष्क अपने आप ध्यान करने की क्षमता खो देगा। मधुकरी भिक्षा सन्यासियों के लिये सर्वोत्तम है, किन्तु वह मेरी क्षमता के बाहर था और 2-3 मील दूर भिक्षा माँगने जाना मेरे लिये असहनीय था। मैं पहले ही कह चुका हूँ, मेरे पैरों की क्षमता जा चुकी थी। अतः मैंने अपने मित्रों को लिखकर कुछ धन मंगाया और उससे मैंने अपना भोजन बनाना शुरू किया।

एक भिक्षु जिससे कुछ जान-पहचान हो गयी थी, वह मेरे साथ आ गया। वह बाजार से मेरे लिये सामग्री लाता था।

मैंने इस प्रकार कुछ दिन राम आश्रम में गुजारे और मैं वहाँ से स्वामी जी को बराबर पत्र लिखता रहा। मुझे लोगों ने बताया कि यहाँ से 3 मील (5 कि०मी०) दूर उमा-महेश्वरम् स्थल है। एक दिन मैं उस स्थान को गया। वह बहुत ही खूबसूरत स्थान था। एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा मन्दिर था। वहाँ पर केवल एक आदमी किसी प्रकार रह सकता था। यह तपस्या के लिये आदर्श स्थल था। समुद्र की लहरें उसके नीचे के भाग से टकराती थी। शुद्ध स्वच्छ पानी पहाड़ी के नीचे प्राप्त किया जा सकता था। वहाँ नारियल के पेड़ों का एक छोटा सा झुंड था और उस पहाड़ी के नीचे एक छोटी धर्मशाला थी। जैसे ही इन सब चीजों को देखा मेरे मन में यहाँ रुकने की इच्छा जगी। मैं राम आश्रम वापस आ गया, मैंने अपने मित्र को सब कुछ बताया। मैंने उसे कुछ पैसे दिये। मैंने हरी मूँग की दाल खाकर वहाँ रहने का निर्णय किया। मैं कुछ हरी मूँग की दाल खरीदकर उस दिव्य स्थल पर पहुँच गया और उस मन्दिर के अन्दर रहने लगा।

भगवान ने मुझे सब तरह की चीजों के लिये बनाया था। मैं पहाड़ी के नीचे उतरता, एक पानी से भरा बर्तन लेता और सुबह नित्य शौच के लिये जाता। पहले समुद्र में स्नान करता, उसके बाद स्वच्छ पानी के जल के सोते में नहाता। पहाड़ी के ऊपर एक बूँद भी पानी नहीं था। अतः ऊपर जाते समय ध्यान करके पानी का बर्तन भरकर ले जाता। कभी-कभी मैं कुछ जलावन भी ले जाता। वह एक बंजर पहाड़ था जिस पर केवल घास थी, कोई पेड़ नहीं था।

प्रकृति की इन कठिनाइयों के उपरान्त भी मैं मानसिक रूप से पूर्ण आनन्दित था। मैं पूर्णतयः जप और ध्यान में लीन रहने लगा। मैं हरी मूँग की दाल पकाता और एक बार खाता। कभी-कभी मैं रात्रि को भी कुछ ले लेता। कुछ साधु, जो मुझे जानते थे, वे मुझसे कभी-कभी मिलने भी चले आते। मैं उन्हें भी हरी मूँग की दाल देता और जो बचता उसे खा लेता, किन्तु यह सब प्रसन्नता पूर्ण था। कभी-कभी कुछ ब्राह्मण आ जाते, रुद्राभिषेक और पूजा करके, बड़ी दावत का आयोजन करते। वे इन अवसरों पर मुझे भी निमंत्रित करते थे।

एक दिन, करीब 4 बजे सांय, मैं ध्यान में बैठा था, मन शान्त और आनन्द से लहरा रहा था। एकाएक शरीर में ठंडक की लहर महसूस होने

लगी। वह अच्छी लग रही थी। दिल से कविता की पंक्तियाँ प्रस्फुटित हो रहीं थीं। कुछ समय के बाद सब कुछ सामान्य तथा शान्त हो गया। मैंने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अगले दिन भी, ठीक उसी समय फिर वही प्रक्रिया हुई। ठंडक की लहर में तीव्रता बढ़ गयी। भूख कम हो गयी, तब मैंने महसूस किया कि यह मलेरिया का आक्रमण है। मेरा भिक्षुक मित्र मुझे उमामहेश्वर मन्दिर से पुराने रामतीर्थ मन्दिर ले गया। उसके निर्देश पर मैंने कुछ दवाएं भी लीं। फिर भी मैं ठंडक और शरीर ज्वर से पीड़ित था। गोकर्णम् मेरे लिये खुशगवार नहीं साबित हुआ, अतः मैंने कोयिलाण्डी लौटने का निर्णय लिया।

मैं गोकर्ण मन्दिर गया, मन्दिर की चारदीवारी के अन्दर शिव की पूजा की और कुछ चढ़ाया और साधु भोजन किया। तब मैं स्टीम बोट से मंगलौर के लिये रवाना हो गया। मैं एक रात्रि कोयिलाण्डी आश्रम पहुँचा। उस समय शरणम् ब्रह्मचारी और आशान वहाँ थे। वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुये।

मैं कुछ दिन कोयिलाण्डी आश्रम में रुका। ज्वर लगातार आ रहा था किन्तु मैं पूर्णतयः बिस्तर से नहीं लगा था। मेरा ज्वर एक-एक दिन छोड़ कर आ रहा था। जब ज्वर समाप्त हो गया, मैं सामान्य रूप से कार्य करने लगा तब मैं गुरुवायूर गया और कुछ दिन भजन तथा पूजा की। वहाँ से मैं तिरुवल्ला आश्रम गया। कुछ ब्रह्मचारी वहाँ रह रहे थे।

मैंने श्री स्वामी जी के तिरुवनन्तपुरम आने का समाचार सुना। तब मैं उनसे तिरुवनन्तपुरम मिलने गया। तिरुवनन्तपुरम के आश्रम का निर्माण कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था। स्वामी जी उस कार्य को यथाशीघ्र पूर्ण करवाने की कोशिश कर रहे थे। स्वामी जी अन्य लोगों के साथ स्वयं भी धन संग्रह के लिये जाते थे। मैंने श्री स्वामी जी के दर्शन किये। स्वामी जी इस बात से बहुत ज्यादा गुस्सा थे कि मैं उनसे बिना पूर्व अनुमति लिये गोकर्णम् से आ गया। मैंने उन्हें बताया कि मैं गोकर्णम् गया था, वहाँ मुझे मलेरिया हो गया और मैं बहुत कमजोर हो गया। अब अगली यात्रा मूकाम्बिका की होनी चाहिये, स्वामी जी ने इस तरह के विचारों के लिये फटकारा। उस रात्रि मुझे बहुत अधिक ज्वर हुआ, इससे पहले इतना मुझे कभी नहीं हुआ था। ब्रह्मचारी, मेरे परीक्षण हेतु डा० तम्पी को ले आये। उन्होंने दवा देकर मेरे शरीर से खूब पसीना निकलवाया। जहाँ तक मैं समझता हूँ उन्होंने एस्परीन की गोली दी थी। उससे शरीर का तापमान दब गया। अगले दिन मैं चिकित्सालय (जनरल हास्पिटल) गया और वहाँ

उपचार में रहा। मैं 4-5 दिन में पूरा ठीक हो गया। उन्होंने मुझे एक इंजेक्शन दिया। मैंने आश्रम छोड़ दिया और अपने एक मान्य के यहाँ रहने चला गया। स्वामी जी तिरुवनन्तपुरम के लिये चले गये।

तिरुवनन्तपुरम से मैं तिरुवल्ला आश्रम चला आया और वहाँ से मैं गुरुवायूर पहुँचा। 2-3 महीने गुरुवायूर में भजन और पूजा करके मैं कोयिलाण्डी आश्रम आ गया। मेरे आश्रम में रहने की इच्छा प्रायः समाप्त सी थी तो मैंने मूकाम्बिका जाने का निश्चय किया। मैंने स्वामी जी को पत्र लिखा। I have made Bhakta free (मैंने भक्त को स्वतन्त्र कर दिया है) स्वामी ने महानता से उत्तर दिया।

मैं मूकाम्बिका के लिये निकला। उसी समय मुझे एक सहयात्री भी मिल गया। ऐसा नहीं था कि मेरे पास कुछ धन नहीं था। यात्रा के बीच के कुछ स्थानों पर रुकते हुए एक शाम को मैं मूकाम्बिका पहुँच गया। पहुँचने के तुरन्त बाद मैंने एक पास की नदी में स्नान किया, मन्दिर की ओर चल दिया, देवी माँ के दर्शन किये और कृतार्थ हो गया। देवी माँ का विग्रह आशीर्वाद देते हुए बना था, जो सबको आशीर्वाद दे रही हो और विशेष रूप से केरल के लोगों को। देवी माँ की कृपा से बिल्कुल अनपढ़ लोग भी बड़े विद्वान बन गये। यह एक जाना-माना सच है। मेरा वहाँ रुकना और पूजा करने के पीछे कोई विशेष कारण नहीं था। वहीं विरक्ति और शुद्ध भक्ति भाव मेरे हृदय में बराबर बना रहता था।

इससे पहले कि मैं देवी माँ के दर्शन का लाभ एक मिनट प्राप्त कर सकूँ, किसी ने आकर मुझसे कहा कि यहाँ से तुरन्त चले जाओ, यहाँ भी कारण यह था कि मलयाली लोगों को दर्शन के लिये एक रुपया देना पड़ता था। मैं तुरन्त बाहर आ गया। मैं मन्दिर के बाहर बने स्तम्भ वाले चबूतरे पर लेटकर मित्र के साथ सो गया।

अगले दिन प्रातः स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर, मैं मन्दिर पहुँचा, निर्धारित एक रुपया दिया और अन्दर गया और पूर्ण हृदय से मन्दिर के अन्दर बैठकर पूजा की। मन्दिर से बिल्कुल लगे हुए बहुत से ब्राह्मणों के मकान थे, अतः वहाँ पर कई दिन मधुकरी भिक्षा पर बिताना सम्भव था। इसके अलावा 4 आने में (25 पैसा) बहुत सी मिठाई और अप्पम तथा वड़ा प्रसाद के रूप में मन्दिर से मिल जाता था। वहाँ के करीब 1 मील (1½ कि०मी०) दूर गणेश का एक छोटा मन्दिर है। वह एक छोटे जंगल के अन्दर है। मैं ठहरने के लिये उस स्थान को चला गया। वहाँ मुझे शंकराचार्य मठ के एक ब्राह्मण ने एक पुजारी के रूप में स्वीकार किया। कई

बार मैं उसके घर में भोजन करता था। वहाँ एक पपीते का पेड़ था, जो पपीते से भरा हुआ था। ऐसा लगता था, वहाँ के ब्राह्मण लोग पपीता नहीं खाते थे। मैं प्रतिदिन 2-3 कच्चे पपीते गणेश मन्दिर ले जाता और उन्हें पकाकर खाता। उस मन्दिर के निकट नदी के पास मैंने एक गुहा खोजी, जिसे गरुड़ गुहा के नाम से जाना जाता था। मैं उस गुफा में चला गया। वहाँ पर कई विषैले सर्प थे, किन्तु उन्होंने कभी मुझे परेशान नहीं किया। मैं प्रतिदिन मूकाम्बिका मन्दिर जाया करता था। भजन और पूजा करने वाले अधिकतर लोग मलयाली थे।

मैंने वहाँ भी 4-5 महीने रुक कर भजन और पूजा की। स्वामी विवेकानन्द की जन्मतिथि आने वाली थी। जब मैं आश्रम में था तो यह दिन धार्मिक उत्सव की तरह, पूजा करके, भोजन आदि कराके बनाया जाता था। मैं कुछ धन बैंगलोर आश्रम को भी भेजता था, किन्तु अब मेरे पास धन नहीं था। परन्तु फिर भी मैंने 4 आने (25 पैसे) भेजे। जब मैंने पैसे भेजे थे तभी मेरे मन में स्वामी जी को देखने का विचार धनीभूत हो गया। तुरन्त मैं बैंगलोर के लिये चल पड़ा। रास्ते में एक स्थान सागर है, जो ग्रामीण क्षेत्र है वहाँ विद्यालय और कचहरी है। मैं एक-दो दिन के लिये एक ब्राह्मण के घर के आगे वाले बरामदे में रुका, अगर कोई वहाँ से बस से कुछ दूरी तय कर लेता है तो बैंगलोर जाने वाली रेलगाड़ी पकड़ सकता था। पूरा रास्ता पैदल चलना मुझे असम्भव दिखाई देता था। मेरे पास कोई धन नहीं था। मैंने अपनी समस्या एक अजनबी वकील को बताई। उसने मुझे बैंगलोर जाने तक के सारे पैसे दिये। फिर काहे की देरी। मैंने रेलवे स्टेशन के लिये बस पकड़ी और बाद में बैंगलोर जाने के लिये रेलगाड़ी पकड़ी।

बैंगलोर रेलवे स्टेशन से आश्रम थोड़ी दूर पर था। धीरे-धीरे चलते हुए प्रातः 10 बजे आश्रम जा पहुँचा और स्वामी जी के चरणों में गिर गया। किन्तु अब स्वामी जी ने मुझे जरा सा भी डाँटा, फटकारा नहीं। कुछ प्रारम्भिक बातचीत के बाद स्वामी जी ने मुझसे कहा, तुम पहले जाकर अपने बाल कटवाओ, और स्वामी जी ने मुझ बाल काटने की मशीन दी। मैं ब्रह्मचारी, वीरेशन के कमरे में गया। वह मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने अपने बाल काटना शुरू किया, किन्तु जब वीरेशन को पता चला कि यह कार्य मेरे बस का नहीं तो उसने बाल काटने की मशीन मेरे हाथ से ले ली और मेरे बालों को ठीक तरह से काटा। नहाने के बाद मैंने खाना खाकर आराम किया।

मैं आश्रम के सारे कामकाज कराने लगा। उस समय आश्रम में काम

की अधिकता हो जाती है। स्वामी विवेकानन्द के वार्षिक जन्मतिथि का समय काफी नजदीक आ गया था। स्वामी जी बहुत खुश थे, स्वामी सुखानन्द जी भी आश्रम में थे। वह ही पूजा सम्पन्न करते थे। स्वामी जी ने मुझसे कहा, "तुम यहाँ और वहाँ तपस्या के लिये गये"। प्रेसीडेण्ट महाराज यहाँ कई दिनों के लिये रुके थे और उन्होंने सुखानन्द को सन्यास दीक्षा दी।

सन्यास के लिए मात्र बाहरी कपड़े बदलने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। पहले मन पूर्ण रूप से शुद्ध सात्विक हो जाये, यही मेरा ध्येय था। स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मतिथि बहुत शान्तिपूर्ण ढंग से निपट गयी। स्वामी जी के केरल से निमंत्रण आने शुरू हो गये और उन्होंने वहाँ जाने की योजना बनाई। स्वामी जी ने मुझे आश्रम में रुकने का निर्देश दिया। तदानुसार मैं वहाँ रुका और कार्यों में हाथ बँटाना शुरू किया। आश्रम में 3-4 गायेँ थीं। मैं उनकी देखभाल करता था। मैं उनको घास खिलाने के लिये अच्छी हरी घास के मैदान तथा जहाँ पानी होता था, ले जाता था और उन्हें नहलाता था। यह सब काम मैं 11 बज जाते थे। उसके बाद में आश्रम आता था और खाना खाता था। आश्रम में बहुत सी किताबें थीं। मैं अपनी पंसद की किताबें पढ़ता था। करीब 5 बजे सांय मैं बगीचे में पौधों को पानी देता था। मैं यह सारा काम अपने आप प्रसन्नतापूर्वक करता था।

स्वामी जी ने एक पत्र से अपने केरल पहुँचने की सूचना मुझे दी। स्वामी जी की अनुपस्थिति में वीरेशन ब्रह्मचारी, बँगलोर आश्रम का मुख्य कर्ता-धर्ता था। मैंने स्वामी जी का पत्र उसे दिखाया, मैंने उस पत्र का स्वयं उत्तर देने की कोशिश नहीं की, किन्तु मैंने ब्रह्मचारी वीरेशन को सारी गतिविधियों के साथ उत्तर भेजने के लिये कहा।

"दिनमपि रजनी सायम् प्रातः" (दिन रात्रि सांयः और प्रातः एक-दूसरे के बाद आते रहते हैं) समय शान्तिपूर्वक बीत रहा था। कुछ दिन बाद स्वामी जी का टेलीग्राम प्राप्त हुआ। श्री प्रेसीडेण्ट महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज) ने प्राण त्याग दिये। आश्रम में सभी लोग दुःखी हो गये। विशेष पूजा और भोज का आयोजन उनकी समाधि के उपलक्ष्य में किया गया। स्वामी जी करीब एक माह बाद केरल से आये। प्रत्येक उनके आने से खुश हो गया। स्वामी जी ने इसके लिये मुझे सहमत कराया कि मैं पुनः कोयिलाण्डी वापस जाऊँ और जाने के लिये निर्देश दिये। आज भी शरणम् ब्रह्मचारी (शेखरानन्द जी) वहाँ के मुख्य कर्ता-धर्ता हैं। एक समय ऐसा भी आया, जब उन्हें तिरुवल्ला जाना आवश्यक हो गया था। नये-नये लोग

मेरे साथ कोयिलाण्डी में रहने के लिये भेजे जाते थे। आश्रम का कार्य सुचारु रूप से चल रहा था। श्री कुण्डू पनिक्कर कोयिलाण्डी में तब मुंसिफ मजिस्ट्रेट थे। उनके द्वारा भागवत का पाठ नियमित हो गया। मैं ही भागवत का पाठ करता था और उसका व्याख्यान अर्थों के सहित बताता था। सप्ताह में एक बार उनके घर पाठ होता था और फिर बाद में और भक्तों के घर होने लगा।

कुड्डमथु के कुरुप्प प्रसिद्ध जमींदार थे। उन्होंने एक बार स्वामी जी को घर पर बुलाया। बहुत ही गाजे-बाजे के साथ शानदार तरीके से उन्होंने नाव के घाट से घर तक एक जुलूस निकाल कर उनका स्वागत किया। वहाँ पर आतिशबाजी का भी कार्यक्रम था। मैं स्वामी जी के साथ था। स्वामी जी वहाँ दो दिन रुके और उसके बाद वे बँगलोर चले गये और मैं कोयिलाण्डी वापस आ गया।

मैं समझता हूँ कि इस बार मैं लगभग दो वर्ष तक कोयिलाण्डी रुका, स्वामी जी ने मुझसे कहा कि वे मुझे अपने साथ बेलूर मठ ले जायेंगे, किन्तु यह अभी तक सम्पन्न नहीं हो सका था। मैंने स्वामी जी से निवेदन किया कि मैं दक्षिणेश्वर, बेलूरमठ को देखना चाहता हूँ, जहाँ श्री रामकृष्ण जी ने तपस्या की थी। दक्षिणेश्वर, बेलूरमठ और अन्य स्थान के लिए स्वामी जी ने मुझे अनुमति दे दी।

रमण पिल्लइ नाम का ब्रह्मचारी उन दिनों आश्रम में मेरे साथ रहता था। मैंने उसे आश्रम चलाने का पूरा दायित्व सौंप दिया। कुछ दिन गुरुवायूर रुकने के बाद मैं कोज़िकोड (कालीकट) पहुँचा। पालाट्टु परुक्कुट्टीअम्मा स्वामी जी की बड़ी भक्त थी। वह प्रत्येक महीने आश्रम के लिये धन भेजा करती थी। मैं उनसे मिला। उस भद्र महिला ने मुझे मद्रास भेज दिया। श्री शर्वानन्द स्वामी जी मद्रास आश्रम के प्रेसीडेण्ट थे, उन्होंने वहाँ एक मदरहोम (वृद्ध औरतों के रहने का आश्रम) भी खोला था। स्वामी जी की इच्छा के अनुसार परुक्कुट्टी अम्मा ने एक महिला को मदर होम में कार्य करने के लिये मेरे साथ भेजा था। मैंने सारा विवरण शर्वानन्द स्वामी जी को बताया। मैं वहाँ करीब एक सप्ताह रुका। परुक्कुट्टी अम्मा का बड़ा पुत्र बालकृष्ण मेनन (श्री तपस्या नन्द स्वामी जी) मद्रास में पढ़ रहे थे। परुक्कुट्टीअम्मा के एक पत्र में दिये निर्देश पर उन्होंने भी यात्रा के लिये कुछ धन मुझे दिया।

मेरी इच्छा बँगलोर जाकर स्वामी जी के दर्शन करने के बाद कलकत्ता जाने की थी। जब मैंने यह सब सही तरीके से स्वामी जी को बताया, तो उन्होंने

सलाह दी, "यदि तुम बैलूर मठ जाना चाहते हो तो सीधे यहाँ से जाओ। अगर तुम बैंगलोर जाना चाहते हो तो तुम्हें वहाँ रुकना पड़ सकता है और तब बैलूर मठ जाना भूल जाओ। वहाँ एक ओर युवा सज्जन बैलूर मठ जाने के लिए तैयार थे। यह सोचकर यह सबसे अच्छा अवसर है, मैंने सीधे कलकत्ता जाने का निर्णय लिया।

(10) बैलूर मठ और सन्यास

श्रीमद् शिवानन्द स्वामी जी (स्वामी शिवानन्द महाराज श्री रामकृष्ण मिशन बैलूर मठ के तत्कालीन प्रेसीडेंट थे और महापुरुष महाराज के नाम से जाने जाते थे) तत्कालीन बैलूर मठ के प्रेसीडेंट के लिये, मद्रास के प्रेसीडेंट शर्वानन्द स्वामी जी ने, एक पत्र लिखा। श्री ईश्वरानन्द स्वामी जी, सन्यास लेने के बाद से मद्रास आश्रम में ही प्रवास करते थे, उन्होंने मुझे कलकत्ता जाने वाली ट्रेन में बैठाया।

मेरे मन में बहुत दिनों से पल रही आकांक्षा अब पूर्ण होने वाली थी। मैं, सबसे शान्त और पवित्र स्थल बैलूर मठ, आराम से पहुँच गया। मैंने बड़े प्रेसीडेंट महाराज के दर्शन किये। मैंने उनको वह पत्र भी दिया। उन्होंने उसे ध्यान से पढ़ा और सारा विवरण समझ गये और उन्होंने मुझे वहाँ रहने के आदेश दिये। सज्जनता के प्रतिरूप प्रेसीडेंट महाराज दया की मूर्ति थे।

मैंने स्वामी जी को बैंगलोर एक पत्र भेजा। पत्र के उत्तर में स्वामी जी ने लिखा, "तुमने सीधे बैलूर मठ जाकर अच्छा किया। बड़े प्रेसीडेंट महाराज बहुत ही दयालु व्यक्ति हैं। तुम पहले से ही प्रेसीडेंट महाराज से मन्त्र दीक्षा ले चुके हो। अतः तुम्हें किसी विशेष पत्र की आवश्यकता नहीं है।"

दुर्गा पूजा का त्योहार आ गया। यह धार्मिक त्योहार, बड़े पैमाने पर केरल और मैसूर में ही नहीं मनाया जाता है, अपितु पूरे भारत वर्ष में विभिन्न तरीकों और विभिन्न नामों से मनाया जाता है, किन्तु बंगाल में इस त्योहार को विशेष भक्ति, तड़क-भड़क के साथ, भव्य स्तर पर खूब पैसा खर्च करके मनाते हैं। बंगाल में यह त्योहार प्रत्येक घर में मनाते हैं। जैसे कि केरल के लोग ओणम के त्योहार को बड़े लम्बे-चौड़े पैमाने पर कलात्मक रूप से, पैसा उधार लेकर भी मनाते हैं, वैसे ही बंगाल में लोग धन उधार लेकर पूजा को बड़े पैमाने पर मनाते हैं। यह पूरा कार्यक्रम दर्शनीय होता है। यह एक भक्ति भाव पूर्ण त्योहार है। बंगाल में ऐसे कारीगरों का समूह है जो मिट्टी से देवी की मूर्ति बनाने के अनुभवी हैं। त्योहार के 15 दिन पहले से मूर्ति बनाना शुरू करते हैं। शुक्ल पंचमी तक वे मूर्ति को पूजा के लिये तैयार कर देते हैं। मूर्तियाँ अगम क्रिया के लिये पूजा के निर्धारित स्थान पर रख दी जाती हैं, सारी पूजा तांत्रिक प्रणाली

से बड़े विधि-विधान के साथ की जाती है। देवी की मूर्ति को बड़ी रूचि के साथ, भक्तिपूर्वक, नये कपड़ों, चन्दन के लेप, कुमकुम, फूलों की माला आदि से सजाया जाता है, को देखकर ऐसा लगता है कि देवी स्वयं पृथ्वी पर आ गयी हैं। दुर्गा अष्टमी के दिन को बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। पूजा और दावत उस दिन बड़े पैमाने पर की जाती है। पूरे वातावरण में उत्सव का माहौल रहता है। लोग प्रसन्नता तथा उल्लास से भरे रहते हैं। प्रेसीडेण्ट, महापुरुष महाराज ने मुझसे कई बार बताया, "दुर्गा पूजा को देखो"। बंगाल के अतिरिक्त कहीं भी दुर्गा पूजा इतने बड़े पैमाने पर नहीं मनायी जाती, तुम भाग्यशाली हो, जो इस समय यहाँ आये हो"। दशमी के दिन पूजा का समापन होता है और मूर्ति को पूरे उत्सव के साथ गंगा में विसर्जित किया जाता है, उसके बाद लोग प्यार और प्रसन्नता से एक-दूसरे के गले मिलते हैं और अपने-अपने स्थान जाते और उसके बाद अच्छी दावत खाकर आराम करते हैं। यहाँ यह कहना काफी है कि लोग इस मौके पर देवी की उपस्थिति महसूस करते हैं।

मैंने भी दो दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताये। मैं बड़े प्रेसीडेण्ट महाराज के दिन में दो बार दर्शन करता था, यदि संभव होता और दूसरों को असुविधा नहीं होती तो मैं उनके कमरे में कुछ देर बैठकर ध्यान करता था। महाराज भी लोगों को चुटकले सुनाते थे। एक दिन दूसरों की मौजूदगी में उन्होंने कहा,

"कंबलावंतम् शीतो ना बाधते"

उस समय थोड़ी-थोड़ी ठंड हो रही थी। प्रश्न ही में उसका उत्तर भी छुपा है।

कम बलवंतम् शीतो न बाधते?

(कौन शक्तिशाली व्यक्ति है जिसे ठण्ड नहीं लगती)

कंबलावंतम् (जिसके पास कम्बल है) *शीतो न बाधते* (उसे ठंड नहीं लगती)।

(जैसा कि शब्द कंबलावंतम् को तोड़ने में ही मजाक छिपा है)

महाराज दया की मूर्ति भी थे। एक बार मुझे बुखार हुआ। वे मेरे बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करते थे और यह पूर्णरूप से निश्चित करवाते कि मेरा यथोचित उपचार हो रहा है, ताकि मैं ठीक हो सकूँ।

महाराज प्रथम तल पर रहते थे। एक बार मैं भूतल पर बरामदे में एक बेंच पर बैठा था। महाराज अचानक वहाँ आ गये। मैंने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ। मैंने कहा कि मैं काषाय वस्त्र

(केसरिया बाना) चाहता हूँ। महाराज ने बिना देरी किये पूछा, "क्या तुम मेरा यह काषाय वस्त्र चाहते हो"? मैंने कहा, "मैं तुच्छ प्राणी सन्यास ग्रहण करने का इंतजार कर रहा हूँ। मैं कह सकता हूँ कि कोई भी व्यक्ति अपने माता-पिता के साथ जितनी सहज रूप से वार्ता कर सकता है, उस तरह मैं महाराज से भी और शायद उससे भी अधिक सहज रूप से।

उसी दिन त्रयोदशी (पक्ष का तेरहवाँ दिन) थी, मुझे साथ लेकर महाराज ने पंचांग देख कर एक शुभ दिन निकाला और कहा कि तैयार रहो। तुम्हें सन्यास, पूर्णमासी* के दिन, मिलेगा।

क्या यह महाराज की असीम दया नहीं थी? उन्होंने अखण्ड महाराज एवं अन्य को सन्यास के लिये आवश्यक सामग्री तैयार करने हेतु कहा। मैंने उन्हें काषाय वस्त्र लाने के लिये आवश्यक धन दिया। सन्यास लेने के लिये निश्चित तिथि से एक दिन पहले मैंने आवश्यक बाल कटवाये, दाढ़ी बनवायी और श्राद्ध की। मैंने उस दिन पानी भी नहीं छुआ। अगले दिन प्रातः 3 बजे मैंने गंगा नदी में स्नान किया और बरामदे में बैठकर जप और ध्यान किया। महाराज भी स्नान आदि करके विरजा-होम के लिये निर्धारित स्थान पर बैठ गये। बहुत श्रद्धा के साथ झुककर मैंने महाराज को प्रणाम किया और अपने निर्धारित स्थान पर बैठ गया। इस प्रक्रिया को करवाने वाले पुजारी स्वामी ओंकारानन्द जी थे। होम सम्पन्न हुआ। सन्यास मंत्र मुझे दिया गया। मैंने अपने सारे कपड़े उतारे और यज्ञोपवीत उतार दिया। स्वामी जी ने शिखा को एक कैंची से स्वयं काटा। उन्होंने मुझे नये कपड़े दिये और भिक्षा के लिये भी कपड़े दिये। महाराज ने मुझे दण्ड दिया और मुझे पुरुषोत्तमानन्द नाम से पुकारा (सन्यास का नामकरण)।

मैंने महाराज और अन्य सभी को, जो वहाँ उपस्थित थे, प्रणाम किया फिर पुनः गंगा नदी गया और स्नान किया। मैंने अपना दण्ड गंगा जी में प्रवाहित कर दिया। मैंने नये कपड़े पहने। अब मैं सन्यासी हो चुका था। मैंने पुनः महाराज के सामने प्रणाम किया और अपने रुकने के स्थान, प्रेमानन्द हाल गया। रास्ते में मेरे प्रिय मित्र श्री गोपालानन्द जी महाराज कुछ फल काटकर लाये और मुझे दिया। महाराज ने ब्रह्मचारी चिन्नू को बुलाया और उसके द्वारा मुझे गर्म-गर्म कॉफी भिजवायी। उस दिन मैंने

*जिस दिन गुरु महाराज को, महापुरुष महाराज, स्वामी शिवानन्द जी महाराज तत्कालीन प्रेसीडेण्ट श्री रामकृष्ण मिशन, बेलूर मठ कलकत्ता ने, सन्यास दीक्षा दी, वह दिन कार्तिक पूर्णिमा, माह अक्टूबर 1923 था।

आश्रम के सन्यासियों से एक मुठ्ठी भिक्षा माँगी और बनाकर खाया। मैं इस प्रकार वहाँ 2-3 दिन रुका।

बेलूर मठ में एक विद्वान, सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को, शास्त्र पढ़ाया करते थे। सुनने वाले के ज्ञान के अधिकार के अनुसार वह लोगों को प्रतिदिन ब्रह्म सूत्र और उपनिषद् पढ़ाया करते। मैंने उनसे सीधे शंकर ब्रह्मसूत्र पर निर्देश प्राप्त किये। मैं कुछ हद तक सूत्रों का अर्थ समझ गया "तत्तु समन्वयात्"। मैं सन्यास भी प्राप्त कर चुका था। मैंने स्वामी जी को तुरन्त लिखा। मैं अक्सर दक्षिणेश्वर जाया करता, जहाँ श्री रामकृष्ण ने तपस्या की थी। अब मेरे मन में उत्तर भारत जाकर हरिद्वार और अन्य स्थान देखने की इच्छा हुई। मैंने बड़े प्रेसीडेंट महाराज के सामने अपनी इच्छा व्यक्त की और उन्होंने मुझे तुरन्त स्वीकृति दे दी। मेरे शरीर की कृशकाय स्थिति देखकर उन्होंने कहा कि तुम हरिद्वार जरूर जाओ और वहाँ से सीधे मद्रास जाना। अगले ही दिन मैंने यात्रा करने का निर्णय लिया। उस समय काशी में अद्वैत आश्रम के महन्त चन्द्रा महाराज थे। चन्द्रा महाराज के लिये एक पत्र देकर स्वामी जी ने मुझे भावभीनी विदाई दी। मार्ग में, मैं गया में रुका और गया-स्नान किया और वहाँ एक रात्रि रुका। अगले दिन मैं काशी स्टेशन पहुँचा। वहाँ से करीब 9 बजे प्रातः मैं आश्रम पहुँचा।

चन्द्रा महाराज पक्षाघात के कारण चलने में अक्षम थे। उनके लिये एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अपने शरीर को धीरे से बदलने में बहुत कठिनाई होती। वे हमेशा एक कुर्सी पर बैठे रहते थे। उसी स्थिति में बैठकर अपने आश्रम की सभी गतिविधियों के लिये विलक्षण शक्ति का प्रयोग करते और आवश्यक निर्देश देते थे। सारे कार्य बहुत सावधानी और सही ढंग से समय पर पूर्ण होते। उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था, वे महाराज जी के गहरे भक्त थे।

मैंने प्रेसीडेंट महाराज का पत्र चन्द्रा महाराज को दिया, उन्होंने कहा, ठीक है, तुम यहाँ कुछ दिन रुको, और मेरे रुकने का स्थान निर्धारित कर दिया और मैं अपने सामान (कुछ बंडल और सामग्री) के साथ वहाँ रहा। उस समय अद्वैत आश्रम में 8-10 स्वामी जन नियमित रूप से रहा करते थे। यद्यपि मेरी वार्तालाप सभी लोगों से होती थी, किन्तु फिर भी जगदानन्द स्वामी जी का मेरे प्रति विशेष स्नेह और लगाव था। वह बहुत बड़े विद्वान थे। कुछ अवसरों पर मैं उनकी वार्ता सुना करता था।

मैंने स्नान करके खाना खाया और आराम किया। उस सांयकाल को

स्वामी जी मुझे भगवान विश्वनाथ के दर्शन कराने ले गये।

गंगा तरंग रमणीय जटाकलापम्
गौरी निरन्तर विभूषित वाम् भागम्
नारायण प्रियमनन्मदापहारम्
वाराणसी पुरपतिम् भज विश्वनाथम्

आज भी यह श्लोक मेरे स्मरण में तरंगित रहता है। दीप आराधना (आरती) के समय यह मन्दिर भरा-पूरा रहता है। 8-10 पुजारी स्नान करके भस्म से विभूषित होकर भगवान विश्वनाथ (शिव) का अभिषेक करते हैं। मंत्रोच्चारणों के साथ दीप आराधना (आरती) काशी की विशेषता है। उत्साह और उमंग से भरी भक्तों की भीड़ एक-दूसरे को धक्का देते हुए दीप आराधना के समय कुछ ज्यादा ही आह्लादित रहती है। मैंने भी ऐसी दीप आराधना देखी और अपने को धन्य माना। उसके बाद अन्नपूर्णा के दर्शन किये।

"अन्नपूर्ण सदापूर्ण शंकरप्राण वल्लभे
ज्ञान वैराग्य सिद्ध्यर्थम् भिक्षाम् देहि महेश्वरी।"

दर्शन करने के बाद मैंने मन्दिर की परिक्रमा की। उसके बाद एक कोने में आराम से बैठकर जप और ध्यान किया। मैं आश्रम वापस आया और खाना खाकर आराम किया।

उन दिनों मैं प्रतिदिन गंगा में स्नान करता और भगवान विश्वनाथ के दर्शन करता था। गंगा में एक डुबकी लगाने से, बुरी संगत से छुटकारा, मन का विकास और मन में परमात्मा की अनुभूति जन्म लेती है।

नमोस्तुते भगवती, गंगे दुश्संगनाशिनी।

तनोतु भक्तिम् विमलाम निश्रेयससुखावहाम्।।

गंगा पर कई घाट हैं, जिनमें से दशाश्वमेघ घाट, मणिकर्णिका घाट तथा हरिश्चन्द्र घाट इत्यादि, मुख्य हैं। गंगा नदी का सांयकाल का दृश्य एक विशेष महत्व रखता है। नदी का जल लहराकर घाट को छूता है, नाव निरन्तर यात्रियों को इधर से उधर ले जाती है। हर व्यक्ति अपने मन के मुताबिक जोर से गाता और श्लोकों का उच्चारण करता हुआ मिल जायेगा। एक जगह भजन का गायन हो रहा है। एक जगह भागवत का पाठ हो रहा है। जल के किनारे लकड़ी के तख्ते लगे रहते हैं उस पर भक्तजन (स्त्री-पुरुष दोनों) बिना यह ध्यान दिये कि आसपास धमा-चौकड़ी क्यों हो रही है, ध्यान लगाकर बैठे रहते हैं। मैं भी जाकर एक जगह बैठ गया।

सन्यास के समय दिये गये मन्त्र को बार-बार दोहराकर उसका आनन्द लेता रहा। कई दिनों तक मैं 9 बजे रात्रि के बाद आश्रम पहुँचता था। काशी निश्चय ही मोक्ष स्थल ही नहीं, भक्ति स्थल भी है।

अब काली पूजा का समय आ गया। जैसा कि सभी जानते हैं कि काली पूजा का बंगालियों में विशेष महत्व है। इस आश्रम में विशेष धूमधान से मनाया जाता है। बहुत से व्यंजन देवी काली को चढ़ाये जाते हैं। पूरी रात्रि पूजा भजन और संगीत में बीतती है। मैंने भी पूरी भक्ति के साथ इस पूजा में भाग लिया। सुबह 4 बजे प्रातः पूजा का समापन हुआ। इसके बाद ही भोजन खाया गया। उस असमय मैंने भी थोड़ा ठण्डा खाना खाया। 10 बजे प्रातः मैं गंगा में स्नान करने गया। दीपावली के दिन देवी अन्नपूर्णा के दर्शन का विशेष महत्व है। लोग देवी माँ के दर्शन के लिये कूद पड़ते हैं। माँ का विग्रह रत्नों एवं स्वर्ण आदि से रुचिपूर्वक सजा हुआ था। मैं भी विशेष रूप से दर्शन करके आश्रम वापस आ गया। वापस आते ही मेरे पेट में तेज दर्द शुरू हो गया और एक तरह की ठण्ड सी महसूस हुई। मेरे पेचिश हो गयी थी। किसी तरह मैं आश्रम पहुँचा। मेरी बीमारी की अवस्था देखकर मुझे सेवा आश्रम में उपचार के लिये भेज दिया। कोई भी कह सकता है जिस तरह का सेवा आश्रम यहाँ है वैसा भारत में कहीं भी नहीं है। यद्यपि बहुत से सेवा आश्रम हैं, एक कनखल हरिद्वार है और अन्य दूसरे स्थानों पर हैं जो रामकृष्ण संघ द्वारा संचालित हैं। किन्तु जिस प्रकार की सेवाभाव काशी के सेवा आश्रम में है वह सबसे अलग है। यहाँ पर रोगी की देखभाल मातृ-प्रेम के साथ होती है। मैं भी बीमार होकर बिस्तर पर पड़ गया। अद्वैत आश्रम से एक स्वामी जी रोज मेरा समाचार लेने आते थे। इसके बाद भी मेरी हालत दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। यह वृश्चिकम् का महीना था (नवम्बर-दिसम्बर)। मेरा जन्म दिन आने वाला था और मैं मृत्यु के कगार पर था। मेरे बिस्तर के पास एक और रोगी था, जो संस्कृत जानता था, उससे आपसी विचार-विमर्श कर रहा था और मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था, उसी समय स्वामी जी एक प्रसिद्ध चिकित्सक को लेकर आये, उन्होंने मेरा परीक्षण किया और इंजेक्शन से दवा दी। उससे बीमारी रोकने में सफलता मिली। धीरे-धीरे मैं ठीक होने लगा। यद्यपि स्वामी जी ने कहा कि जब तक मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ न हो जाऊँ, सेवा आश्रम से न आऊँ, किन्तु एक दिन अचानक मुझे सेवाश्रम से छुट्टी दे दी गयी। मैं कभी तो अद्वैत आश्रम में खाना खाता था और कभी मधुकरी भिक्षा लेता था। मुझे पेचिश तथा बुखार ने फिर घेर लिया। मैंने, सेवा आश्रम में पुनः शरण ली। इस बार मैं सेवा आश्रम में तब तक रहा, जब तक

कि पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो गया।

प्रयाग में कुम्भ मेला आने वाला था। प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में पूर्ण कुम्भ 12 वर्ष में एक बार मनाया जाता था और अर्द्धकुम्भ 6 वर्ष में एक बार। जब पहले मेला आयोजित होता था तो यह महात्माओं का एक वास्तविक सम्मेलन होता था।

तत् चिन्तनम् तत् स्मरणम् अन्योन्यम् तत् प्रबोधनम्।

एतदेक परत्वम् च ब्रह्माभ्यासम् विदुरजनाः॥

कुम्भ मेले में साधुओं के साथ भाग लेने में स्वर्गिक आनन्द की खुशी होती थी। क्या यह मेला शब्द का अर्थ नहीं है? लोगों से मिलना या साथ-साथ होना था। किन्तु अब उत्सव का स्तर बहुत गिर गया है, परन्तु अब भी जिज्ञासु और ज्ञान पिपासु लोग बहुत कुछ इन मेलों में सुन और जान सकते हैं। रीति-रिवाज के अनुसार बहुत से मठों के मठाधीश, मण्डलेश्वर और अन्य लोग, अपने शिष्यों के साथ पारम्परिक तरीके से समारोह में भाग लेने आते हैं और एक दो महीने मेले के स्थल पर रुकते हैं। मठाधीश भागवतानन्द ने अद्वैत आश्रम काशी के स्वामियों को आमंत्रित किया। उनके साथ मैं भी प्रयाग पहुँच गया। यह मेरे लिये एक नया अनुभव था। केरल में ब्राह्मण की पूजा और सत्कार करने के लिये उन्हें भोजन कराया जाता है, जबकि दूसरी ओर यहाँ साधु की पूजा की जाती है गरीब लोगों और सन्यासियों एवम् साधु को भोजन कराना ज्यादा महत्वपूर्ण समझा जाता है। प्रतिदिन एक बड़े भोज का आयोजन होता। एक छोटे से कमरे में चुपचाप बैठकर भगवान का नाम जपना भी सुविधाजनक था। प्रत्येक प्रयाग मेले में कोई न कोई दुर्घटना हो ही जाती है। एक दिन स्वामी भागवतानन्द जी के मुख्य स्थल के पास आग लग गई। सभी साधुओं ने मिल कर आग बुझाई। कोई ज्यादा नुकसान नहीं हुआ। मेला समाप्त हो गया। ज्यादातर साधु चले गये। कोई मुझे गोविन्द गिरि स्वामी के आश्रम में रुकने के लिये झूसी ले आया। यह एक विख्यात स्थान है। यहाँ साधु स्थायी रूप से रहते हैं। यहाँ आश्रम की एक संस्कृत पाठशाला भी है। छात्रों को निःशुल्क भोजन की व्यवस्था है। यहाँ मैं आराम से रहा और मैंने यहाँ महाशिवरात्रि मनायी।

अब मौसम गर्म होता जा रहा था अतः मैंने हरिद्वार जाने का निर्णय लिया। मेरे मन में भगवान राम के जन्म स्थल अयोध्या को देखने की भी इच्छा थी। मेरे पास कुछ पैसे थे। मैं रेलगाड़ी से अयोध्या जा पहुँचा। वहाँ मैं 4-5 दिन आराम से रुका। मैंने श्रीराम के जन्मस्थल के दर्शन किये और

सरयू में स्नान किया और नदी के पास में ही रुका। वहाँ से मैं हरिद्वार गया। कनखल में श्रीराम कृष्ण आश्रम है। मैं शाम को आश्रम पहुँच गया। प्रारम्भ में स्वामियों ने मेरे रुकने पर आपत्ति उठाई। जब मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तो वह सहमत हुए और कहा कि मैं जितने दिन रुकना चाहूँ, रुक सकता हूँ। उस आश्रम के महन्त श्री कल्याणानन्द जी और उनके सहयोगी श्री निश्चलानन्द जी महाराज थे। इस आश्रम का शुभारम्भ स्वामी विवेकानन्द ने किया था। इस आश्रम में प्रेसीडेण्ट महाराज के चरणकमल भी पड़ चुके हैं। रोगियों की देखभाल के लिये आश्रम से लगा हुआ अस्पताल भी है। रोगियों की देखभाल करने में यह आश्रम, सेवा आश्रम, काशी के बाद दूसरे नम्बर पर आता है। 6-7 दिन आश्रम में रुकने के बाद एक ब्रह्मचारी के साथ एक दिन तांगे से ऋषिकेश चल दिया।

हरिद्वार को गंगा द्वार भी कहा जाता है। हरि या हर को प्राप्त करने का द्वार। बहुत से साधुओं ने यहाँ कठिन तपस्या की है और भगवान को प्राप्त किया। पुराने समय में यह बिल्कुल वीरान क्षेत्र था। हर की पौड़ी* पर एक बड़ा प्लेटफार्म (चबूतरा) है। भागवत के अनुसार यह वह स्थान है जहाँ विदुर और मैत्रेय के बीच शास्त्रार्थ हुआ था। यह वह स्थान है जहाँ ब्रह्मा जी ने अन्य देवताओं के साथ गंगा का स्वागत किया था। ऐसा माना जाता है कि कनखल दक्ष प्रजापति की राजधानी थी। दक्ष घाट वह स्थान है जहाँ दक्ष ने अपना यज्ञ सम्पन्न किया था। यहाँ एक शिव मन्दिर है, यहाँ सीता कुण्ड भी है जहाँ सीता ने अपने शरीर का त्याग किया था। आज भी सप्त सरोवर तपस्या के लिये आदर्श जगह है। क्या यह वह स्थान नहीं है, जहाँ दुर्योधन के पिता धृष्टराष्ट्र ने शरीर त्यागा था? उसकी पत्नी गांधारी ने धृष्टराष्ट्र की चिता पर अपने प्राण त्यागे थे। यहाँ मनसा देवी और चण्डी देवी के मन्दिर हैं, जो दो पहाड़ियों पर हैं तथा दोनों के मुख्य द्वार ब्रह्मकुण्ड और गंगा के सामने हैं। यहाँ साधुओं के आश्रम और मुख्यालय भी हैं तथा धर्मशालाएं भी हैं। कुम्भ मेला 12 वर्ष बाद आता है। यह महोत्सव तब आयोजित किया जाता है जब सूर्य, कुम्भ राशि में और बृहस्पति मेष राशि में प्रवेश करता है। लाखों की संख्या में साधु और गृहस्थ लोग मेले में आते हैं। अन्तिम स्नान के दिन करीब 50 लाख लोग गंगा में पवित्र स्नान करते हैं। हरिद्वार की महत्ता को वर्णित नहीं किया जा सकता। यह निश्चय ही हरि एवम् हर का द्वार है।

*हरिद्वार, हरद्वार भी कहलाता है। पौड़ी का सम्भवतः अर्थ हरि या हर के रुकने का स्थल या पड़ाव है। हर की पौड़ी का यही अर्थ है।

ब्रह्मचारी के साथ मैं ऋषिकेश पहुँच गया। यहाँ बहुत सारे साधु रुके हुए थे। कुछ धर्मशाला में रुके थे। कुछ पर्णशाला में रुके थे, जो उन्होंने स्वयं बनायी थी। यहाँ दो बड़े मन्दिर हैं एक काली कम्बली वाले का और दूसरा पंजाबी-सिन्धियों का। 10-11 बजे प्रातः साधुओं को पके चावल दिये जाते। मुझे एक जगह रुकने का स्थान मिल गया, मैं वहाँ रुक गया। मैं धर्मशाला जाता, भिक्षा लेता और इसी प्रकार रहता। यहाँ कुछ सांयकालीन धर्मशालाएं थीं, वहाँ से चपाती और दाल मिल जाती। पहले मुझे रुकने की जगह मिली थी वह बहुत खराब स्थिति में थी। कुछ दिनों के बाद एक सज्जन मुझे बंगाली धर्मशाला ले गये और वहाँ मेरे रुकने की व्यवस्था की। वहाँ से मैं ब्रह्मानन्द आश्रम चला गया। यह आश्रम कैलाश आश्रम के अधिकार और संरक्षण में चलता था। इसके मुख्य कर्ता स्वामी प्रेम पुरी थे। वह बड़े विद्वान और बैरागी व्यक्ति थे। उनका मेरे प्रति विशेष प्रेम था। मैं करीब एक-दो महीने वहाँ रुका। यह समय माह अप्रैल 1924 रहा होगा।

त्रिवेणी घाट पवित्र और धार्मिक स्थान है। माया कुण्ड, वसुधारा, शेषधारा, लक्ष्मण झूला, भरत मन्दिर इत्यादि पवित्र स्थल हैं। ऐसा कहा जाता है कि यदि माया कुण्ड पर बैठकर कोई ध्यान करे तो उसका उठने का मन नहीं होगा। आज हर जगह बहुत से स्त्री-पुरुष दिखाई दे जायेंगे। ऋषिकेश अपनी महत्ता काफी हद तक खो चुका है। तब भी भक्ति के प्रति समर्पित लोग इसकी महानता की अनुभूति करते हैं।

ऋषिकम का अर्थ है इन्द्रिय। ऋषिकेश का अर्थ इन्द्रियों का स्वामी।

मैं यह सोचता हूँ कि इस स्थान का नाम ऋषिकेश इसलिये पड़ा क्योंकि यहाँ ध्यान करने पर मनुष्य को अपनी इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है। ऋषिकेश, कुब्जामला पुरी के नाम से भी जानी जाती है। यह नाम आवले के तिरछे वृक्षों के कारण पड़ा है।

मैंने सुना है कि उत्तरकाशी तपस्या के लिये अच्छा स्थल है। मेरी तीव्र आन्तरिक इच्छा थी कि मैं वहाँ जाऊँ। मेरे पास आवश्यक धन और कपड़े थे। मैं रेलगाड़ी से ऋषिकेश से देहरादून चला गया। वहाँ 2-3 दिन रुका। फिर मैंने सोचा कि आगे क्या किया जाये। मुझे पहले मसूरी पहुँचना चाहिये। उन दिनों 13 मील (21 कि०मी०) चलना काफी मायने रखता। मेरे लिये उन पहाड़ियों पर चढ़ना कैसे सम्भव होगा और फिर साथ में सामान भी हो। एक प्रातः स्नान करने के बाद मैं भगवान का नाम लेने लगा और मेरे मन में केवल यह एक विचार था। मेरा मन स्पष्ट हो गया। मैंने मसूरी जाने का निश्चय किया और मैंने अपने साथ जो था उसे साथ लेकर पहाड़

चढ़ना शुरू कर दिया। जब मुझे वह अपना साहसिक कृत्य याद आता है, मेरे हंसी छूट पड़ती है। यह मैंने स्वयं अनुभव किया है "पंगु लंघ्यते गिरिम्" एक लंगड़ा व्यक्ति भी पहाड़ पार कर सकता है। 4 बजे शाम को मैं मसूरी पहुँच गया। मैंने सनातन धर्मशाला में स्थान लिया और कुछ खाकर सो गया।

अगले दिन मैं मसूरी के आसपास घूमा। उस समय वहाँ का प्रशासन अंग्रेजों के हाथ में था। उन्होंने मसूरी रहने और आरामगाह के लिये पसन्द किया था। हर तरफ सड़क और रास्ते पूरी तरह स्वच्छ थे। एक कागज का टुकड़ा और पत्थर भी सड़कों पर नहीं दिखता था। जहाँ मैं रुका था वहाँ से 2 मील (3 कि०मी०) पर एक छोटा सा झरना था। वहाँ स्नान करने एवं पीने का स्वच्छ पानी था। कभी-कभी मैं वहाँ स्नान करने जाया करता था। वहाँ मेरी एक पारसी सज्जन से मुलाकात हुई जो बम्बई में एक स्कूल में मुख्य अध्यापक थे, उन्हें कुछ हद तक वैराग्य था। वे उत्तरकाशी जाना चाहते थे। उनके साथ एक नौकर भी था। हम लोगों में घनिष्ठता हो गई। अगले दिन भगवान का नाम लेकर हम उत्तरकाशी के लिये चल दिये। चौथे दिन 4 बजे सांयःकाल हम लोग उत्तरकाशी में काली कम्बली वाले की धर्मशाला पहुँचे और आराम किया।

यद्यपि रास्ते में कई रुकावटें आयीं, किन्तु दृढ़ निश्चय के कारण वह सब दूर हो गयीं। मैं विशेष रूप से बताना चाहूँगा, कि मुझे पारसी भाई से असीमित सहयोग मिला। भगवान सब को शरण देता है।

(11)

हिमालय प्रवास और बद्रीनाथ

खाना खाने के बाद हम लोगों ने रात्रि, काली कम्बली वाले की धर्मशाला में, बितायी। प्रातः स्नान कर, खाना खाने के बाद, मैं उत्तरकाशी के मुख्य-मुख्य स्थानों को देखने निकल पड़ा। सर्वप्रथम मैंने भगवान विश्वनाथ के दर्शन किये, फिर शक्ति के दर्शन किये। इस प्रकार एक-एक करके मैंने लक्षेश्वर महादेव के भी दर्शन किये। यह बहुत प्राचीन मन्दिर है जो भागीरथी के तट पर स्थित है। वहाँ एक धर्मशाला है जहाँ 8-10 साधु आराम से रह सकते हैं। यह स्थान बहुत सुरम्य है और यहाँ लोगों के कारण कोई व्यवधान नहीं है। जैसे ही मैंने यह स्थान देखा, मेरा मन वहाँ रहने का करने लगा। उस धर्मशाला के महन्त उदासीन सन्यासी चरणदास थे। वहाँ 4-5 वैरागी सन्यासी भी थे। महन्त ने मुझे वहाँ रहने की स्वीकृति दे दी। मैं काली कम्बली वाले की धर्मशाला वापस गया, खाना खाया और आराम किया। अगले दिन मैं शाम को लक्षेश्वर चला गया और वहाँ रहने लगा।

प्रतिदिन मैं भिक्षा (चावल, रोटी और दाल) के लिये काली कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र जाता और वापस लक्षेश्वर आ जाता - यह दूरी दोनों तरफ मिलाकर लगभग 1½ मील (2½ कि०मी०) है। फिर मैं गंगा के किनारे जाता और भिक्षा खाता। मुझे भिक्षा की इच्छा फिर नहीं होती और मैं शाम के लिये भी कुछ रख लेता। कभी-कभी मैं पास के कैलाश आश्रम से भिक्षा ले लिया करता था। इस प्रकार दिन आराम से कट रहे थे। मैं विद्वान स्वामी ब्रह्म प्रकाश जी के सानिध्य का लाभ ले रहा था। उसके अतिरिक्त देवगिरि स्वामी जी, कैलाश आश्रम के पास वाले आश्रम में रहते थे, वह बहुत ही ज्ञानी और दयालु व्यक्ति थे। उनको भगवद् गीता का शंकर भाष्य पूर्ण रूप से हृदयगम था। मुझे अभी तक काम चलाऊ हिन्दी भी नहीं आती थी, अतः श्री देवगिरि स्वामी जी, जो संस्कृत भाषा के विद्वान थे, के साथ आराम से वार्ता करके समझ सकता था। मैं उनसे अक्सर मिला करता और अध्यात्म पर चर्चा करके समय बिताता।

तुम सभी जानते हो, केरल में लोग बहुत कम जूते और चप्पल पहनते हैं किन्तु उत्तरकाशी में पत्थर, नुकीले और तेज, होते हैं और यहाँ पैर में चप्पल आदि, पहने बिना चला नहीं जा सकता। मैंने भी मसूरी से चलते समय जूते पहन लिये थे, जिससे कि मैं पैदल चल सकूँ। मैं भिक्षा माँगते

समय भी जूते पहनकर जाता था। यह केवल मुश्किल ही नहीं, बल्कि पूर्णतयः असम्भव था कि बिना जूते पहने चला जाये, वरन् पैर के तलवे फट जाते थे और छाले पड़ जाते थे।

एक बार मैं भिक्षा लेकर लक्षेश्वर लौट रहा था। मैंने केरल के एक युवक को रास्ते में देखा। जैसे ही उसने मुझे देखा, वह मेरे पास आया और प्रणाम किया। वह मेरे साथ गंगा नदी के किनारे लक्षेश्वर में आया और मेरे साथ भिक्षा खायी। मुझे जो भिक्षा मिलती थी वह एक व्यक्ति के भोजन से अधिक होती थी। यह युवक मेरे साथ रुकने को बहुत इच्छुक था और मैं पूर्णतयः संतुष्ट था कि भगवान ने इसे मेरी सहायता के लिये भेजा। वह मेरे लिये एक अच्छा सहायक बनेगा अतः मैंने उसे अपने साथ रखा। वह स्वयं जाकर अपने और मेरे लिये भिक्षा लाता। वह युवा भी था और शक्तिशाली भी।

यह मई 1924 थी, जब मैं उत्तरकाशी पहुँचा। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि लक्षेश्वर गंगा के तट पर है। एक बार वहाँ पहुँच जाओ तो आराम से रह सकते हो, गर्मी की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ दिनों में मेरे पैर बिल्कुल ठीक हो गये। इसलिये मैं स्वयं भिक्षा के लिये जाने लगा। इसमें कोई शंका नहीं है कि यदि कोई दूसरे पर निर्भर नहीं करता है तो उसका मन और शरीर दोनों ही मजबूत हो जाते हैं। बरसात आ गई। जो पारसी सज्जन मेरे साथ आये थे, वह कैलाश आश्रम के पास, एक झोंपड़ी में रहते थे। लक्षेश्वर के निकट जरा ऊँचे पर एक छोटी सी गुफा है। एक दिन मैं जाकर वहाँ बैठ गया। अष्टमी रोहणी (जन्माष्टमी) बीत गयी। मुझे फिर बुखार आ गया। उस स्थिति में पारसी भाई के पास आकर उनकी झोंपड़ी में रहने लगा। अब जोरों से पानी बरसने लगा। पारसी सज्जन, बद्री नारायण की यात्रा के लिये जाने लगे और मैं अकेला उस झोंपड़ी में रह गया। बुखार, बाद में खूनी पेचिश में बदल गया।

भगवान कहाँ ले जाना चाहते हैं, यह निश्चित ही विचित्र है। इसी प्रकार 20 दिन तक मैं इस बीमारी में पड़ा रहा। यह कुटी (झोंपड़ी) सड़क के किनारे थी, अतः अन्नक्षेत्र से भिक्षा लेने जाते और आते समय साधु महात्मा लोग मेरा समाचार जानने आ जाते। श्री देव गिरि स्वामी जी मेरी कुटी के पास रहते थे। वह कुछ दवायें जानते थे। उन्होंने मुझे कुछ दवाएं दीं। वे मेरे लिये अपने हाथों से चावल की कांजी बनाते। दिन में एक या दो बार वह मुझे देख आते और मुझे कांजी देते। कुटी में मेरे मन में विचार आता कि मैं गंगा में जाकर डूब जाऊँ, किन्तु मैं उतनी दूर भी नहीं चल

सकता था क्योंकि गंगा वहाँ से दूर थी। मेरे मित्र श्री केवल राम, प्रधानाध्यपक ने अस्पताल में कुछ दवाई भेजी। मैंने उन्हें खाया और दूध पिया। धीरे-धीरे बुखार उतर गया और मैं ठीक हो गया, किन्तु मैं बहुत दुबला और कमजोर हो गया था।

उस वर्ष बहुत वर्षा हुई, उससे आयी बाढ़ से जानमाल की बहुत क्षति हुई। मैंने बाद में सुना कि जिस गुफा में मैं रहा करता था, वहाँ एक साधु भजन और पूजा किया करता थे, बाढ़ में समाप्त हो गये। ऋषिकेश में एक स्थान है झाड़ी, जो तपस्या के लिये उपयुक्त है, यह गंगा की दो धाराओं के बीच है। साधना करने के लिये यह स्थान बहुत अच्छा है। जब मैं ऋषिकेश में था तो मैं उस सुरम्य स्थान को गया था और मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं वहाँ रहूँ। परन्तु भगवान की ऐसी इच्छा नहीं थी क्योंकि यदि मैं वहाँ रहा होता तो मैं उन सैकड़ों साधुओं के साथ बाढ़ में बहकर मर गया होता।

धीरे-धीरे मैं चलने फिरने लायक हो गया। कैलाश आश्रम के तत्कालीन महन्त एक विद्वान, वैरागी सज्जन थे। उन्होंने मुझ पर अनुग्रह किया और मेरे दोनों समय के खाने की व्यवस्था वहीं करवायी। वह भागवत परायणम (पाठ) किया करते थे और मैं भी कभी-कभी सुना करता था और स्वादिष्ट खाना खाया करता था।

नवम्बर आया। नवम्बर में ही ठंड होना शुरू हो गयी। मेरे ऊपर विशेष कृपा और स्नेह के कारण मेरे मित्र श्री देव गिरि स्वामी जी मुझे बार-बार अधिकारपूर्वक समझाते, “तुम्हें इस ठंडक में यहाँ ठहरना नहीं चाहिये। तुम शीघ्र मद्रास वापस चले जाओ, यहाँ पानी बरसते ही ठंड हो जायेगी”। मैंने सब कुछ शान्तिपूर्वक सुना, किन्तु मेरे मन में उत्तरकाशी को छोड़ने की इच्छा नहीं थी। यदि मुझे मरना भी है, मैं यहीं पर मर जाऊँ। मेरा दृढ़ निश्चय देखकर, स्वामी जी ने मुझे उत्तरकाशी में रहने की अनुमति प्रदान की। देव गिरि स्वामी जी के आश्रम से थोड़ा ऊपर एक स्थान उझेली है, वहाँ एक खाली भवन था। वह स्वामी जी के भक्त, वैश्य चरणदास का था। यह भवन स्वामी जी के अधिकार में था। वहाँ पर सभी प्रकार की सुविधाएँ थीं। वहाँ पर वेद और धर्म के विषय पर बहुत सी पुस्तकें थीं। जाड़े के मौसम में, स्वामी जी बहुत से साधुओं को यहाँ पर भोजन करवाया करते थे। मैं यह सब पहले नहीं जानता था। कुछ भी हो, स्वामी जी ने मेरी यहाँ रुकने की व्यवस्था करवायी।

उन्होंने उस भवन में मुझे पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। समय बहुत

आराम तथा खुशी के साथ व्यतीत हो गया। मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ कि यहाँ पर पहली बार मैंने तुलसीदास कृत रामायण (रामचरित मानस) पढ़ी। यद्यपि यह हिन्दी में थी, किन्तु संस्कृत जानने के कारण मैं थोड़ा-थोड़ा समझ पाया। मलयालम भाषा में प्रस्थान त्रयम् में गीता, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र हैं। मैं अब उनके सिद्धान्त और उनका सत्य कुछ-कुछ समझने लगा। अब मुझे वेदान्त के मार्ग में रुचि और लगाव बढ़ने लगा और मैंने अपनी भागवत की पुस्तक किसी को भेंट कर दी। वहाँ पर सत्संग करने की बहुत अच्छी सुविधा थी। मैं अक्सर महापुरुषों से मिला करता। श्री देवगिरि स्वामी जी, केवलाश्रम के स्वामी जी, सिद्धाश्रम के स्वामी जी, श्री ब्रह्म प्रकाश जी, श्री भिक्षु स्वामी जी, श्री शंकरानन्द भारती, श्री शंकरानन्द स्वामी जी आदि मुख्य थे। इसके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन के एक युवा सन्यासी धीरानन्द महाराज भी वहाँ ठहरे थे। वह स्नातक थे और त्यागी व्यक्ति थे। मैं उनको बेलूर मठ से ही जानता था। यहाँ पर भी वह मुझसे अक्सर मिला करते थे।

अब ठंड और बढ़ चुकी थी। चूँकि मेरे पास ठंडक के लिये आवश्यक सुविधाएँ थीं, इस कारण मुझे इस ठंडक में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। तीन दिनों तक लगातार बर्फ पड़ती रही। यह पहला अवसर था जब मैंने बर्फ पड़ते देखी थी। चारों ओर श्वेत ही श्वेत चमक रहा था। पेड़ों की शाखाएँ टूटकर गिर गयीं थीं। सड़क के किनारे वाले तथा अन्य पेड़ भी समाप्त हो चुके थे। सड़क पर पाँव की सुरक्षा किये बगैर चलना कठिन था। चुभने वाली हवा चल रही थी। किसी भी काम के लिये बाहर निकलना बहुत दुष्कर था। जब कोई कमरे के अन्दर आता तो आते ही पहले दरवाजे बन्द करता और ध्यान लगाकर बैठ जाता और उससे जो आनन्द का अनुभव होता, उससे कठिनाइयाँ और समस्याएँ समाप्त हो जातीं। मन बहुत प्रफुल्लित रहता। जब मैं सोचता हूँ कि मैंने यहाँ रुकने का निर्णय कैसे लिया तो मैं इसके लिये भगवान को धन्यवाद देता हूँ। जाड़ा इसी प्रकार व्यतीत हो गया।

गंगोत्री यहाँ से 58 मील (93 कि०मी०) दूर है। मेरी वहाँ जाने की इच्छा बलवती होती गयी। सभी लोगों ने पैदल यात्रा करने से मना किया, क्योंकि तीव्र वर्षा के कारण सड़क और पगडंडियों पर हो चुके भूस्खलन (पहाड़ी के पत्थरों का खिसकना तथा टूटना) के कारण जगह-जगह मार्ग अवरुद्ध था। अच्छे खासे मजबूत आदमी के लिये मार्ग तय करना असम्भव सा था। ऐसी परिस्थिति में उनको डर था कि मैं यह कार्य नहीं कर

पाऊँगा। किन्तु यह मेरी नहीं, केवल भगवान की शक्ति थी? एक दिन प्रातः श्री देव गिरि स्वामी जी का आशीर्वाद प्राप्त करके मैं गंगोत्री जाने के लिये निकल पड़ा। मेरे पास कुछ आवश्यक कपड़े, पानी का बर्तन और कुछ धन था।

मार्ग बिल्कुल चलने योग्य नहीं था। वे लोग जो कुछ भी कह रहे थे, सब सामने दिखाई दे रहा था। यदि किसी स्थान पर पहुँचने के लिये किसी को पहले एक मील चलना पड़ता, तो अब उसे दो मील चलना पड़ता। इसके उपरान्त मैंने निर्णय लिया कि मैं अब वापस नहीं लौटूँगा, बल्कि आगे जाऊँगा। शाम तक मैं एक साधु के आश्रम पहुँच गया। वहाँ खाना खाकर मैंने रात्रि विश्राम किया। अगले दिन रूके बिना मैं लगातार चलकर गंगानी पहुँच गया। वहाँ मैं ब्रह्मचारी पद्मनाभन के आश्रम गया, जो मुझे पहले से जानते थे। मैंने एक-दो दिन वहाँ व्यतीत किये। वह एक योग आसन की साधना कर रहे थे। योग की साधना के लिये दूध और घी का सेवन आवश्यक है। मेरे पास कुछ पैसे थे, उनमें से 2 रुपये मैंने अपने पास रख लिये और बाकी धनराशि उन्हें उपभोग के लिये दे दी। मेरी इच्छा बिना धन के यात्रा करने की थी। तीसरे दिन मैंने अपनी यात्रा शुरू की और शाम तक भटवाड़ी नामक स्थान पहुँच गया। मैंने वहाँ रात्रि बिताई। अगले दिन लगातार चलते हुए मैं थराली जा पहुँचा। यहाँ साधुओं के रुकने के लिये छोटी-छोटी कुटी बनी हुई है। मैं भी उनमें से एक में रुक गया। वहीं पास में गाँव है और गाँव वाले बहुत ही कृपालु हैं। वे साधु को मधुकरी भिक्षा बहुत प्रसन्नता से देते हैं। मुझे आश्चर्य था कि पहाड़ के चावलों में जो एक विशेष गन्ध होती है, यहाँ के चावल में नहीं थी। पहले शुरु-शुरु में नाक बन्द करके चावल खाया करता था। फिर धीरे-धीरे मैं उसका अभ्यस्त हो गया। यहाँ पर काली कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र में आटा मिलना भी सम्भव था। अभी तक मैंने आटे की चपाती बनाना नहीं सीखा था। यहाँ मैं यह सीख गया था किन्तु मैं उन्हें अच्छी तरह से नहीं बना पाता था।

एक सन्यासी कृष्णाश्रम यहाँ तपस्या कर रहा था। सभी लोग जानते हैं कि शंकराचार्य आश्रम ने सन्यासियों के लिये दस सन्यास आश्रम निर्धारित किये थे — (i) गिरि, (ii) पुरी, (iii) पर्वत, (iv) अरण्य, (v) वन, (vi) सरस्वती, (vii) भारती, (viii) तीर्थ, (ix) सागर, (x) आश्रमम्

तीर्थाश्रम वनारण्य गिरि पर्वत सागराः

पुरी भारती सरस्वती च दशेते दशनामिनाः

सन्यासियों के भी दस वर्ग होते हैं। इसमें से आश्रम का नाम दण्डी सन्यासी को दिया जाता है। यह मान्यता और स्वीकृति प्राप्त है कि दण्डी सन्यासी सर्वोत्तम माना जाता है। वह भी दण्डी सन्यासी था। दण्डी सन्यासी जो अपना दण्ड भी त्याग देता है उसे त्यक्त दण्डी कहा जाता है।

कृष्णाश्रम भी त्यक्त दण्डी थे। वह वहाँ तपस्या कर रहे थे और काफी समय से नग्न रह रहे थे। जब मैं पहली बार उसने 1925 में मिला, उसकी आयु 50 वर्ष से ऊपर थी। आजकल वह गंगोत्री में रह रहे हैं। मैंने उनके थराली में दर्शन किये थे। वह पूर्ण मौन व्रती थे। सभी गाँव वाले उन्हें भगवान् मानते। गाँव के सभी लोग खाना बनाने के बाद पहले थोड़ा भोजन कृष्णाश्रम को देते और बाद में घर-परिवार के लोग खाते। बहुत स्नेह के साथ उन्होंने मुझे बुलाया और भोजन के लिये आमंत्रित किया और अपने पास बैठाया। उन्हें भिक्षा के रूप में जो भी मिला था उसमें से प्रत्येक का भाग उन्होंने मुझे खाने को दिया। इस प्रकार 2-3 दिन मैंने आनन्दपूर्वक उसके साथ बिताए और गंगोत्री के लिये बढ़ गया। गंगोत्री यहाँ से 15 मील (24 कि०मी०) दूर है। मैं गंगोत्री पहुँच गया। यहाँ भी काली कम्बली वाले का एक अन्न क्षेत्र है। वहाँ पर रुकने की भी सुविधा है। नदी के किनारे एक-दो गुफा भी हैं। मैं एक दिन गुफा में भी रुका। गंगा का उद्गम स्थल गोमुख यहाँ से भी और दूर है। गंगोत्री से मैं थराली वापस आ गया और उन्हीं स्थलों पर रुकता हुआ आया, जहाँ जाते समय रुका था।

एक युवा जो उस समय गाँधी आश्रम में रुका था, वहाँ आया। वह केदार-बद्री की यात्रा के लिये निकला था। जब मैं उत्तरकाशी में था, वह उझेली आया था और 2-3 दिन रुका था। जब उसने मुझे थराली में देखा तो वह मेरे पास करीब एक सप्ताह रुका। वह अच्छा खाना भी पकाता था। उसने मुझे चपाती बनाना सिखाया। वह चारों धाम-बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री की यात्रा करने के लिये तैयार था। इस कार्य के लिये उसने काली कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र की पर्ची (चिट) ले रखी थी, जिससे जगह-जगह पर सदाव्रत (कच्ची सामग्री, जिससे खाना पकाया जा सके) प्राप्त कर सके। रास्ते की सभी मुख्य धर्मशालाओं पर चिट देने से उसे मुफ्त चावल, दाल और आटा आदि एक या दो बार के लिये प्राप्त होता। यदि आप बद्री-केदारनाथ की यात्रा करने के इच्छुक हैं तो मुझसे यह चिट ले लीजिये।

सच कहा जाये, मेरी कहीं भी जाने की इच्छा नहीं थी। इन स्थानों में भी मैं गया तो केवल भगवान ने ही मुझे भेजा। मैंने अब सोचना शुरू किया। ऋषिकेश में भी इन चिटों का मिलना बहुत कठिन था। ये जिस आसानी से मुझे मिल गयी, वास्तव में यह भगवान की इच्छा थी। अतः मैं बद्री-केदार की तीर्थ यात्रा के लिये तैयार हो गया। यद्यपि मेरे मित्र ने मुझसे कहा कि यदि धन की आवश्यकता हो तो मुझसे लेकर जायें, किन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया।

अब बद्री-केदारनाथ की तीर्थ यात्रा का मौसम आ गया। बहुत से लोग जो गंगोत्री से थराली वापस आ चुके थे, वे बूढ़ा केदार जाने की तैयारी कर रहे थे, उनमें से बहुत सी औरतें थीं। बहुत सी ऐसी थीं जिनकी पीठ उम्र के कारण झुकी थी। मैंने सोचा कि जब यह वृद्ध औरतें जा सकती हैं तो मैं क्यों नहीं जा सकता। मैं भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। उनके पास रास्ते में खाने के लिये बहुत कुछ सामग्री थी, किन्तु मेरे पास कुछ भी नहीं है। यह देखकर अच्छा लग रहा था कि 5-6 लोग हाथ में छड़ी लेकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। थराली छोड़कर हम लोग भटवाड़ी पहुँचे और रात्रि वहाँ बितायी। अगले दिन हम लोग बहुत सुबह चल दिये। बूढ़ा केदार यहाँ से 30 मील (48 कि०मी०) दूर है पहले 4-5 मील ऊँची चढ़ाई थी। जब हम पहाड़ के ऊपर पहुँच गये तो उससे भी ऊपर चढ़ाई थी और उससे भी ऊपर और ऊपर लगातार ऊपर उनके साथ ऊपर चढ़ता गया और बुरी तरह से थक गया। अब मेरे पास चिट थी। मैं ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ से सदाव्रत मिल सकता था। वहाँ मुझे खाने के लिये आवश्यक सामग्री मिल गयी। शाम हुई, स्नान आदि करने के बाद, मैंने चपाती बनायी और खाया, फिर आराम किया। भगवान ही सहारा है।

पुनः अगले दिन प्रातः मैंने अपनी यात्रा शुरू की। चलकर, बैठकर, लेटकर और आराम करते हुए किसी प्रकार शाम तक मैं बूढ़ा केदार जा पहुँचा। यहाँ समतल मैदान है। मन्दिर में भगवान शिव का विग्रह है। उसके पास ही नदी बहती है। वहाँ एक धर्मशाला भी है। यह वह स्थान है जहाँ तीर्थयात्रियों के लिये तथा भ्रमणार्थियों के लिये रुकने आदि की सभी सुविधाएँ हैं। यहाँ के लोग पढ़े-लिखे हैं। वे लोग औरों की तुलना में अधिक स्वच्छ रहते हैं। मैं केवल एक रात्रि के लिये यहाँ रुका। अगले दिन 3 बजे सांय से चल कर सूर्य डूबने तक मैं एक धर्मशाला पहुँच गया, जहाँ सदाव्रत मिलता था। जब तक मैं वहाँ पहुँचा, मैं बहुत कमजोर तथा थका था। मेरे पैरों में दर्द हो रहा था और एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा

रहा था। किसी तरह मैंने कुछ आटा और अन्य सामग्री ली, बहुत कठिनता से मैं पकाने लगा। जब आधा पक गया तो मैंने उसे खा लिया, भगवान से प्रार्थना की, लेट कर सो गया। मैं यह सोचकर परेशान था कि अब मैं यहाँ क्या करूँगा। मैं सुबह उठा, धीरे-धीरे चलते हुए त्रियुगी नारायण पहुँच गया। वहाँ एक मन्दिर है। वहाँ हवन कुण्ड की अग्नि कभी नहीं बुझती। तीर्थ यात्री और अन्य आने-जाने वाले लोग वहाँ खरीदकर हवन कुण्ड में लकड़ी डालते रहते हैं। ऐसा समझा जाता है कि शिव-पार्वती का विवाह यहाँ हुआ था।

यह कहा जाता है कि यह अग्नि शिव-पार्वती के विवाह के समय से ही जल रही है, उसके अतिरिक्त यहाँ 4 स्वच्छ पानी के कुण्ड हैं। विष्णु-कुण्ड, ब्रह्मा-कुण्ड, रुद्र-कुण्ड और सरस्वती-कुण्ड। हर दृष्टि से यह एक सुरम्य स्थल है।

यहाँ से मैं केदार के लिये चल दिया। रास्ते में मैं गौरी कुण्ड पर रुका। यहाँ कुण्ड में पानी इतना गरम था कि उँगली भी डुबोना मुश्किल था, तब भी कुछ लोग स्नान कर रहे थे। मैं धीरे-धीरे चलता गया, राम बाड़ा पहुँचकर आराम किया। ऐसा दिखाई दिया कि केदारनाथ पुरी यहाँ से 3 मील (5 कि०मी०) है। किसी को वहाँ पहुँचने के लिये चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। मार्ग के दृश्य मनोहारी एवं मन प्रसन्न करने वाले हैं। मंदाकिनी नदी पार करने के बाद यदि कोई केदारपुरी पहुँचता है तो निश्चय ही उसे प्रसन्नता होती है। पर्वतों के ऊपर से चारों ओर का दृश्य कलात्मक चित्र की तरह दिशाहीनता का बोध करता था। यहाँ बहुत ठंडक थी और जलाने के लिये लकड़ी प्राप्त करना कठिन था। तीर्थ यात्री केदारनाथ जी के दर्शन करके तुरन्त वापिस हो जाते थे। मैंने वहाँ पर तीन दिन व्यतीत किये।

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रय हेतवे।

रजत गिरि निभम् चारु चन्द्रा वतंसं

रत्नैः कल्पो ज्वलांगम्

परशु मृग धरं कृति वासम्

विश्वाद्यं विश्व वन्द्यं

निखिल भयहरं पंचवक्त्रम् त्रिनेत्रम्।

यह श्लोक जपते हुए और भगवान शिव का ध्यान करते हुए मैं लौटकर गौरी कुण्ड आ गया और विश्राम किया। अगले दिन मैं नाली चट्टी

पहुँचा, वहाँ से मैं ऊखी मठ पहुँचा। यह भी एक प्रसिद्ध स्थान है। जाड़े में जब केदार नाथ मन्दिर के पट बन्द कर दिये जाते हैं, उस समय केदारनाथ जी की पूजा ऊखी मठ में सम्पन्न की जाती है। यहाँ एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर है। यह वह स्थान है जहाँ ऊषा देवी ने पार्वती जी से ज्ञान प्राप्त किया था और उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया कि वह अनिरुद्ध के सपने में दिखाई देगी। मैं वहाँ एक रात्रि रुका। अगले दिन मैं एक और चट्टी (बाजार का स्थान) पर पहुँचा। वहाँ बहुत तेज बारिश होने लगी। एक श्रेष्ठि (साहुकार या दुकानदार) के आराम करने का स्थान देखकर मैंने वहाँ आराम करने की कोशिश की।

चट्टी एक दुकान होती है या दुकानों का एक समूह। यहाँ कोई सामान खरीद सकता है और यात्री को वहाँ रुकने की भी सुविधा होती है और वह लेटकर आराम कर सकता है। किन्तु यदि किसी के पास धन नहीं है तो चट्टी का मालिक उसको आस-पास भी नहीं रहने देगा। मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं था। चट्टी का मालिक (यहाँ तक कि बैठने के लिये भी) केवल उनको ही अनुमति देता, जो कुछ सामान खरीदते। कुछ समय में नहीं आया कि क्या करूँ, उसके मना करने के बाद भी मैं एक कोने में जा बैठा।

यह करीब दोपहर का 2 बजा होगा। मुझे बड़ी भूख लगी। क्या किया जाये? कलकत्ता का एक धनी सेठ अपने सेवकों के साथ चट्टी में आया हुआ था। मैंने उससे भिक्षा माँगी। उसने मुझे थोड़ा सा आटा दिया, जब मैंने उसे बताया कि बहुत बारिश हो रही है और मेरे पास जलाने के लिये लकड़ी नहीं है तो उसने मुझे एक आना (6 पैसे) दे दिया। उसे लेकर मैं आया और सोचने लगा कि इस परिस्थिति में क्या किया जाये। मैंने देखा कि पानी से पूर्णतयः भीगी हुई और कांप रही एक वृद्धा ने सेठ के पास पहुँच कर धीरे से भिक्षा माँगी। सेठ ने बड़ी ही तेज आवाज में उससे कहा, "अभी मैंने एक आदमी को भिक्षा दी है, अब तुम भी चाहती हो, है ना?" यह सुनकर वह वृद्ध औरत बहुत दुखी हो गयी और दूर जाने लगी। मैं बैठकर यह सब सुन रहा था। मैंने धीरे से आवाज देकर उस औरत को बुलाया, "माँ, यहाँ आ जाओ", वह मेरे पास आयी। मैंने उसे गेहूँ का आटा और एक आना दे दिया। वह बहुत खुश होकर गयी और मैं भी आराम महसूस कर रहा था। यह सब सेठ गलत और अनुपयुक्त कार्यों में लाखों रुपये अपने नाम और ख्याति के लिये खर्च कर सकते हैं किन्तु यदि एक कांपती हुई गरीब भूखी और वृद्धा को देने वाली बात आती है, तो वे एक पैसा भी खर्च नहीं करना चाहते। भगवान ऐसे लोगों को भी आशीर्वाद दे।

मृदुलम् किमवस्तु हे सखे नवनीतादपि सज्जनस्य हृद
तदिदम् द्रवते स्वतापनात् परतापात् द्रवते सताम् मनः

(क्या ताजे मक्खन से भी ज्यादा कोई वस्तु कोमल है? हाँ है। यह सज्जन मनुष्य का हृदय है। क्यों ऐसा है? कारण क्या है? क्योंकि मक्खन गर्मी के सम्पर्क में पिघलता है और सज्जन का हृदय दूसरे का दुख या कष्ट देखकर अपने आप पिघल जाता है।)

मैं वहाँ बराबर बैठा रहा। हाँ, मुझे आज रात्रि जो चिट मिली थी, उसमें भूख और व्रत था, किन्तु सेठ का नौकर मुझे थोड़ा सा खाना देना नहीं भूला। मैं अगले दिन कैसे पहाड़ों पर चढ़ूँ उतरूँगा। यही सोचते-सोचते मैं निद्रा की गोद में सो गया और खूब सोया।

अगला पड़ाव गोपेश्वर था। वहाँ मैंने ठीक तरह से भोजन किया। अगला पड़ाव चमोलीलालसंग था, अलकनन्दा नदी का पुल पार करके जब मैं वहाँ पहुँचा, अंधेरा घिर आया था। यह एक महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ स्कूल, आफिस, चिकित्सालय, दवाईखाना और बाजार आदि हैं। यहाँ काली कम्बली वाले की धर्मशालाएँ भी हैं, जहाँ सदाव्रत भी था। यद्यपि मैंने गेहूँ का आटा और अन्य सामग्री ले ली थी किन्तु उन्हें बाँध रखा था, खाना बनाने की कोशिश नहीं की। मैंने सोने की कोशिश की किन्तु खटमलों के कारण नींद नहीं आ रही थी। यह एक समस्या थी जिसका मैं यात्रा में मुकाबला नहीं पा रहा था। मैं पुल के करीब गया और सड़क के किनारे सो गया। मैं अगले दिन प्रातः जल्दी ही उठ गया और यात्रा शुरू कर दी। करीब 6-7 मील पैदल चलकर मैं एक चट्टी पर पहुँच गया। मेरे पास मात्र एक पाई (आधा पैसा) था। मैंने चट्टी के मालिक से एक बर्तन लिया। बर्तन मात्र उन लोगों को दिया जाता है जो चट्टी से कुछ सामान खरीदते हैं। चट्टी के मालिक ने यह सोचकर मुझे बर्तन दिया होगा कि मैं उससे बाद में कुछ सामग्री खरीदूँगा। मैंने एक पाई (आधा पैसा) की लकड़ी खरीदी। आग जलाई और उस पर दाल रख दी। जब मैं आटा गूँथने लगा तो चट्टी का मालिक दौड़ता हुआ आया, उसने मुझे गाली देकर कहा, "तुम्हें ये आटा कहाँ से मिला? तुमने मुझे धोखा दिया है, दिया है ना"। उसने मुझसे जोर डालकर कहा, उसका बर्तन तुरन्त वापस कर दूँ। मैं चुपचाप खड़ा रहा, समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ या क्या करूँ। किन्तु वह इतना कठोर नहीं था कि मेरी आग पर चढ़ी दाल को फेंक दे। फिर कुछ दया दिखाते हुए अचानक वह बोला, "ठीक है, कृपया बर्तन शीघ्र वापस कर देना"। इतना कहकर वह चला गया। मैंने दाल और चपाती बनायी और

खाना खाया। फिर उसका बर्तन ठीक से साफ किया और दुकानदार को वापस कर दिया।

अगला पड़ाव गरुड़ गंगा पर था, जहाँ मैं शाम को पहुँचा। मैं धर्मशाला गया और अपना सामान एक कोने में रख दिया। फिर मैं गरुड़ गंगा गया और स्नान किया। नदी का पानी बहुत धवल स्वच्छ था। मेरी यात्रा की सारी थकान दूर हो गयी। मन प्रसन्नचित्त हो गया। यात्री इस नदी तट से छोटे-छोटे पत्थर अपने साथ ले जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि जहाँ यह पत्थर रखे जाते हैं, वहाँ साँप सपलुवे स्वप्न में भी नहीं आते। ऐसी पारम्परिक मान्यता है कि भगवान ने यहाँ अवतरित होकर गरुड़ स्वामी को दर्शन दिये। गरुड़ स्वामी का यहाँ एक छोटा सा मन्दिर है। मैंने वहाँ पूजा की और धर्मशाला वापस आ गया। यहाँ पर भी सदाव्रत मिलता है। मैंने सामग्री प्राप्त की, चपाती आदि बनाई और भोजन किया। मेरे पास कुछ गेहूँ का आटा और अन्य सामग्री बच गयी। सदाव्रत केवल चिट वाले लोगों को ही मिलता है, किन्तु बिना चिट के भी लोग इस क्षेत्र में यात्रा करते हैं। धर्मशाला का भवन दो मंजिला है। मैंने भूतल पर एक भाग ले रखा था। जब मैंने जोर से कहा कि क्या कोई गेहूँ का आटा और अन्य सामग्री लेना चाहता है तो एक सज्जन मेरे पास आये, वे ओर कोई नहीं, वहीं सज्जन थे जिन्होंने अपनी चिटें मुझे थराली में दी थी। वे तीर्थ यात्रा करके बद्री नारायण से वापस आ रहे थे। जैसे ही उन्होंने मेरी आवाज सुनी, वे मुझे पहचान गये और मुझसे मिलने के लिये पूरी उत्सुकता से आगे आये। मैं पुनः उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे दुबला-पतला और कमजोर देखकर वे बहुत चिन्तित हुए। उन्हें पता था कि मेरे पास कोई पैसा नहीं है। उन्होंने कहा, "क्या मैंने तुमसे पहले नहीं कहा था कि तुम कुछ धन अपने पास रखो"? ठीक है, कोई बात नहीं, अब धन अपने पास रखो। धन देते समय उन्होंने मुझसे प्रार्थना भी की कि मैं स्वामियों का स्वभाव जानता हूँ, यह धन केवल स्वामियों (सन्यासियों) के प्रयोग के लिये है, यह किसी और को देने के लिये नहीं है। मैंने उनसे कहा कि ऐसी परिस्थिति में मैं धन नहीं लेना चाहता और धन लेने से मना कर दिया। किन्तु उन्होंने हंसते हुए पाँच रुपये का नोट मेरे हाथ में जबरदस्ती थमा दिया। उस समय पाँच रुपये के नोट का मूल्यांकन करना असम्भव था। मैं उसके बाद अपने उस कोने वाले स्थान को लौट गया और वे अपने स्थान को चले गये। भगवान के वे विचित्र तरीकों के बारे में सोचते-सोचते नींद आ गयी।

अगले दिन प्रातः निकलकर मैं पाताल गंगा पहुँच गया। शौच आदि

क्रिया से निवृत्त होकर तथा स्नान करके 4-5 आने में (25-30 पैसा) मिठाई (शक्कर पारे) खरीदी और अधिकतर लोगों में बाँट दी और थोड़ा बहुत मैंने भी खाया। यहाँ प्रतिवर्ष काफी भूस्खलन होता। कई बार यात्री मर जाते हैं। इस कठिन भूमि तल पर यात्रा करते हुए मैं शाम तक गुलाब चट्टी पहुँच गया। यह एक आरामदायक स्थान है। मैंने यहाँ रात्रि में भोजन करके आराम किया। अगले दिन मैं कुँवर चट्टी पहुँच गया। शाम को मैं वहाँ से जोशीमठ पहुँचा। जाड़े की बर्फ के कारण जिन 6 माह बद्दीनाथ के पट बन्द होते हैं, बद्दी नारायण की पूजा जोशीमठ में सम्पन्न की जाती है। चूँकि बद्दी के पुजारी भी केरल के नम्बूदरि ब्राह्मण होते हैं अतः मैं यहाँ एक दो दिन रुका। बद्दीनाथ मन्दिर के पुजारी रावल के नाम से जाने जाते हैं। यहाँ से 5-6 मील (8-10 कि०मी०) दूर, भविष्य बद्दी और भविष्य केदार है। आगे के समय जब कलियुग और बढ़ेगा तो विष्णु प्रयाग के निकट दोनों पर्वत टूट जायेंगे और मात्र एक पत्थरों का ढेर बन जायेगा। उस समय बद्दी जाना सम्भव नहीं हो सकेगा तो लोग यहीं भविष्य बद्दी और भविष्य केदार की पूजा करेंगे। किम्बदन्तियों के अनुसार, इस स्थान पर पाण्डु को शाप दिया गया था। जब एक साधु और उसकी पत्नी, मृग के रूप में मैथुन में संलग्न थे, पाण्डु ने जानवर समझकर उन्हें घायल कर दिया और साधु की मृत्यु हो गयी। उस साधु की पत्नी के शाप के कारण वे अपनी पत्नी कुंती से सहवास करने में असमर्थ हो गये। जोशीमठ से मैं विष्णु प्रयाग पहुँचा। गंगा के समीप पहुँचने के लिये करीब 150 फीट (45 मीटर) नीचे उतरना पड़ता है। यह स्थान खूबसूरत है। उसके बाद मैं पाण्डुकेश्वर जा पहुँचा। यहाँ एक छोटा मन्दिर है यह कहा जाता है कि इस मन्दिर के विग्रह को अर्जुन स्वर्ग से लाये थे। यहाँ एक गाँव भी है। यहाँ से मैं हनुमान चट्टी पहुँच गया, यह आखिरी चट्टी है। यहाँ एक हनुमान का मन्दिर, एक धर्मशाला और दुकानें हैं। अगले दिन मैं बद्दीनाथ के लिये चल दिया। 5 मील (8 कि०मी०) पैदल चलकर कोई भी बद्दीनाथ पहुँच सकता है। रास्ते में कंचनगंगा (श्वेत गंगा) पार करने के बाद चढ़ाई चढ़कर मैं बहुत थक गया। पहाड़ पर चढ़ने के बाद कोई भी बद्दी का मन्दिर देख सकता है। जो 1 मील (1½ कि०मी०) दूर है। इस पहाड़ पर थोड़ा विश्राम करके, मैं बद्दीनाथ पहुँचकर बहुत प्रसन्न हुआ। मन्दिर के सम्मुख जाकर मैंने भगवान को प्रणाम किया। मैं धर्मशाला गया और वहाँ अपना सामान रखा। जल्दी से मैंने स्नान किया। यहाँ एक तप्त कुण्ड है जहाँ पानी हमेशा गर्म रहता है। कठिन यात्रा पूर्ण करने के बाद जब कोई कुण्ड में स्नान करता है तो उसकी शारीरिक और मानसिक थकान गायब

हो जाती है। मन शान्त और आनन्द से भर जाता है। कपड़े बदलने के बाद मैं अन्दर गया और भगवान से प्रार्थना की तो मन शक्ति से भर गया। मन खुशी से झूम उठा। क्या यह वह स्थान नहीं है जहाँ कृष्ण ने उद्धव को भेजा था। कोई भी भागवत के सभी प्रसंग याद कर सकता है। स्वप्न में भी यह सोच नहीं सकता कि पक्षाघात की बीमारी का शिकार होकर बिस्तर से उठ पाने में असमर्थ मैं कभी बद्दीनाथ भी पहुँच जाऊँगा। मैं यहाँ कुछ देर तक खुशी से घूमता रहा, भगवान के दर्शन का आनन्द लेता रहा और उनकी असीम दया का स्मरण करता रहा। भारत के हर भाग से लोग बद्दीनाथ आकर भगवान के दर्शन करने के लिये ऐसे उमड़ते हैं, जैसे उदगम स्थल से नदी निकल रही हो। वहाँ बहुत देर रहना असम्भव था। दर्शन करने के बाद मैंने मन्दिर की परिक्रमा की। मैंने दोपहर में दीप आराधना (आरती) के समय पुनः दर्शन किये। दीप आराधना अवर्णनीय खुशी को प्रदान कर रही थी।

मैं काली कम्बली वाले की धर्मशाला में गया, खाना खाया और आराम किया। मैंने बद्दी के मुख्य-मुख्य स्थानों को देखा। मेरा मन था कि लम्बे समय तक मैं यहाँ रुकूँ। अलकनन्दा के दूसरी ओर अलग हटकर ऋषियों के रहने के लिये 8-10 कुटी बनी हैं। यह कहना काफी है कि उसमें से एक में रुकने की कोशिश की, किन्तु सफलता नहीं मिली।

आदि शंकर ने भगवान बद्दी का विग्रह नारद कुण्ड से निकाला था और मन्दिर में स्थापित किया था। यह मन्दिर बहुत छोटा है। यहाँ पर अन्दर और भी विग्रह है। मुख्य पुजारी, यात्रियों को नारद, कुबेर और अन्य देवताओं के विग्रह भी दिखाते हैं। मुख्य पुजारी को यहाँ रावल साहब कहते हैं। आदि शंकराचार्य के आदेशों के पालन में यहाँ मन्दिर के अन्दर आज भी केरल के नम्बूदरि ब्राह्मण पूजा करते हैं। जो आज भी उसी प्रकार उनके द्वारा की जा रही है। रावलों को यहाँ पर विशेष अधिकार, आदर और प्राथमिकता प्रदान है। वे इस मन्दिर के प्रबन्ध के सर्वोच्च अधिकारी हैं किन्तु बाद में उचित और सही चाल-चलन में कमी आने के कारण यह मन्दिर सरकार के अधिकार में आ गया। तदपि आज भी पूजा मलयाली ब्राह्मण द्वारा ही सम्पन्न की जाती है।

यहाँ एक नारद का विग्रह है और मन्दिर के पास नारद कुण्ड है। ठीक अलकनन्दा नदी के बीच एक नरसिंह का विग्रह है। वह स्थल जहाँ गरुड़ भगवान ने तपस्या की थी, गरुड़ शिला के नाम से जाना जाता है। यहाँ एक छोटा सा केदारेश्वर महादेव का मन्दिर है। उसी के पास श्री

शंकराचार्य की मूर्ति है। यहाँ एक रामानुज कोटी भी है जो वैष्णव मतावलम्बियों के लिये पवित्र स्थान है। यहाँ पास में कूर्माधार भी है। कई बार मैंने यहाँ बहते हुए झरने में स्नान किया। यहाँ का पानी पीने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। गया का पिण्डदान पितरो (मृत आत्माओं) के मोक्ष के लिये किया जाता है। गया में पिण्डदान करने के बाद भी जिनके पितरों को मोक्ष नहीं मिल पाता, उनके लिये एक पवित्र तीर्थ स्थान ब्रह्मकपालम् है। यहाँ पर पण्डे तीर्थ यात्रियों और अन्य यात्रियों को पिण्डदान करवाते हैं। वसुधारा यहाँ से 6 मील (9½ कि०मी०) है। यहाँ से दृश्य बहुत शानदार दिखाई देता है। कुछ साधु यहाँ तब तक ठहरते हैं जब तक बद्रीनाथ का मन्दिर जाड़े में बन्द नहीं हो जाता, इसी के पास मुचकुन्द की गुफा है। माता जी का एक छोटा सा मन्दिर है जो बद्री मन्दिर से 1 मील (1½ कि०मी०) दूर है। जो यात्री काफी मेहनत और कठिनाई के बाद किसी प्रकार बद्रीनाथ पहुँच जाते हैं, वे सब कुछ भूलकर इस स्थान के नैसर्गिक सौन्दर्य में डूब जाते हैं। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मुझे विशेष हर्ष का अनुभव हुआ। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मैं यहाँ एक सप्ताह रुका, तब भगवान के प्रसादम् तथा श्लोकों का जप करते-करते मैंने अपने पैर वापसी की ओर किये।

बद्रीनाथ स्तोत्रम्

पवन मंद सुगन्ध शीतल हेम मन्दिर शोभितम्
 श्रीनिकट गंगा बहत निर्मल श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥
 शेष सुमिरन करत निशि दिन धरत ध्यान महेश्वरम्
 श्री वेद ब्रह्म करत यह स्तुति श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥
 शक्ति गौरी गणेश शारद नारद मुनि उच्चारणम्
 योग ध्यान असार लीला श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥
 इन्द्र चन्द्र कुबेर दिनकर धूपदीप प्रकाशितम्
 सिद्ध मुनि जन करत जय-जय श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥
 यक्ष किन्नर करत कौतुक ज्ञान गम्य प्रकाशितम्
 श्री लक्ष्मी कमला चंवर डोले श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥
 श्री बद्रीनाथ दीप चरणपात पाप विनाशनम्
 श्री सिद्ध मुनि जन करत जय-जय श्री बद्रीनाथ विश्वंबरम्॥

(12)

बद्रीनाथ से वापसी

बद्रीनाथ ऐसे पवित्र स्थल से लौटने का मन ही नहीं हो रहा था। जिस रास्ते से मैं चल कर गया था, मैं उसी रास्ते से वापस लौटा और मन में यह विचार था कि यदि मैं सौभाग्यशाली होऊँगा तो दोबारा फिर आऊँगा और कुछ दिन रुकूँगा। पाण्डुकेश्वर, जोशीमठ, पीपल चट्टी से गुजरने के बाद मैं चमोली चट्टी पहुँचा। वहाँ रात्रि विश्राम करने के बाद मैं नन्दप्रयाग पहुँचा। नन्दप्रयाग से लगातार चलते हुए कर्ण प्रयाग जा पहुँचा। यहाँ एक खूबसूरत मन्दिर है। मैंने प्रयाग में स्नान किया। नदी के किनारे ऊपर की ओर एक धर्मशाला है जिसमें खाना पकाने की सुविधा है। मैं यहाँ एक-दो दिन रुका, फिर मैं श्रीनगर की ओर चल दिया। श्रीनगर बहुत सुन्दर स्थान है, निश्चय ही कोई कह सकता है कि यह श्री की नगरी है (श्री का अर्थ महालक्ष्मी-धनधान्य की स्वामिनी)। यहाँ कई स्थानों पर बाजार हैं। अलकनन्दा को पार कर मैं नदी के दूसरे किनारे आ गया। यह स्थान गढ़वाल श्रीनगर कहलाता है। पहले के समय यह दोनों स्थान टेहरी के महाराज के अधिकार क्षेत्र में थे। चूँकि अंग्रेजों ने महाराज को लड़ाई में सहायता दी थी, अतः गढ़वाल का आधा भाग जिसमें श्रीनगर का आधा हिस्सा भी सम्मिलित था, अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया गया। वहाँ कुछ दिन रुक कर मैं कीर्ति नगर पहुँचा। अलकनन्दा के किनारे ऊपर की ओर गुफा की तरह बने कुछ स्थान हैं, यहाँ साधुओं के रहने की सुविधा है। मैं वहाँ रुक गया।

मैं पहले भी बता चुका हूँ कि मेरे लिये इस जमीन पर चलना बहुत कठिन है। भगवान की कृपा और आशीर्वाद से इस तरह की पथरीली जमीन के रास्तों पर किसी प्रकार चल सका। कई बार ऐसी स्थिति आयी, जब पैरों का दर्द असहनीय हो गया। मैं सड़क पर ही बैठ गया और भगवान का ध्यान करना शुरू कर दिया और उसके बाद दर्द समाप्त हो गया और मैंने फिर चलना शुरू किया। यह सब भगवान की इच्छा है। अब मेरे पेट में बहुत दर्द-ऐंठन आदि शुरू हो गयी। मैं बद्रीनाथ में 6-7 दिन ठहरा था, वहाँ यह रीति है कि यात्री साधु की पूजा करते हैं। मुझे एक यात्री अपने साथ ले गया और उसने दुकान से खरीदकर बहुत सी मिठाई मुझे खिलायी। उस दिन से मेरे पेट में समस्या शुरू हो गयी। उसको भुलाता हुआ मैं लगातार चलता रहा किन्तु कीर्ति नगर पहुँचते-पहुँचते मेरी

समस्या काफी बढ़ चुकी थी। मैं किसके पास जाऊँ? भगवान ही केवल शरण दे सकता है। जब मैं कठिनाई का अनुभव करते हुए इस प्रकार विचार कर रहा था, एक प्रौढ़ ब्राह्मण आकर मुझसे बात करने लगा। वह संस्कृत अच्छी तरह जानता था। मैंने उसे अपनी बीमारी के बारे में बताया। उसे कुछ औषधियों की जानकारी थी। उसका घर वहाँ से 1 मील (1½ कि०मी०) था। उसके आग्रह करने पर, मैं उसके साथ उसके घर पर कुछ दिन रुका। उसने अपनी भरसक कोशिश की, किन्तु उसकी औषधि से मेरी बीमारी ठीक नहीं हो सकी। श्रीनगर में एक चिकित्सालय है। उसने नदी पार कराने में मुझे सहयोग दिया और चिकित्सालय में भर्ती कराया। 8-10 दिन मैं वहाँ रहा, उपचार से कुछ आराम मिला। एक विख्यात वकील श्री तारा दत्त को मेरे बारे में पता चला। उन्हें साधुओं की सेवा में विशेष लगाव था। उन्होंने चिकित्सालय से मुझे निकाल लिया और नदी के किनारे अपने अलग बने एक भवन में ले गये। वहाँ उन्होंने मेरे रुकने का सारा इंतजाम किया। उनका घर पौड़ी में था फिर भी अक्सर आराम करने के लिये वह इस मकान में आ जाते थे। मैं यहाँ 10-15 दिन रुका, फिर वह मुझे अपने घर ले गये, उनके घर का नाम "शान्ति निकेतन" था। मैं वहाँ एक महीने तक रुका। पौड़ी एक पहाड़ी स्थल है। गर्मी के समय भी यहाँ ज्यादा गर्मी नहीं होती। उनके मकान के बगीचे में विभिन्न प्रकार के पेड़ थे, जो फूलों से लदे थे। इस मौसम में संतरे खूब लगे थे। श्री तारादत्त की तरह घर के अन्य सदस्य बहुत स्नेही थे, किन्तु मैं इस तरह के जीवन का आदी नहीं था। एक दिन बिना किसी को बताये हुए मैं घर से निकल आया और देव प्रयाग आ गया।

बिल्कुल हरिद्वार की तरह, देव-प्रयाग भी तीर्थ केन्द्र है। यह पण्डों का क्षेत्र है। यहाँ भागीरथी और अलकनन्दा का संगम होता है। यात्री संगम पर स्नान करते हैं और मृतात्माओं के लिये भगवान को जल तर्पण तथा श्राद्ध सम्पन्न करते हैं। यहाँ के सारे पुजारी पण्डा हैं। यात्री अपनी क्षमता के अनुसार उन्हें दक्षिणा देते हैं। यहाँ श्री रघुनाथ मन्दिर है। यहाँ दुकानों से सामान खरीदा जा सकता है। देव प्रयाग में काली कम्बली वाले की बड़ी धर्मशाला है। इस धर्मशाला में मैंने एक स्थान प्राप्त कर लिया। जब तक मैं पौड़ी में रहा, मुझे पेट में कोई समस्या नहीं थी, आवश्यकतानुसार मुझे दूध और फल मिल जाता और मैं आराम से उनका उपभोग करता था। जैसे ही मैंने पौड़ी छोड़ी मेरे पेट का कष्ट बढ़ने लगा। मेरे पेट में जब तब मरोड़ होती, मेरी भूख भी मर गयी। मैं बहुत कष्ट में था। धर्मशाला के काफी पास गंगा बहती है। वहाँ नदी तक पहुँचने के लिये ग्रेनाइट के

पत्थरों की सीढ़ियाँ बनी हैं। करीब 30 तो होंगी ही। मैं अपनी बीमारी से काफी आहत हो गया। गंगा में कूदकर जान देने के बारे में भी मेरे मन में विचार आया। एक दिन करीब 2 बजे दोपहर को मैं सीढ़ियाँ उतरता हुआ आखिरी सीढ़ी पर जा पहुँचा और मैं कूदने ही जा रहा था कि मैंने एक आवाज सुनी, "यहाँ एक अच्छा बंगाली डाक्टर है उसने अपनी दवा से कई बीमारियों को ठीक किया है। वह एक अच्छा आदमी है और पैसे का लालची भी नहीं है", जब मैंने यह शब्द सुने तो मुझे लगा कि यह मेरे लिये कहे गये हैं। यह सोचकर यदि मैं इसके कहे-अनुसार करूँ तो मुझे आराम मिल सकता है। मैंने गुस्से में लिये गये अपने मूर्खता भरे निर्णय को रोका। मैं नदी के किनारे से फिर ऊपर की ओर चढ़ा और डाक्टर के बारे में जानकारी प्राप्त की, तब मैंने उसके स्थान पर जाकर अपने बारे में सारे विवरण दिये। उसने मेरे प्रति विशेष लगाव दिखाया और तुरन्त मुझे इंजेक्शन दिये। दो-तीन इंजेक्शन के बाद मैं बिल्कुल ठीक हो गया। इतना ही नहीं, उसने मुझे दूध और खाने के लिये अन्य सामग्री भी दी।

अब मैं पूर्णतया स्वस्थ और सामान्य था। मुझे अब क्या करना चाहिये। मैंने उत्तरकाशी जाने का निर्णय लिया और वहाँ से प्रस्थान किया, एक शाम मैं उत्तरकाशी पहुँच गया। मैं अपने मित्र और अनुग्रही (संरक्षक) श्री देव गिरि स्वामी जी के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम किया। वे बहुत प्रसन्न हुए, पहले भी मैं स्वामी जी के अधिकार में एक कुटी थी, मैं रह रहा था। वह स्थान मेरे लिये बहुत उपयोगी था। स्वामी जी ने कहा, "कई लोग मुझसे उस कुटी में रहने के लिये अनुमति माँग रहे हैं यदि तुम आज नहीं आते तो मैं कल किसी को दे देता। अच्छा हुआ कि आज तुम आ गये" यह कहते हुए उन्होंने मुझे चाबी दे दी। रात्रि का खाना खाने के तुरन्त बाद मैंने जाकर कुटी में स्थान लिया और आराम किया। मेरी यात्रा का सारा वर्णन सुनकर सभी ने मेरे प्रति सहानुभूति दिखाई -

"अन्यथा शरणम् नास्ति त्वमेव शरणम् मम

तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष महेश्वरः" । ओम् ।

तपस्या स्थली की तलाश में

मैं वहाँ आराम से रह रहा था। अक्सर मैं विश्वनाथ मन्दिर में पूजा के लिये जाया करता था। भोजन के लिये काली कम्बली वाले के अन्नक्षेत्र जाना पड़ता था। यहाँ वेदान्त पर बहुत सी पुस्तकें थीं। श्री देव गिरि स्वामी जी एक वेदान्ती थे और एक भक्त भी, और मुझे उनके साथ रहने में आनन्द मिलता था। अब एक यतिवर्य (बड़ा सन्यासी) भी बेलूर मठ से आ गया और उसने उत्तरकाशी को अपना निवास स्थल बनाया। वह एक परास्नातक था और अति क्षमतावान साधक और स्नेही व्यक्ति था। मैं उन्हें तब से जानता था, जब वे बेलूर मठ में थे और यहाँ वह मित्रता सौगुनी हो गयी। हम लोग अलग कहीं बैठकर परमात्मा के बारे में बहुत देर तक लम्बे-चौड़े विचार-विमर्श करते। वह एक स्थान ज्ञानसू में रहते थे। हम लोग एक-दूसरे से अक्सर मिलते थे। जब मैं उझेली में रहता था तो एक शाम को मुझे बड़ी इच्छा हुई कि मैं ज्ञानसू में जाकर उससे मिलूँ। मेरे पास ज्ञानसू जाकर उझेली लौटने का पर्याप्त समय नहीं था। किन्तु मुझे ऐसा लगा कि कोई मुझसे बार-बार जोर देकर कह रहा है — “जाओ, जल्दी जाओ”। मैं ज्ञानसू गया जो 2 मील (3 कि०मी०) दूर था। उस समय ठंडक का मौसम आ गया था। मेरे मित्र धीरेन्द्र महाराज, एक बरामदे के कोने में सिकुड़े बैठे ठितुर रहे थे। गाँव के बुजुर्गों ने उन्हें सोने के लिये कमरा नहीं दिया था। वह बहुत ही संकोची और विनम्र व्यक्ति थे। उनकी यह दयनीय स्थिति देखकर मैंने गाँव के अधिकारियों से आग्रह करके एक कमरा खाली करवाकर, उन्हें स्थायी रूप से रहने के लिये दिलवाया। वह बहुत प्रसन्न हुए। भगवान के इन शब्दों की महत्ता वास्तविक रूप से समझ में आयी, “योगक्षेमम् वहाम्यहम्”। मैं भगवान का बहुत कृतज्ञ हुआ और वापस उझेली आ गया। इसी स्थान ज्ञानसू में श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि भी उत्सव के रूप में मनाई गयी। पूरी रात्रि भजन और कीर्तन चलता रहा, समय कैसे बीत गया, किसी को पता भी नहीं चला।

एक बार फिर मेरा उझेली से लक्षेश्वर को स्थान परिवर्तित करना आवश्यक हो गया। मैं पूरे जाड़े लक्षेश्वर से काली कम्बली वाले के अन्नक्षेत्र भिक्षा के लिये जाता था। भगवान को भूलना कठिन है, जिन्होंने उस जाड़े में मुझे ठण्ड और बरसात के मौसम को झेलने की शक्ति दी। मैं अपना दूसरा जाड़ा यहाँ बिता रहा था। इस वर्ष बर्फ उतनी अधिक नहीं पड़ी,

जितनी पहले वर्ष पड़ी थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जाड़े का मौसम भजन के लिये उपयुक्त होता है।

ज्ञानसू में एक वृद्ध सन्यासी सिद्धाश्रमम् रहते थे। मैं उनके आश्रम में भी कुछ दिन रुका। वह मधुकरी भिक्षा में हिस्सा ले लेते थे, किन्तु वे मधुकरी भिक्षा लेने के लिये घर-घर जाने में असमर्थ थे। अतः मैं घर-घर जाकर मधुकरी भिक्षा उनके लिये भी लाता और उनकी इच्छा पूरी करता।

दिनमपि रजनी सायम् प्रातः शिशिर वसन्तौ पुनरायातः

इस प्रकार दिन-रात बीतते गये, जाड़ा बीता, बसन्त आ गया और अब दोबारा उसकी पुनरावृत्ति हो रही है। मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब हो रहा था। मैंने एक के बाद एक दवा लेना शुरू किया। ऐसा कहा जाता है कि बीमारी, उपयुक्त भोजन न मिलने के कारण अपना सिर उठाने लगती है। यद्यपि मेरी देखभाल करने के लिये यहाँ बहुत से मित्र थे, तदपि मैंने उत्तरकाशी छोड़ने का निर्णय लिया, ताकि मैं उनके ऊपर बोझ न बनूँ। मैंने यह निर्णय धीरेन्द्र महाराज को बताया।

एक दिन 3 बजे दोपहर में मैंने अपना सामान बांधा और नीचे उतरना शुरू कर दिया। भगवान की इच्छा निश्चय ही अनोखी होती है। मैंने रात्रि सड़क के किनारे स्थित साधु आश्रम में व्यतीत की। उस साधु ने भी मुझे कुछ दवाइयाँ दीं, किन्तु उससे भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अगले दिन धीरे-धीरे चलते हुए मैं धरासू से होता हुआ डुन्डा-प्रयाग पहुँचा। मुझे शौच के लिये बार-बार इधर-उधर जाना पड़ रहा था। मैं क्या करूँ? अगर कोई डुन्डा-प्रयाग का पुल पार कर ले तो दूसरी ओर नदी के किनारे छोटी-छोटी कुटी बनी हुई हैं, जहाँ कोई रह सकता है, मैं उनमें से एक में चला गया और बैठ गया। पेट दर्द में किसी प्रकार का आराम नहीं मिला। दस्त बराबर आ रहे थे। यह ऐसा समय था कि मैं एक जगह बैठकर कुछ देर के लिये भगवान का नाम भी नहीं ले पा रहा था। निश्चय ही ऐसी जिन्दगी का क्या अर्थ? मृत्यु इससे अच्छी है। यह निश्चय करके मैं पुनः पुल के पास गया। नदी पूरी भव्यता से तेजी के साथ कल-कल करते हुए बह रही थी। बीच में कई स्थानों पर बड़े-बड़े पत्थर जल के ऊपर निकले हुए थे। मैंने अपने सारे कपड़े नदी के किनारे निकाल दिये और एक ऊँचे पत्थर के ऊपर चढ़कर मैं नदी में कूद गया। मुझे तैरना आता था, अतः जैसे ही मैं नदी के पानी में गिरा, मैं तैरकर नदी के दूसरे किनारे पर चला गया।

“जीविताशा बलीयसी” जीवन की इच्छा बड़ी बलवान होती है, फिर

मैंने जाकर अपने कपड़े पहने और कुटी में वापस जाकर बैठ गया। मैंने अपने शरीर को नष्ट करने की कोशिश की, किन्तु मृत्यु नहीं हुई। मैंने पुनः सोचा कि शरीर के कारण जो असहनीय कष्ट हो रहा है, उसको सहना दुष्कर हो रहा है।

यह सोचकर कि यह शरीर भूख के कारण नष्ट हो जाये, मैं वहाँ बैठा रहा। मैं भोजन के लिये बाहर ही नहीं निकला। वह पूरा क्षेत्र पूर्णतयः निर्जन था। गंगा में गिरने के कारण शरीर बहुत ठंडा हो गया था। बार-बार शौच के लिये जाने की दर कम हो गयी। मैंने पूरी रात्रि गुजारी और भगवान की इच्छा के बारे में सोचने लगा। अगले दिन मैं कमरे में बैठा रहा और बाहर भी नहीं निकला, फिर भी एक सज्जन खीर लेकर आये। निश्चय ही मेरे लिये यह एक बड़ा हास्य था। मैंने सारी खीर तेजी से पी ली। वह एक बड़े सन्यासी थे, जो यहाँ से थोड़ी दूर पर रह रहे थे। मुझे पता नहीं, उन्हें मेरे बारे में कैसे पता लगा। मुझसे पूरे अधिकार से कहा, "यहाँ पर तुम्हारे रुकने का कोई मतलब नहीं है, यहाँ से थोड़ी दूर पर कुछ गाँव हैं। यदि तुम वहाँ जाओगे तो तुम्हें अपनी पसंद का भोजन और दूध मिल जायेगा। ऐसा कहकर उन्होंने गाँव की दिशा की ओर इशारा किया और चले गये।

खुशी के साथ उनकी बतायी दिशा की ओर चलकर एक छोटी सी धारा पार कर मैं गाँव पहुँच गया। वहाँ एक छोटा मन्दिर था। मैंने उसके बरामदे के एक भाग में अपना स्थान लिया। प्रतिदिन प्रातः 10-11 बजे मैं गाँव में भिक्षा मांगने निकलता। मैं तीन-चार घरों में जाता और आवश्यकतानुसार भोजन पाता। यहाँ चावल और दही मिलता था। उत्तराखण्ड निश्चय ही स्वर्ग है। साधु कहीं भी भोजन प्राप्त कर सकता है जब भी घर का कोई व्यक्ति नारायण हरि का शब्द सुनता, गृह स्वामी या स्वामिनि घर के बाहर आकर कुछ भोजन या अन्य वस्तुएँ भक्ति पूर्वक देते। मैं यहाँ कुछ दिन आराम से रहा। यहाँ स्थानीय लोग चावल को पूरा पकाने के आदी नहीं हैं। ये जो चावल पकाते और खाते हैं वह कमोवेश "कोज्जि कट्ट" (चावल के पेस्ट की गेंद और उस पर नारियल का चिपका बूरा, जो पानी में आधा उबला होता है) की तरह होता है। मैं चावल को अपने साथ लाता, मट्ठे के साथ मिलाता, जो हिस्सा कड़ा होता उसे फेंक देता और मुलायम हिस्सा खा लेता। अब मेरा शरीर मोटा होकर भरने लगा। मैं समझ गया कि यह टिशूज़ में पानी के तेजी से भरने के कारण हो रहा है (आयुर्वेद में इसे क्या कहते हैं, पता नहीं, केरल में यह तरल

पदार्थ का शरीर में असंतुलित होना कहलाता है)। अप्रैल-मई और विशु (मलयालम महीने मेष का पहला दिन समझा जाता है) भी यहाँ व्यतीत हो गया।

यह निर्णय लेकर कि यहाँ और अधिक ठहरना उपयुक्त नहीं है, मैं फिर से चल पड़ा। मैं पुल के पास एक स्थान पर आ गया। पुल पार करके मैं टेहरी की ओर जाने वाले रास्ते पर चला। जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ रहा था, मुझे अपने शरीर का बोझ प्रतिक्षण बढ़ता हुआ लग रहा था। मुझे अपने शरीर को नष्ट कर देना चाहिये, यह विचार मन में दृढ़तर होता जा रहा था। रास्ते में मुझे एक जंगल मिला, जिसमें मैं घुस गया। लकड़ी के कटे हुए टुकड़े वहाँ पड़े हुए थे। यह दोपहर का समय था, मैंने उन लकड़ी के टुकड़ों को जलाकर चिता बनाई। मैंने अपने सारे कपड़े उतारे और आग के चारों ओर लटका दिये। मैं मात्र एक धोती पहने था। मेरे पास पीतल का एक बर्तन था। मैं अग्नि पर एक तरफ बैठ गया और गंगा की ओर देखने लगा और भगवान का नाम तीव्रता से जपने लगा। माचिस की एक तीली जलाकर मैंने कपड़ों में आग लगा ली। आग तेजी से चारों ओर से लग गयी। जब अग्नि का ताप असहनीय हो गया, मैं चिता से कूद गया। मेरे पास जो एक-दो रूपये थे, वह भी चिता में भस्म हो गये। अब मेरे पास वह धोती थी, जो मेरी कमर पर लिपटी थी और मात्र पीतल का वह बर्तन था।

चिता के चारों ओर लगे कपड़े अभी पूर्णतयः जले नहीं थे किन्तु बिना कोई चिन्ता किये और बिना उनकी ओर या चिता की ओर देखे, मैं सड़क के किनारे आ गया। बिल्कुल पागलपन था। मेरे जानने वाले लोग मिल रहे थे, वह मुझे आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। मुझे तेज भूख लगी, मैं एक साधु के निवास पर पहुँचा, उसने मुझे प्रेम से भोजन दिया। मैंने अपना मार्ग फिर तय करना शुरू किया। शाम होते-होते मैं एक गाँव में पहुँच गया। मुझे खाना खाने की कोई इच्छा नहीं थी, किन्तु रात्रि मैं कहाँ और कैसे बिताऊँ? स्थानीय लोगों के लिये कपड़े उनकी जीवन रेखा है। वे एक रात्रि के लिये साधु को कपड़ा उधार देने के लिये इच्छुक नहीं होते हैं। सफाई क्या होती है, उनको यह भी नहीं मालूम था। प्रायः उनके कपड़े कम स्वच्छ होते हैं, फिर भी मैं परिस्थितिवश किसी से कपड़े माँगने के लिये मजबूर हो गया। किन्तु कौन मुझे देगा?

गाँव से थोड़ी दूर एक अच्छा सा मकान देखकर मैं वहाँ गया। वह एक क्रिश्चियन का घर था। घर और उसके चारों ओर सफाई थी। जैसे

ही मैं घर पहुँचा, घर के सभी सदस्यों ने मुझे घेर लिया। उन्हें अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान था। मैंने उन्हें अपनी आवश्यकता के बारे में बताया। उन्होंने खुशी के साथ एक कम्बल मुझे रात्रि के लिये दे दिया। मैं गाँव वापस आ गया और आराम से सोया। मन में यह विचार आया कि मैंने करीब 50 रुपये मूल्य के कपड़े नष्ट कर दिये, पर फिर यह सोचकर कि थोड़ा कष्ट ही सही, भगवान के आशीर्वाद से कम्बल मिल गया, मन प्रसन्न हुआ। अगले दिन मैंने उन्हें कम्बल वापस कर दिया। अगले दिन मैंने अपनी यात्रा शुरू की। पुनः दस्त आने शुरू हो गये। किसी प्रकार मैं टेहरी पहुँचा और सीधे अस्पताल गया। डा० पंडित वाचस्पति एम.बी.बी. एस. मुख्य चिकित्साधिकारी थे, जैसे ही मैंने उनसे बात की, वैसे ही उन्होंने मुझे अस्पताल में भर्ती कर लिया। वहाँ एक हाईस्कूल था और वहाँ के कुछ अध्यापक अस्पताल में नियमित रूप से आकर मुझे देखने आते थे। मेरी बीमारी अब धीरे-धीरे कम हो गयी। एक दिन मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बाबू गंगा प्रसाद जी से मिला। उन्होंने मुझे अपने घर पर तुरन्त बुलाया, अपने साथ ले जाकर पास में रुकने का इंतजाम किया। अच्छा खाना मिलने के कारण मेरा स्वास्थ्य ठीक होने लगा। मैं टेहरी में एक-दो महीने रुका हूँगा। मेरा प्रातः का समय, गंगा स्नान करने, जप, ध्यान और भिक्षा में, बाहर जाने या अन्य कार्यों में व्यतीत होता।

टेहरी में सेठ मुरलीधर के फार्म हाउस पर गया और कुछ दिन वहाँ रुका। वहाँ से मैं मसूरी पहुँचा। मेरी बीमारी पुनः उभर आयी। मैंने देहरादून की ओर प्रस्थान किया और वहाँ से रेलगाड़ी से हरिद्वार। हरिद्वार में श्री रामकृष्ण सेवा आश्रम गया। उस समय वहाँ "बड़े महाराज" श्री कल्याणानन्द जी थे और छोटे महाराज श्री निश्चलानन्द जी थे। उन दोनों लोगों को मेरे प्रति विशेष लगाव था। श्री निर्मलानन्द स्वामी जी वहाँ आये हुए थे। मुझे एक अलग कमरा दिया गया, तब मुझे वहाँ पता चला कि मेरी बीमारी क्या है। यह बवासीर (पाइल्स) थी। उन लोगों ने मुझे यह राय दी कि इसका आपरेशन (शल्य चिकित्सा) करवाया जाये। यह आराम से ठीक हो जायेगा। इसके लिये काशी जाने की आवश्यकता थी। मेरे पास एक भी पैसा नहीं था। मैं वहाँ कैसे जाऊँ?

एक हिन्दी भाषी साधु मेरे कमरे में आया। मेरी बीमारी का सारा विवरण समझने के बाद उसने मुझसे कहा, "मुझे वर्तमान चिकित्सा पद्धति में विश्वास नहीं है। सारी बीमारी भगवान के ध्यान और भजन से ठीक की जा सकती है। ध्यान और भजन करने का सर्वोत्तम स्थान वृन्दावन है।

तुम वहाँ जाकर प्रवास करो और भजन-पूजन करो", ऐसा कहकर उसने मुझे यात्रा के लिये 5 रुपये दिये। मैंने वृन्दावन जाने का निर्णय लिया। वहाँ पहुँचकर, मैं 2-3 दिन श्रीरामकृष्ण आश्रम में रहा। बवासीर कष्टप्रद बीमारी है। इसके कारण एक स्थान पर थोड़ी देर बैठना भी दुष्कर होता है। थोड़ी-थोड़ी देर पर शौच जाने को विवश करती है। कैसे कोई ऐसी अवस्था में भजन कर सकता है? अतः मैं सोचने लगा कि मुझे इस स्थान से कहीं ओर चलना चाहिये। बिना कोई सोच-विचार के मैं रेलवे स्टेशन आ गया। वहाँ पर कई लोग रेलगाड़ी पकड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे आगरा जा रहे हैं। मैंने भी तय किया कि मैं आगरा जाऊँगा। मैं सुबह आगरा पहुँच गया। यात्रा के दौरान लोगों से बातचीत में पता चला कि वहाँ एक अच्छा अस्पताल है। जैसे ही मैं ट्रेन से उतरा, मैंने अस्पताल के बारे में पता किया और वहाँ पहुँच गया। डाक्टरों ने मेरा परीक्षण किया और कहा कि क्या मैं शल्य चिकित्सा (सर्जरी) कराने का इच्छुक हूँ। मैंने तुरन्त हाँ कर दी और उन्होंने मुझे अस्पताल में भर्ती कर लिया।

अस्पताल में हर समय बहुत सारे रोगी रहते थे। चिकित्सक (डाक्टर) उन पर विशेष ध्यान दिया करते थे। वह अस्पताल एक योरपीय औरत द्वारा संचालित किया जा रहा था। यहाँ सभी रोगियों को सफेद कपड़े पहनने पड़ते थे। मैंने सन्यासी के काषाय वस्त्र पहन रखे थे। वह भद्र एवं दयालु स्त्री मेरे पास आयी और सफेद वस्त्र पहनने हेतु अनुरोध किया। जब मैंने उसे समझाया कि काषाय वस्त्र उतारना तथा सफेद वस्त्र पहनना सन्यास धर्म को तोड़ना है तो उसने मुझे काषाय वस्त्र पहने रहने की अनुमति दे दी, अतः मैं काषाय वस्त्र पहने रहा। उस भद्र स्त्री ने मुझे अस्पताल में रुकने के लिये सभी आवश्यक सुविधाएँ दीं। वहाँ यदा-कदा पानी भी बरसने लगा, किन्तु गर्मी में कोई कमी नहीं आयी। मुझे बरामदे में एक स्थान दिया गया।

यह भी एक तरह की तपस्या थी। मैंने अपना समय भगवान के स्मरण में बिताया, मेरी शल्य चिकित्सा की तिथि तय हो गयी। शल्यक्रिया (आपरेशन) के एक दिन पूर्व, शरीर के आवश्यक अंगों के बालों को हटाकर उन्होंने मुझे एक दिन अनीमा (एक ऐसी दवा, जिसे लेने के बाद पेट को साफ करने में मदद मिलती है) दिया गया, उससे मेरे पेट का सारा मल ठीक प्रकार से साफ हो गया। सामान्यतया रोगी को उस दिन दूध दिया जाता है किन्तु उसके विपरीत उन्होंने मुझे चावल और रसेदार सब्जी दी।

चूँकि मैं बहुत भूखा था, मैंने बहुत चाव से भोजन किया। चिकित्सकों (डाक्टर) को इस बारे में पता चल गया, फिर भी उन्होंने शल्यक्रिया (आपरेशन) करने का निर्णय लिया। करीब दस बजे आपरेशन के दिन उन्होंने मुझे एक बेन्च पर लिटाया और आपरेशन थियेटर ले गये। मुझे ऐसा लगा कि मुझे यम (मृत्यु देवता) के कमरे में ले जाया जा रहा है और जो सेवक आपरेशन थियेटर के आगे खड़े थे, वे यमदूत लग रहे थे। डाक्टर एक बंगाली सज्जन थे। कुछ चिकित्सक छात्र भी कमरे में थे। सारे कपड़े उतारने के बाद उन्होंने मुझे आरपेशन टेबिल पर लिटा दिया। उन्होंने मुझे कुछ सुंघाया, यह क्लोरोफार्म ही था। उन्होंने मुझसे गिनती गिनने को कहा, 1, 2, 3। मैंने शायद 4 या 5 तक गिना। कुछ करने के बाद वे मुझे मेरे पुराने स्थान को ले गये। जब मुझे होश आया, तो असहनीय दर्द हो रहा था। मेरे आसपास के रोगी मेरे मित्र और भक्त हो गये थे। वे मुझे पंखा झलने लगे। मैंने सभी कुछ साहसपूर्ण तरीके से सहन किया।

शाम होते-होते मुझे मल को निकालने की, असहनीय, तीव्र इच्छा हुई। मैं आराम से मल बाहर कर सका। जब भी मल बाहर निकलता तो डाक्टरों द्वारा लगायी गयी स्टिच टूट जाती। यह मेरे पहले दिन के खाना खाने का परिणाम था। डाक्टर आये और उन्होंने आवश्यक उपचार किये।

मैं अस्पताल में 20 दिन तक रुका। अब मैं करीब-करीब ठीक हो गया था। फिर अस्पताल की साध्वी संरक्षिका की अनुमति से मैं छुट्टी पा गया।

अब मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? मुझे भोजन करने की इच्छा हो रही थी किन्तु मेरे पास एक भी पैसा नहीं था। कुछ लोगों ने मुझसे बताया, कि आलू बाबा के नाम से विख्यात एक महात्मा यहाँ से थोड़ी दूर पर रहते हैं, पर वह किसी को अपने साथ रहने की अनुमति नहीं देते। फिर भी आप जाकर उनसे बात कर सकते हैं। शायद वे आपको एक दिन रहने की अनुमति दे दें। मैं यमुना नदी के किनारे 2-3 दिन तक किसी स्थान पर रुका। उस समय यमुना में बाढ़ आयी हुई थी। अच्छा दृश्य था, वहाँ बहुत से लोग एक लाइन में खड़े होकर ऊँचे-ऊँचे झंड़े लेकर नदी के किनारे पानी में हाथ मार-मारकर नाच-गा रहे थे। शाम को एक दिन मैं आलू बाबा के आश्रम गया। मैं उनसे मिला और अपनी स्थिति उन्हें बताई, उन्होंने अनुमति देते हुए मुझसे कहा, "जब तक इच्छा हो तब तक रहो।" यमुना के किनारे यह बिल्कुल वीरान स्थान था। यहाँ उन्होंने एक गुफा

बनायी थी। वे प्रतिदिन शाम को 5 बजे अध्यात्म पर चर्चा करते थे। नियमित रूप से कुछ सज्जन प्रतिदिन भक्तिपूर्वक वहाँ सुनने आते थे। वहाँ मैं भी उपस्थित रहता था। वहाँ भगवद् गीता और पंचदशी पर भी प्रवचन होते थे।

आयुः सत्त्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनम्

यह वह सात्विक भोजन है (उत्तम और सम्पूर्ण भोजन) जो बाबा लेते थे, मुझे भी यह भोजन खाने को मिलता था।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु

युक्त स्वप्ना व बोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

उनका जीवन भी उपरोक्त श्लोक पर पूरा खरा उतरता है। मैं यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रह रहा था। मुझे बवासीर के कष्ट से पूर्णतयः छुटकारा नहीं मिला था। वहाँ कुछ वैद्य भी आया करते थे, उनमें से किसी ने मुझे एक उपचार बताया। उस उपचार को करने के बाद मेरी समस्या पूर्णतयः समाप्त हो गयी। इसके बाद अभी तक बवासीर के कारण मुझे कष्ट नहीं हुआ।

इसी प्रकार मैंने वहाँ कई दिन बिताए। कुछ सज्जन जो बाबा के व्याख्यान को सुनने आते थे, मेरे प्रति भी विशेष आदर रखते थे। उनमें से एक ने मुझसे कहा, "क्या आपको कहीं जाने के लिए धन की आवश्यकता है? मैं आपको दूँगा"। यद्यपि मैं वृन्दावन जा चुका था किन्तु मैं इतना भाग्यशाली नहीं था कि कुछ समय आराम से आनन्दपूर्वक वहाँ बिता सकूँ। मेरी वृन्दावन जाने की इच्छा है, यह भी भगवान की इच्छा थी। उस सज्जन ने मुझे कुछ धन दिया।

ताजमहल, आगरा का मुख्य आकर्षण है। कोई भी इसके अन्दर विशेष शान्ति का अनुभव कर सकता है। क्या प्रेम दैविक कार्य नहीं है? केवल सुन्दर भवन ही नहीं, बल्कि प्रत्येक पौधा, झरना, फव्वारा, पत्थर, फूल भी प्रेम की घोषणा करते हैं। कोई भी यह स्थान जल्दी छोड़ने को तैयार नहीं हो सकता। मैं भी यहाँ काफी समय तक अपने आप में खोया रहा।

श्री आलू बाबा की अनुमति और आशीर्वाद लेकर मैं पुनः आगरा से वृन्दावन पहुँचा। वहाँ मैं किसी स्थान पर रुका था। कभी-कभी मैं आश्रम भी जाया करता था। मैंने वृन्दावन के सभी मुख्य-मुख्य स्थान देखे। मैं गोकुल भी गया। मुझे इस प्रकार घूमना पसन्द नहीं आ रहा था। मेरी हार्दिक इच्छा एक स्थान पर ठहर कर ध्यान और भजन करने की थी।

अन्ततः मैं नन्दगाँव गया। मैं वहाँ एक माह से अधिक रुका हूँगा। मैं एक स्थान यशोदा घाट पर रुका। यहाँ श्रीकृष्ण का विग्रह सुन्दरतम से भी अधिक सुन्दर (सौन्दर्योत्तरोपि सुन्दरतम) है। मैं प्रतिदिन मन्दिर जाकर प्रातः एवं सायं ध्यान किया करता था। अधिकतर लोग यहाँ वैरागी भक्त हैं।

यहाँ साधुओं के भी कई भक्ति सम्प्रदाय और मार्ग हैं। वैरागियों में वैष्णव, शैव्य, सीता राम और अन्य सम्प्रदाय हैं। वे काषाय वस्त्र नहीं पहनते। काषाय वस्त्र धारण करने वाले साधुओं के भी कई मार्ग हैं, उनमें से मुख्य 'दशनामी' जो आदि शंकर के भक्त हैं। इसी प्रकार अन्य कई पन्थ जैसे उदासी, कबीर पन्थी आदि-आदि। यहाँ कुछ स्थानों पर अधिकतर मालाधारी और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले साधु रहते हैं। अधिकतर समय, लोगों के घर पर कीर्तन, जप और भव्य दावतें, होती रहती थी। मैं भी उनमें से कुछ में जाया करता था।

मन्दिर में भगवान को दोपहर का भोजन प्रतिदिन अलग-अलग घरों से एक क्रम में आता था। भगवान को नैवेद्य चढ़ाने के बाद उस घर के सभी सदस्य और इष्ट मित्र एक निर्धारित स्थान पर बैठकर प्रसाद ग्रहण करते थे। कई बार मुझे भी प्रसाद का एक भाग प्राप्त होता। मैं सामान्यतः तालाब या सरोवर में स्नान करता था। मुझे फिर मलेरिया हो गया। मुझे स्थान परिवर्तन की आवश्यकता हुई। कानपुर होते हुए मैं उन्नाव पहुँचा। उन्नाव के सेशन न्यायाधीश श्री गंगा शंकर बहुत सज्जन थे और मुझे जानते थे। उनके यहाँ आराम से करीब एक सप्ताह रुकने के बाद उत्तरकाशी में रहने के विचार से मैं रेलगाड़ी द्वारा देहरादून पहुँचा। वहाँ से मैं "गुरुनानक" के अनुयायी एक प्रसिद्ध महन्त के मुख्यालय पर पहुँचा। जो भी वहाँ पहुँचता, वह बिना किसी जाति-पाति तथा धर्म के भेद के 'अन्नदानम्' भोजन प्राप्त करता। यह भवन ग्रामीण क्षेत्र में था जहाँ बहुत बड़ा फूलों का उपवन तथा छोटे-छोटे आवास बने थे, जो साधुओं को रहने के लिये मिल जाते थे। वहाँ मैंने कुछ दिन रहने का निर्णय किया। बहुत से लोगों से पता चला कि बहुत अधिक बर्फ पड़ने के कारण उत्तरकाशी को जाने वाला मार्ग बन्द हो गया और चलने लायक नहीं रह गया है। मेरे पास पर्याप्त कपड़े नहीं थे। अतः मैं उस उपवन में एक महीने से अधिक रहा। मैंने देहरादून के आसपास के कई दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया। उसके बाद मैं वहाँ से ऋषिकेश चला गया। मैं वहाँ कुछ दिन रुका।

ऋषिकेश से 2 मील (3 कि०मी०) दूर एक स्थान स्वर्ग आश्रम है। यह बहुत सुन्दर तथा शान्त स्थल है और यहाँ पर कई कुटी बनी हैं, यह साधुओं के रहने एवं ध्यान करने के लिये आदर्श स्थल है। मेरे गुरुभाई भी वहाँ रुके थे। अतः मैं ऋषिकेश से स्थान बदलकर वहाँ पहुँच गया और एक कुटी में रहने लगा। मुख्य अन्नक्षेत्र (भोज्य सामग्री स्थल) से प्रातः 10 बजे एक समय का काफी खाना मिल जाता था।

शाम के समय एक अन्य धर्मशाला से मुझे नाश्ता मिल जाता था। मुझे नदी के किनारे उपयोग के लिये एक कुटी मिल गयी। मैं वहाँ लगातार रहा और प्रतिदिन गंगास्नान तथा गंगादर्शन का आनन्द लेता रहा। यहाँ जमीन पर काफी घने जंगल हैं। जरा टहलते चले जाइये, यह बहुत ही सुविधाजनक स्थान है, जहाँ शाम को नदी का किनारा और जंगल के वातावरण का आनन्द एक साथ मिलता है। थोड़ा शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। यहाँ कई सज्जन सन्यासी अलग-अलग कुटी बनाकर रहते हैं। उनका साथ मुझे अलग से मिल जाता था। विख्यात श्री शिवानन्द स्वामी जी भी वहाँ रहते थे, मेरी उनसे भी जान-पहचान और मित्रता हो गई। वह मलाया (मलेशिया)-सिंगापुर में चिकित्सा करते थे। वहाँ से आकर एक साधारण साधु का जीवन व्यतीत करने के लिये वे यहाँ आये और स्वर्ग आश्रम में गंगाभिमुख एक कुटी में रहना शुरू कर दिया। जो भी हो, इसमें कोई संशय नहीं कि वह स्वभाव से बहुत कृपालु और दयावान थे। जन्म से यदि कोई व्यक्ति दूसरे के दुखों के प्रति सदाशयता रखता हो, वह अपने आध्यात्मिक जीवन को विकसित कर उच्च स्थिति प्राप्त करेगा। वह दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ वहाँ रह रहे थे और तपस्या कर रहे थे। इसके अतिरिक्त वह बीमार व्यक्तियों का उपचार करने और उन्हें यथासंभव आराम पहुँचाने में बहुत आनन्द का अनुभव करते थे। Feel, feel for the sick and poor, the down trodden and the destitute (महसूस करो, महसूस करो, बीमार, गरीब, बहुत निम्न स्तर पर रहने वाले तथा निर्धन व्यक्तियों का दुःख-दर्द)। इस प्रकार उनका दूसरों के प्रति सहानुभूति का स्वभाव था। उनके न तो ईर्ष्या, न दम्भ दिखाई देता। यदि यह बड़े गुण उनमें न होते तो ऐसा क्या था, जिसने उन्हें विश्व-विख्यात किया। मैंने भी उस महात्मा से कुछ ग्रहण करने की कोशिश की।

स्वर्गाश्रम में गुजारे समय ने मेरे जीवन को पूर्णता प्रदान की और मैं आनन्दित रहा। कभी-कभी साधु भोज दिया करते थे। भिक्षा के लिये मैं जहाँ जाया करता था, एक दिन जब पहुँचा, तो मुझे बताया गया कि यह

भोज का दिन है, भिक्षा देर में मिलेगी, अतः अपनी कुटी में न लौटकर पास के एक जंगल में चला गया और बैठकर ध्यान करने लगा। मैंने एक नये आनन्द का अनुभव किया "ईशावास्य इदम् सर्वम्" इस सत्य विचार का बीज मेरे मन में प्रस्फुटित होने लगा। सत्य के कारण जब इस प्रकार विचार संकल्पित होने लगता है तो प्रत्येक वस्तु में, पेड़-पौधों, लताओं में ईश्वर का वास दिखाई देता है "सर्वम् विष्णुमयम्" और यह असंभव हो जाता है कि पेड़ से एक पत्ती भी तोड़ी जाये। थोड़ी देर तक मैं इस विचार से ओत-प्रोत बैठा रहा। "यह वो क्षण था, जहाँ से मैंने अपने अध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया"। I felt, I am standing for election to the Lords Parliament. (मैंने अनुभव किया कि भगवान दरबार में मैं चयनित होने के लिये खड़ा हूँ)। मैंने स्वामी शिवानन्द जी से अपनी वार्ता के दौरान सब बताया।

मैंने जाकर भिक्षा प्राप्त की, अपने स्थान वापस आया, खाना खाया और आराम किया। उस दिन से मेरे मन में अरण्य (जंगल) में रहने की इच्छा बलवती होती गयी। स्वर्ग आश्रम के वह स्थान जहाँ आज गीता भवन और अन्य भवन बने हैं, वह सब अरण्य था। जब कभी भी मुझे अवसर मिलता, मैं अरण्य के अन्दर जाकर बैठ जाता। वहाँ जंगली हाथी भी दिखाई दे जाते थे। कई बार नदी के किनारे 3 या 4 हाथी आकर नहाते, पानी पीते और खेलते थे। करीब 20 दिन मैंने जंगल में अन्दर जाकर गंगा के किनारे रुक कर ध्यान किया और आनन्द लिया। भिक्षा के लिये अन्न क्षेत्र पर जाना पड़ता था। जंगल के उस निर्जन भव्य एकान्त में बैठकर उस दिव्यशान्ति के आनन्द की अनुभूति आज भी मेरे मन में उतनी ही ताजी है, जैसे तब थी। यदि कोई यह सोचता है कि भगवान की खोज में घर छोड़कर जंगल में भटकना पूर्णतयः अनावश्यक है क्योंकि भगवान तो सब जगह है, जैसे घर में, उसी प्रकार जंगल में, "तो फिर क्या है कोई ऐसा कर सके"।

जब मैं इस प्रकार जंगल में रह रहा था। एक अजनबी व्यक्ति एक दिन आकर मेरे चरणों पर गिर गया। वह एक बहुत कमजोर और असमर्थ अधेड़ उम्र का श्वेत वस्त्रधारी व्यक्ति था। उसने मेरे पास रुकने का जबरदस्त आग्रह किया। मैंने ध्यानपूर्वक उसकी सेवा शुरू की, जब भाग्य की नदी में किसी की सेवा करना लिखा हो तो उसे भी करा जाये। मैंने पूरे मनोयोग तथा पूरी क्षमता से उसकी सेवा की और मैंने गंगा से पानी लाकर जब उसका सिर धोया, तो उससे असीमित सुख और खुशी भी

मिली। अन्न क्षेत्र से पर्याप्त मात्रा में खाना मिलता था जिससे हम दोनों का भोजन आराम से होता था। उसके पास 5 रुपये थे जो उसने मुझे दे दिये। उस धन से मैंने एक कम्बल खरीदकर उसे दिया। करीब एक सप्ताह तक मैंने नियमित रूप से उसकी सेवा की। उसको बहुत सारी बीमारी थी। यद्यपि मैंने उससे कहा कि तुम्हें अस्पताल ले जाना आवश्यक है किन्तु उसने मेरी सलाह नहीं मानी। मैंने देखा कि मेरी सेवा से उसे कोई लाभ नहीं हो रहा और मेरी शुश्रूषा केवल बेकार जा रही, मैंने वह स्थान छोड़ दिया। जब मैं लौट कर आया तो मुझे पता चला कि मेरी अनुपस्थिति में कोई उसे अस्पताल ले गया और उसे भर्ती करा दिया।

एक दिन मैं स्वर्गाश्रम की कुटी से पैदल चलते हुए दूर निकल गया। आधा मील दूर एक स्कूल और मन्दिर है। यहाँ लोग साधुओं को भुना चना देते हैं। कुछ चना ग्रहण करने के बाद नदी के किनारे लगातार चलता हुआ मैं पुल के पास एक स्थान पर पहुँचा, जहाँ प्यारे लाल ब्रह्मचारी रहता था। वह थोड़े समय से साधु की तरह वहाँ रह रहा था। वहाँ एक पेड़ों का उपवन था। मैं ब्रह्मचारी से मिला और वार्तालाप की। चूँकि मेरे पास चना था अतः मुझे कोई अन्य भोजन की आवश्यकता नहीं थी और स्वर्ग आश्रम लौटने के लिये देर हो गयी थी। उसने थोड़ी दूर मुझे एक झोंपड़ी दिखाई, वहाँ मैंने आराम से रात्रि विश्राम किया। अगले दिन प्रातः 5 बजे वह उठ गया और उसने कहा, मैं ऋषिकेश जा रहा हूँ। तुम मेरे साथ चलो। तुम स्वर्ग आश्रम जल्दी पहुँच सकते हो। मुझे यह स्थान छोड़कर और कहीं जाने का मन नहीं कर रहा था। वह स्थान ब्रह्मपुरी बहुत सुरम्य था। मैंने कहा, "स्वामी जी आप जाइये, मेरी कोई इच्छा नहीं है", ऐसा कहकर मैं वहाँ बैठा रहा। मेरे वहाँ से न उठने से वह बहुत नाराज होकर चला गया। मैं प्रातः शौच आदि क्रिया से निवृत्त हुआ, और बिना कोई अन्य विचार किये बैठकर जप और ध्यान किया।

करीब 10 बजे 3-4 लोग मेरी कुटी पर आये, उनके साथ खाना आदि बनाने की सामग्री थी। वे यहाँ बैठकर खाना बनाने, खाने और कुछ आराम करके जाने की इच्छा से आये थे। उनके पास दूध भी था, जब उन्होंने मुझे देखा तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने पहले मुझे कुछ दूध पीने को दिया और फिर वे स्नान करने गये और वापस आकर भोजन बनाया। उन्होंने पहले मुझे भोजन दिया, उसके बाद स्वयं खाया। उन्होंने वहाँ आराम किया और करीब 4 बजे शाम को वापस चले गये। वे अपने साथ खाने की लाई गयी सामग्री का पूर्णतयः उपयोग नहीं कर पाये थे, अतः उन्होंने मुझसे कहा,

“आप चाहें तो इस सामग्री को प्रयोग कर सकते हैं”, ऐसा कहकर वे अप्रयुक्त चावल, आटा, दाल, नमक, घी, मिर्च आदि बहुत सी सामग्री देकर चले गये। भगवान की अत्यन्त कृपा मानते हुए मैंने उन सब चीजों को स्वीकार कर लिया। उस समय गर्मी का मौसम था। मैं शाम को गंगा के किनारे गया, स्नान किया, अपने स्थान वापस आकर भगवान के विचारों में खो गया। अब अन्धेरा होने लगा था। प्यारे लाल मेरे पास जल्दी से आया। मेरे पास चावल एवं अन्य खाद्य सामग्री देखकर आश्चर्य में पड़ गया। मैंने उसे सारी बातें बताईं और उसे वह सामग्री दे दी। ब्रह्मचारी बहुत खुश हुआ और उसने मेरे प्रति आदर दिखाया।

वहाँ मैं पूरे तीन दिन रुका, उसके बाद ब्रह्मचारी ने मुझे एक स्थान दिखाया। ऐसा माना जाता है कि यह वो स्थान है जहाँ स्वामी राम तीर्थ ने तपस्या की थी। अतः यह स्थान राम गुहा के नाम से जाना जाता था। राम गुहा एक प्रकार की गुहा या मण्डप है जो एक पत्थर से बनी थी। उसकी परिमित करीब 20 फुट (6 मीटर) ऊँची तथा 25 फीट (7½ मीटर) गहरी थी। नीचे का तल खाली था, ऊपर का समतल एक झुकी छत की तरह था। इस पत्थर पर कुछ बालू पड़ा था और कुछ गंगा के पानी से साफ हो चुका था। यहाँ से यदि कोई अच्छी खासी बालू साफ कर दे, तो कोई भी यहाँ गुफा में नीचे जमीन पर आराम से रह सकता है। खूब गर्मी में भी यहाँ कोई खास गर्मी का अनुभव नहीं होता और जाड़ों में बहुत ठंडक नहीं लगती। मैंने यहाँ रहने का निर्णय लिया। मैंने यहाँ से बालू निकालकर बाहर फेंकी। अब इसके अन्दर बैठने और लेटने की आवश्यक जगह बन गयी। उठते समय जरा ध्यान रखना पड़ता था, वरना सिर किसी पत्थर से टकरा सकता था।

ब्रह्मचारी ने मुझे यह भी बताया कि यदि काली कम्बली वाले के आयोजकों से बात की जाये तो वे साधु को 15 दिन की भी खाने की सामग्री आदि उपलब्ध करा देते हैं। अगले ही दिन मैं ऋषिकेश गया और धर्मशाला के महन्त एवं प्रबन्धक श्री मुनि राम को बताया तो वह सहमत हो गये। सबसे पहले मैं स्वर्ग आश्रम जाकर अपने कपड़े आदि राम गुहा ले आया। हर पंद्रहवें दिन पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिन भोजन सामग्री मिलती थी। पन्द्रह दिन की भोज्य सामग्री चावल, गेहूँ का आटा, घी, शक्कर आदि करीब 10 सेर होता था। काली कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र से ब्रह्मपुरी करीब 4-5 मील (6 - 8 कि०मी०) दूर था। खाद्य पदार्थ राम गुहा लाना मेरे लिये बोझ था।

मैं क्या करूँ?

“असाध्यमायुल्लतिल आश पेट्टाल असह्य मायुल्लोरु दुखामुन्डाम्”

असाध्य इच्छा पैदा होने से दुख और कष्ट स्वतः आयेंगे। अपने आपको सांत्वना देते हुए मन ही मन सोचा कि यह सब प्रयास पूरे कष्ट और दुखों के निवारण के लिये किये जा रहे हैं, इसे बड़ा बोझ नहीं मानता। मैं आधी भोज्य सामग्री राम गुहा और धर्मशाला के बीच में ले गया और उसे एक सुरक्षित स्थान पर रख दिया, फिर वापस आकर आधा फिर ले आया। इस प्रकार मैं पूरी भोजन सामग्री 1-2 दिन में गुहा तक ले गया। इसके बाद बिना किसी समस्या के मैंने सारा समय भगवान के ध्यान में बिताया। कभी-कभी कोई अतिथि आ जाता था, तो मैं अपनी पूर्ण क्षमता के साथ उसका भी सत्कार करता था।

श्री रामकृष्ण की जन्मतिथि द्वितीया (शुक्ल पक्ष की द्वितीया) को शिवरात्रि के बाद थी। यहाँ राम गुहा में मैंने अच्छे तरीके से पूजा की। इसके अतिरिक्त मिशन के गुरु भाई और अन्य जाने-पहचाने तथा व्यक्ति जैसे श्री शिवानन्द स्वामी जी, श्री तपोवन स्वामी जी, श्री गोविन्द गिरि स्वामी जी ने भी भाग लिया, उन्हें भी बहुत अच्छा लगा।

वसिष्ठ गुहा की ओर

बरसात में पूरी राम गुहा पानी में डूब जाती थी। जब बरसात होती थी तो मुझे यह स्थान छोड़ देना पड़ता था। जुलाई से अक्टूबर तक मैं स्वर्ग आश्रम में रहता था, जैसे कि पहले रहा करता था। अतः मैं स्वर्ग आश्रम आ गया। जब बरसात समाप्त हो जाती थी तो मैं फिर ब्रह्मपुरी चला जाता था। इस बार एक ब्रह्मचारी भी मेरे साथ रहने के लिये आया। यह लड़का तिरुविंताकूर से चलकर किसी प्रकार मुझसे स्वर्ग आश्रम में मिला। वह संस्कृत भी पढ़ने का इच्छुक था। मैंने उसे थोड़ा बहुत पढ़ाना शुरू किया। जब मैं ब्रह्मपुरी जाता तो यह मेरे साथ आता और रहता था। वह ऋषिकेश से मेरे लिये भोज्य पदार्थ लेकर आता। जब मैं ब्रह्मपुरी में इस प्रकार रह रहा था तो जंगल विभाग का एक कर्मचारी मुझसे मिलने आया करता था, उसने मुझे वसिष्ठ गुहा के बारे में बताया। उसने वसिष्ठ गुहा के बड़े गुण बखान किये और कहा कि वह तपस्या करने का एक उत्तम स्थान है और वहाँ पर कोई भी शान्ति से अपना समय बिना किसी अन्य स्थान जाये, बिता सकता है। केवल सुनकर ही मेरा मन वसिष्ठ गुहा की ओर आकर्षित हो गया और मैं वहाँ जाने का अवसर खोजने लगा।

अब जून आ गया था। 19 जून, 1928 को 10 बजे प्रातः मैंने अपना सारा सामान एक बोरे में भरा और बालू में गद्दा खोदकर बोरे को उसमें डालकर बालू से ढक दिया। मैंने लोगों से विचार-विमर्श किया और रास्ते की जानकारी प्राप्त की। क्या रास्ता है? कोई भी गंगा के दाहिने किनारे-किनारे चले। मेरे साथ जो बालक था उसका नाम माधवन था। माधवन में साहस की कमी नहीं थी। इस प्रकार के रास्ते में चलने का अभ्यास नहीं था और कई बार नदी में तैरना आवश्यक हो जाता था, फिर भी कठिनाई के साथ किसी प्रकार जब हम शिवपुरी पहुँचे, तब तक अन्धकार हो गया था। हम लोग नदी के किनारे रेत पर लेट गये। उसी समय 3-4 साधु उधर आ निकले, वे भी वसिष्ठ गुहा की ओर जा रहे थे। उनके पास भोजन सामग्री भी थी। वे भी बालू पर लेट गये। वे भी रास्ता नहीं जानते थे और किसी प्रकार कठिनाई से यहाँ तक पहुँचे थे। वसिष्ठ गुहा यहाँ से 4-5 मील दूर (6 - 8 कि०मी०) है। उन्होंने एक कुली लेने की सोची जो उस रास्ते के बारे में जानता हो। वे सुबह होते ही चल दिये और हम भी उनके साथ हो लिये। करीब 10 बजे प्रातः हम लोग वसिष्ठ गुहा पहुँच गये। मेरे मन में

बड़ा हर्ष हुआ। जय राम, जय राम, जय जय राम।

मैंने कभी इस तरह का स्थान नहीं देखा था। एक शान्त, पवित्र स्थान, गुहा के दाहिने किनारे माँ गंगा धीरे-धीरे बहती है, उसके आसपास कोई मकान नहीं है। उस समय मुख्य गुहा में कोई रहता था। मुख्य गुहा के बायीं ओर छोटी गुहा थी, वहाँ एक ब्रह्मचारी रह रहा था। पहले मैं मुख्य गुहा में गया और वहाँ रहने वाले से मिला। वह एक धनी-गृहस्थ था, हमें लगा कि वह साधुओं के प्रति उदासीन था। उसके बाद हम छोटी गुहा में रहने वाले ब्रह्मचारी से मिले। उसने हमें भोजन के लिये आमंत्रित किया। अन्य साधु जो हमारे साथ आये थे, वे अपने साथ खाने-पीने की सामग्री लेकर आये थे अतः वे अलग भोजन बनाने लगे।

हम लोगों ने स्नान, जप आदि किया और भक्तिपूर्वक ब्रह्मचारी ने जो भी भोजन हमें दिया, हम लोगों ने खाया और फिर आराम किया, अन्य साधुओं ने भी भोजन करके आराम किया।

उस स्थान ने मुझे बहुत ही आकर्षित किया। मेरा उस स्थान को छोड़ने का मन बिल्कुल नहीं हो रहा था। मेरी सभी चीजें ब्रह्मपुरी में थीं। यह दृढ़ निश्चय करके कि कुछ भी हो जाये, अगले वर्ष जब मैं यहाँ आऊँगा तो स्थायी रूप से यहाँ निवास करूँगा, हम ब्रह्मपुरी वापस चलने को तैयार हो गये। ब्रह्मचारी ने हमें जाने से रोका और प्रेम से आग्रह किया कि कल खाना खाने के बाद यहाँ से जाइये। हम लोगों ने स्वीकार किया, हम लोगों ने रात्रि नदी के किनारे रेत पर बिताई।

ब्रह्मचारी तुरन्त भिक्षा के लिये गाँव को चल दिया। निकटतम गाँव यहाँ से 3 मील (5 कि०मी०) दूर था। यहाँ ऊपर नीचे चढ़ाई-उतराई थी और मार्ग चलने लायक नहीं था। एक ओर इसकी साधुओं के प्रति कितनी भक्ति है और दूसरी ओर मुख्य गुहा में रहने वाले व्यक्ति की सोच कैसी है, को देखकर मैंने यह सब भगवान की इच्छा मानी।

अगले दिन ब्रह्मचारी ने हम लोगों को गंगा नदी के किनारे बैठाकर भोजन कराया। वह निश्चय ही बड़ा भोज था। खाना खाने के बाद, ब्रह्मचारी की अनुमति से हम लोगों ने वापस जाने की यात्रा शुरू की। अधिकारियों और कर्मचारियों की एक सर्वेक्षण टोली वहाँ थोड़ी दूर पर ही कैम्प (अस्थायी रूप से टेन्ट में रहना) कर रही थी। उनके पास एक चप्पुओं वाली नाव थी जो नदी के इस किनारे उनके प्रयोग के लिये बंधी हुई थी। यह सोचकर कि नदी के दूसरे किनारे से मार्ग अधिक सुविधाजनक होगा, हम लोग नाव से नदी के उस पार गये। यह 20 जून, 1928 था।

बहुत तेज बारिश हुई और हम सब पूर्णतयः भीग गये, किन्तु यह भी अच्छा लग रहा था। अगले दिन दोपहर को हम लोग ब्रह्मपुरी पहुँचे। सारी सामग्री गढ़े से निकालकर पुनः हम लोगों ने राम गुहा में रहना शुरू किया।

कुछ समय ऐसे ही व्यतीत हो गया। एक रात्रि हमने अपना भोजन समाप्त किया। यह करीब रात्रि के 11 बजे की बात है। मैं गंगा नदी के किनारे एक ऊँचे पत्थर पर बैठकर ध्यान कर रहा था। वह बालक राम गुहा के अन्दर गहरी नींद में सो रहा था। उसी समय एक अजीब सा शोर सुनाई दिया। तब मैंने देखा कि पानी तेजी से आवाज करता हुआ आ रहा है, जैसे कि हाथी भयंकर रूप से चिंघाड़ते हुए आ रहा हो। मैं उठा और नीचे की ओर दौड़कर लड़के को गुहा से उठाया। सभी सामग्री इकट्ठा करके, मैं जल्दी से दौड़ता हुआ प्यारेलाल की बाग की ओर भागा। तुरन्त ही गुहा पानी में डूब गयी। यदि हमने कुछ क्षण और देरी की होती, हम दोनों समाप्त हो गये होते, केवल हमारे नाम रह जाते।

हम उस बगिया में 2-3 दिन रहे। प्यारेलाल वहाँ नहीं था। मैसूर का एक युवक वहाँ रह रहा था। वह लड़का बहुत ही गुस्से वाला तथा तुनक मिजाज था। किसी बात पर दोनों युवकों, माधवन और उसके बीच में वाद-विवाद होने लगा और फिर झगड़ा हो गया। वहाँ बाग में बहुत से केले के पेड़-पौधे थे और उसमें धौत (गुच्छे) लगे थे। प्यारे लाल हमें कई बार केला खाने के लिए दिया करता था। ऐसा लगता है कि माधवन ने कुछ कच्चे केले सब्जी बनाने के लिये तोड़ लिये। जब मैसूर के युवक ने यह देखा तो वह गुस्से में माधवन के पास दौड़ता हुआ आया और गाली देकर थप्पड़ मार दिया। माधवन उसे जान से मारने लगा। मैंने माधवन को मना किया। मैंने उस मैसूर युवक से प्रेम से अनचीत की, साथ ही उसे खाने के लिये कुछ दिया।

उसी दिन मैंने वह स्थान छोड़ दिया और स्वर्गाश्रम आ गया। मैसूर वाला बालक डर कर कहीं और भाग गया। स्वर्गाश्रम से हम नीलकण्ठ महादेव के दर्शन करने गये। यह स्थान ऊँचाई पर है। यहाँ गर्मी में ज्यादा गरमी महसूस नहीं होती है। वहाँ ठहरने के लिये धर्मशालाएँ भी हैं। वहाँ दर्शन करने और 2-3 दिन रहने के बाद हम स्वर्गाश्रम लौट आये। हमने पूरी बरसात का मौसम स्वर्गाश्रम में बिताने का निर्णय लिया। शिवानन्द स्वामी जी पास में ही रहते थे। मैं, बड़े साधुओं के बीच प्रसन्नता पूर्वक समय बिता रहा था। बरसात के मौसम में यहाँ बहुत लोगों को बुखार हो

जाता था। स्वामी शिवानन्द जी बड़े प्रेम से इन सब का उपचार करते थे। मैं भी औरों की तरह उनके उपचार में रहा।

मैं बहुत व्याकुलता से बरसात के समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था। पहली ही दृष्टि में वसिष्ठ गुहा मेरे हृदय में बस चुकी थी। अक्टूबर 1929 में एक कम्बल तथा कुछ अन्य चीजें लेकर मैं अकेला वसिष्ठ गुहा के लिये चल दिया। शिवपुरी तक रहने के लिये कोई उपयुक्त स्थान नहीं था। मैं रात्रि में कहीं भी लेट जाऊँगा।

पुरमुकलल्लो गगनविशालम्, शय्या भूतलमेतु
लभिक्कुम्भक्षणम् अतुतान
सन्यासिकोरु भयमे इल्ला स्थिर चित्तनतान
ओम् तत्सत् ओम्।

"The sky thy roof, the grass thy bed and food what chants may bring (What fear has thy). Sanyasin are bold say : Om, Tatsat, Om. (आसमान जिसकी छत होगी, घास जिसका बिस्तर हो और खाना क्या हो सकता है। किस बात का डर, सन्यासी साहसी होते हैं। कहो, "ओम् तत्सत् ओम्")

अगले दिन सुबह से चल करके, मैं शिवा नदी के दाहिने किनारे पर शिवपुरी के पास स्थित एक गाँव पहुँचा। वहाँ कन्हैया नाम का एक ब्राह्मण रहता था। मैंने अपना सामान उसके पास रख दिया। स्नान करने के बाद मैंने प्रसन्नता पूर्वक उसके द्वारा दिया स्थानीय भोजन खाया। जब स्थानीय लोग किसी के पास कपड़े देखते हैं, तो वे निश्चय ही उससे मांगते हैं। मैंने उन्हें एक कम्बल भेंट किया। उन्होंने भी भेंट के बदले मुझे कपड़े दिये। थोड़ी देर आराम करने के बाद, मैंने अपने सामान में से आधा उसके पास रख दिया और बाकी सामान के साथ मैं वसिष्ठ गुहा चल दिया। शाम को 5 बजे मैं वसिष्ठ गुहा पहुँच गया। वहाँ होना सौभाग्य की बात है। मैं सीधे गुहा में चला गया। पिछले वर्ष जो व्यक्ति गुहा में था, अब भी मौजूद था। उसके साथ एक स्थानीय बालक भी सेवक के रूप में मौजूद था। उस कठिन यात्रा के कारण मैं बहुत थका हुआ था। मैं गुहा में घुस गया। उस व्यक्ति ने मेरी ओर देखा भी नहीं। जो भी हो, मैंने अपना सारा सामान रख दिया और मैं बैठ गया। मैंने उससे कहा, "मैं काफी दूर पैदल चलने के कारण थक गया हूँ। मैं बहुत भूखा और प्यासा हूँ क्या आप मुझे खाने की कुछ सामग्री दे सकते हैं? मैं स्वयं कुछ खाना बनाकर खा लूँगा। "यहाँ कुछ नहीं है" यह उसका तत्काल उत्तर था। कोई भी उसके

भोज्य सामग्री से भरे कनस्तर देख सकता था। मेरे पास एक या दो रूपये थे, मैंने फिर कहा "क्या यह चीजें गेहूँ का आटा और चावल नहीं हैं?" मैं कोई चीज भिक्षा में नहीं चाहता हूँ। यह पैसे ले लीजिये और मुझे कुछ खाद्य सामग्री दे दीजिये"।

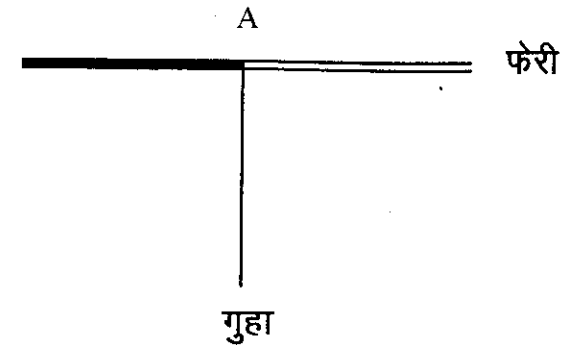
"पालम कुलुङ्गियालुम केलन कुलुङ्गकयिल्ला"

(यदि पुल को बहुत तेजी से हिला दिया जाय पर केलन जरा सा भी नहीं हिलेगा)

केलन एक साहसी व्यक्ति का नाम है। जो उसने किया वह या तो अति साहस का कार्य था या धूर्तता। मैं अचम्भे में था कि क्या किया जाय। यहाँ आसपास कोई मकान भी नहीं था। यह व्यक्ति बिल्कुल अजनबी है और रात्रि होने जा रही है। इस मुसीबत की घड़ी में, जैसा मैंने पहले किया था, भगवान के ऊपर निर्भर हुआ। *"योगक्षेमम् वहाम्यहम्"*। वह इस अवसर पर भी स्पष्ट हुआ। "महाराज मेरे साथ मेरे घर आये, वहाँ आप भोजन और आराम दोनों कर सकते हैं"। यह शब्द उस स्थानीय ब्राह्मण लड़के के थे, जो गुफा में रहने वाले का सेवक था। मैं बहुत खुश हुआ और उससे पूछा, "तुम्हारा घर कितनी दूर है"? उसने जवाब दिया, "बहुत पास है"। मैं उसके साथ चल दिया, वह मुझसे लगातार, यहीं दाहिनी ओर, वह पास में है, उसने मुझे पहाड़ों पर चढ़ाया उतराया और मुझे करीब 3 मील (5 किलोमीटर) ले गया, जब तक उसका घर नहीं आया।

उसका घर एक पहाड़ के ऊपर था। उसी के पास में एक झरना था। उसके पास कुछ खेत और जानवर थे। उसका एक बड़ा भाई था। वह भी बहुत दयालु स्वभाव का था। पहले उसने मुझे दूध दिया, रात्रि में उसने अच्छा भोजन कराया। मैं आराम से सो गया। मैंने अगला दिन भी वहाँ व्यतीत किया और अपनी थकान मिटाई। तीसरे दिन प्रातः जल्दी ही मैं वहाँ से चल दिया। रास्ते में एक घर में मुझे दूध पीने का आग्रह किया गया और दूध पीकर मैं उस रास्ते से वापस लौटा, जिस रास्ते मैं स्थानीय के घर गया था।

मैं इस स्थान पर इन अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों में कैसे रह सकता हूँ? मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि गुहा में रह पाना असम्भव है। वहाँ गुहा के पास एक नाव थी, जो नदी के उस पार ले जाने के लिये थी। मैंने निर्णय लिया कि मैं इस नाव से नदी पार करके, स्वर्गाश्रम चला जाऊँगा। एक तुलनात्मक स्थिति नाव के रूकने के स्थान और गुहा की स्थिति वर्णित है -



जब मैं बिन्दु A पर पहुँचा, किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे गुहा की ओर आकर्षित किया और मैं पुनः गुहा लौट गया। मैं उस बाबू के आस पास कभी नहीं गया। मैंने पहले भी बताया था कि गुहा के पास एक छोटी गुहा थी और उस समय उस छोटी गुहा में कोई नहीं था। मैं जाकर उसमें बैठ गया।

तब मैंने गंगा में जाकर स्नान किया। जप और ध्यान करके मैं उस छोटी गुहा में रहने लगा। यह करीब 12 बजे दोपहर होगा, बिल्ला, उस बाबू के सेवक ने एक पत्ते पर कुछ भोजन दिया। वह खाना खाकर और गंगा का पानी पीने के बाद मैं उस छोटी गुहा में लेटकर सो गया। मैंने निर्णय लिया कि कुछ भी हो जाय, मैं यहीं रहूँगा। अगले दिन प्रातःकाल स्नान आदि करके और अपने कपड़े लेकर मैं मुख्य गुहा में रहने वाले के पास गया और उनसे कहा, "ओ लालजी, मुझे नदी पार करके कपड़े लाने के लिये शिवपुरी जाना है। मैं कल वापस आऊँगा। तब तक यह कपड़े यहाँ रखे रहने दें। लाला जी ने जवाब दिया, "इन कपड़ों को यहाँ कहीं भी नहीं रखो, यदि कोई ले गया तो मुझसे मत पूछना"। इसके बाद भी मैंने कपड़ों की गठरी वहीं रख दी और बिना कुछ सोचे नदी पार की।

सागौन लकड़ी के लाखों लट्ठे के लट्ठे नदी के द्वारा कई पर्वतों से हरिद्वार भेजे जाते थे। उसके लिये बहुत से ठेकेदार और कुली होते थे। इनमें से कई कुली चमड़े के थैले (मशक) की सहायता से नदी में तैरते थे। इन लोगों को सिनाई वाला कहते हैं। मैंने गंगा नदी इनकी पीठ पर बैठकर पार की। नदी पुनः पार करके मैं कोट्टु गाँव पहुँचा। मैं उस घर

पर गया, जहाँ मैंने कपड़े छोड़ रखे थे। वहाँ आराम से खाना खाने के बाद मैंने वहाँ रात्रि गुजारी।

अगले दिन शिवा नदी पार करने के बाद, मैं उसी रास्ते से, जिससे पहले गया था, पुनः उसी से गुहा की ओर चल दिया। दोपहर होने के बाद मैं गुहा पहुँचा। मैंने मुख्य गुहा में जाकर अपने छोड़े हुए कपड़ों का गट्ठर समेटा। अपनी छोटी गुहा में वापस आया और पैर पसार कर आराम से लेट गया। इस समय मुझे भोजन कहाँ मिल सकेगा? फिर भी गंगा में पानी की कमी का भय नहीं था।

“हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।”

(15)

वसिष्ठ गुहा में स्थायित्व

दूसरे दिन प्रातः मैंने स्नानादि कर लिया। अब कहाँ जायें? सबसे पास का गाँव 3 मील (5 किलोमीटर) दूर था। और बिना जाये भिक्षा का प्रबन्ध करना असम्भव था। अतः गुरु जी का भक्ति पूर्वक स्मरण करते हुए मैं भिक्षा के लिये निकल चला। करीब 1½ मील (2½ किलोमीटर) पहाड़ और घाटी पार करने पर मैंने एक बड़ा वट वृक्ष देखा। उसके नीचे कुछ देर के लिये बैठकर मैंने शुद्ध शीतल मंद वायु का आनन्द लिया। उसके पास एक मकान था। उस मकान के पास जाकर मैंने “नारायण हरि” का उच्चारण किया और भिक्षा की प्रार्थना की। तुरन्त एक लम्बी, कृष्ण वर्ण, अर्धेड स्त्री घर से बाहर आयी और पूछा, “मैं क्या चाहता हूँ”। मैंने कहा, “मुझे भूख लग रही है, कृपया मुझे कुछ खाने को दें”। उस स्त्री का पति भी वहीं था, उनका एक 6-7 वर्ष का बच्चा भी था। वे प्रसन्नता पूर्वक कुछ चपाती तथा एक बर्तन में चावल ले आये। क्योंकि मैं भूखा था, अतः मैंने प्रसन्नता पूर्वक उसे खाया और थोड़ी देर वहाँ आराम किया।

गाँव अब भी एक मील (1½ किलोमीटर) दूर था। यदि मैं वहाँ जाता हूँ तो मैं वहाँ कुछ भिक्षा पा जाऊँगा। अतः मैं गाँव के लिये चल दिया। काफी ऊँची चढ़ाई थी। मैं अपना रास्ता भूल गया। यह कोई असामान्य बात नहीं है। मैंने अपने को घने जंगल में पाया। अपने आप बाहर निकलने के लिए वापिस लौटने के बजाय, मैं वहाँ बैठ गया और इस प्रकार करीब 1 घंटे बैठा रहा। मैं अपने आपको घर पर महसूस कर रहा था और उस जंगल में भगवान का ध्यान करने लगा। एक सज्जन वहाँ आये। उन्होंने मुझसे पूछा, “स्वामी जी, आप यहाँ कैसे आये? यह एक भयानक स्थान है, यहाँ बहुत से भालू और शेर हैं”। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं रास्ता भूल गया हूँ, तब वह सज्जन मेरे साथ-साथ चलकर मुझे सही मार्ग पर ले गये। मैं जिस गाँव जाना चाह रहा था, वहाँ पहुँच गया। उस समय तक 3 बज गये थे।

उस गाँव के अधिकतर वासी ब्राह्मण थे। खेती उनका मुख्य जीवन आधार था। वे लोग गाय और बैल भी रखते थे। मुख्यतः सभी कार्य स्त्रियों द्वारा ही किया जाता था। जैसे बड़े पेड़ों पर चढ़ना, जानवरों को खिलाने के लिये पत्तियाँ तोड़कर इकट्ठा करना, सिर पर लकड़ियों का गट्ठर लादकर शाम से पहले घर आना, जानवरों को चराना, दूध दुहना, दही

मथना, गेंहू का आटा पीसना इत्यादि। आदमी केवल जमीन को जोतते थे और अन्य सभी कार्य स्त्रियाँ करती थीं। उत्तराखण्ड में सामान्यतः लोग, चोर, नहीं थे। प्रत्येक आदमी अपने जीवन यापन के लिये कठिन मेहनत करता था। इतना ही नहीं किसी आश्रम एवम् घर के बाहर भी कोई बर्तन पड़ा हो, तो उसे कोई नहीं छूता था। किन्तु अब स्थिति खराब हो गयी है। जब कोई साधु इनके घर के दरवाजे पर आ जाता तो वे उसे जरूर कुछ न कुछ देते।

मैंने भिक्षा प्राप्त की। उस दिन मैंने लगभग 4 सेर भोजन सामग्री प्राप्त की। वह 10-15 दिन के लिये मुझे काफी थी। उस रात्रि मैं गाँव में ही रुका। अगले दिन मैं गुहा आ गया। स्नानादि करने के बाद मैंने चपाती और दाल बनाई और खाया। मैंने थोड़ा घी भी भिक्षा में प्राप्त किया था। जब मुख्य गुहा का रहने वाला यह समझ गया कि मेरा जाने का कोई विचार नहीं है, तो उसका व्यवहार मेरे प्रति बदलने लगा और वह मुझसे सौहार्द पूर्ण व्यवहार करने लगा।

वह एक अच्छा खाना बनाने वाला (रसोइया) था। यह कहा जाता है कि वह नल पाकम् की तरह। (जैसे राजा नल भोजन बनाते थे — यह किम्बदन्ति है, दमयन्ती के पति राजा नल भोजन बनाने में निपुण थे)। और जो भी वह बनाता था उसे तुरन्त तैयार करता था। कभी-कभी वह मुझे भोजन के लिये आमंत्रित भी करता था, किन्तु मैं उससे दूर रहता था। मेरी गुहा में यदि अग्नि बुझ जाये तो मैं उससे अग्नि लेना भी पसन्द नहीं करता था। मेरे पास कोई माचिस की डिब्बी नहीं थी और न ही आस-पास से मिलने की सम्भावना थी। एक बार मैं अग्नि लेने के लिये निकला तो मुझे सबसे पास घर के लिये 3 मील (5 किलोमीटर) दूर जाना पड़ा। जब मैं अग्नि लेने के लिये चढ़ते-उतरते गया और वापस आया तो इसमें 4 घंटे व्यतीत हो गये। जब मैं उस छोटी सी गुफा में बैठा, और पिछले 4 घंटे में व्यर्थ हुए समय के बारे में सोच रहा था, तो एक व्यक्ति नाव से गंगा पार करके मुझे देखने आया। उसके पास माचिस की एक डिब्बी थी, जो उसने मुझे दे दी। उसी दोपहर को ऋषिकेश से एक सज्जन ने 6 माचिस की डिब्बी मुझे भिजवाई। मैं वहाँ रहकर भगवान की कृपा का अनुभव कर रहा था।

अब मेष का महीना (अप्रैल-मई) आ गया, यह गेंहू काटने का मौसम है। यदि इस समय कोई गाँव-गाँव भिक्षा मांगने जाता है, तो उसे जितना आवश्यक हो, उतना गेंहू मिल सकता है। गेंहू पीसने की चक्की भी पास

में उपलब्ध है। किसी को बरसात में बाहर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। दाहिनी ओर गंगा है, सामने शिव नदी है और बांयी ओर पीछे की ओर बड़ा जंगल है। तो कोई निश्चय ही कहाँ जा सकता है? कुछ लोगों ने मुझे केवल अवगत ही नहीं कराया, आग्रह भी किया कि अभी से सभी आवश्यक भोज्य सामग्री इकट्ठा करके बरसात के लिये रख लीजिये। मुख्य गुहा के निवासी ने भी मुझसे कहा, “मैं स्वयं बरसात के मौसम के लिये आवश्यक भोज्य सामग्री तुम्हें दूँगा”। किन्तु मैंने उसका न्योता स्वीकार नहीं किया।

जब मैं असमंजस की स्थिति में था, तो एक जान-पहचान का व्यक्ति मेरे पास गुहा आया। वह बहुत स्नेही था और उसने अभी जवानी में कदम रखा था। उसका नाम नारायण गिरि था। वह वैरागी व्यक्ति था। जब मैं ब्रह्मपुरी में बेल के फल खाकर जीवन व्यतीत कर रहा था, तब वह मेरे लिये जब-तब मीठे-मीठे बेल लाता था। इस बार वह बहुत सारे बेल के फल लाया। मैं बहुत खुश था। अगले दिन प्रातः मैं भिक्षा के लिये जाने को तैयार हुआ। नारायण गिरि ने भी साथ जाने की इच्छा प्रकट की। वह महात्मा व्यक्ति था और मैं उसे कोई कष्ट नहीं देना चाह रहा था, किन्तु उसने साथ चलने का आग्रह किया तो मैंने उससे कहा कि यदि वह स्थायी रूप से मेरे पास रहना चाहता है, तो साथ में चले और उसने रहना स्वीकार भी कर लिया। यही सोचकर मैं 3-4 गाँव में उसके साथ भिक्षा मांगने गया। एक-दो दिन में हमने करीब एक मन गेंहू प्राप्त किया। मुझे इसे ढोने में बड़ा कष्ट हो रहा था, किन्तु वह सारी सामग्री ढोकर लाया और गेंहू पिसवाया और उसे ठीक प्रकार से कनस्तरो में भरा। मैंने सोचा था कि वह मेरे साथ गुहा में रुकेगा, किन्तु एक दिन जब मैं गंगा से स्नान करके लौट रहा था, मैंने उसे नहीं पाया। मैं समझ गया कि वह ऋषिकेश जा चुका था।

मैं गुहा में अकेले रहने लगा। कई बार महात्मा आ जाते थे। इसी प्रकार दिन व्यतीत होते रहे और बरसात आ गई। गंगा बढ़ने लगी। सिंह चिन्ह (अगस्त-सितम्बर) माह में श्री कृष्ण जन्माष्टमी भी व्यतीत हो गयी और बाढ़ कम होने लगी।

मेरे पास नमक समाप्त हो गया। मैं नमक के लिये गाँव में निकला। गाँव के बड़े लोग सुबह जल्दी खेत में या कृषि के अन्य कार्य के लिये निकल जाते हैं। उस समय घर में केवल बच्चे ही होते हैं। उन्हें घर में यह निर्देश दिया जाता है कि कोई भी कुछ मांगे, तुम कुछ भी नहीं दोगे। मैं एक गाँव में सुबह पहुँच गया। मैंने कुछ घरों में नमक मांगा। किसी ने

भी नमक नहीं दिया। वे लोग बड़ी मुश्किल से ऋषिकेश से नमक लेकर आते थे। अतः वे बच्चे भी नमक का मूल्य जानते थे। तब मैं गाँव में वट वृक्ष के पास वाले मकान में गया, जहाँ मैं पहले भिक्षा पाया करता था। यहाँ भी घर के बड़े-बुजुर्ग नहीं थे। केवल एक छोटा बच्चा था। जब मैंने उससे नमक मांगा तो उसने दो मुट्ठी नमक लाकर मुझे दिया। मैं बच्चे से बहुत खुश हुआ और उससे पूछा कि वह क्या चाहता है। बिना किसी हिचकिचाहट के उसने जवाब दिया, "मैं चाहता हूँ कि आप मुझे पढ़ायेँ"। यह कहकर कि मैं उसे पढ़ाऊँगा, मैं गुहा लौट आया।

मेरे लिये शीघ्र ऋषिकेश जाना जरूरी हो गया। वहाँ जाकर मैंने हिन्दी की प्राथमिक पुस्तक, एक स्लोट और कुछ कागज खरीदे और गुहा वापस आ गया। मैं उस लड़के के घर गया और उसे पुस्तक दिखाई। वह बहुत खुश हुआ। उस दिन से वह प्रतिदिन लगातार गुहा आता था। वह खाना खाकर आता होगा। मैं अपना भोजन 12 बजे खाता। उस समय भी मैं भोजन से कुछ भाग दे देता था। वह मेरे कुछ छोटे-मोटे काम कर देता था। जैसे गंगा से पानी लाना, बर्तन साफ करना इत्यादि। उसके पिता का नाम मूर्तिराम और बच्चे का नाम शिवानन्द था। उसके साथ उनके चाचा का लड़का मकुन्द भी आता। वह लड़का बहुत कुशाग्र था। मैं उसे सारे विषय पढ़ाया करता था। यद्यपि मैं सामान्य तरीके से सारे विषय पढ़ाया करता था, किन्तु गणित और भाषा पर विशेष ध्यान देता था।

मुख्य गुहा में रहने वाले लालाजी अपने निवास स्थान सहारनपुर चले गये। उस समय मैं मुख्य गुहा में रहने लगा। मुख्य गुहा में कोई दरवाजा या अन्य अवरोध नहीं लगा था। बिल्कुल खुला प्रवेश द्वार होने के कारण साँप अपनी इच्छा से अन्दर चले आते थे। मेरे लिये गुहा के बिल्कुल अन्दर के भाग में बैठकर ध्यान करना सुविधाजनक था। एक दिन ध्यान करने के मध्य जब मैंने अचानक अपनी आँख खोली तो मैंने एक बड़े साँप को अपनी तरफ रेंगते हुए आते देखा। मेरा बैठने का स्थान जमीन से कुछ ऊँचा था। जैसे ही मैंने साँप को देखा, मैंने बिना किसी डर के अपनी आँख बन्द कर ली और ध्यान करने लगा। उसके बाद साँप कहाँ गया, मैंने दुबारा नहीं देखा।

गर्मी में गंगा के किनारे उस शान्ति में बैठकर ध्यान करना बहुत ही आनन्द की अनुभूति कराता है। कभी-कभी अतिथि भी आते थे। जब-तब साधु ऋषिकेश से यहाँ पहुँचते तो, बहुत थक जाते थे। वे यहाँ कम से कम 2-3 दिन ठहरते थे।

कैसे प्रतिदिन जिन्दगी आगे बढ़ रही थी — एक ही उत्तर है, भगवान ही देखभाल कर रहे थे। काले कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र के लोगों से यदि प्रार्थना करता, तो वे प्रतिमाह भोज्य सामग्री भेज देते। किन्तु मैंने निर्णय लिया कि मैं भिक्षा के लिये वहाँ नहीं जाऊँगा।

यह निर्णय अकारण नहीं था। जब मैं ब्रह्मपुरी में रह रहा था, तो अमावस्या के दिन मैं भिक्षा के लिये वहाँ जाया करता था। वहाँ एक सेवक भिक्षा देता था। यदि कोई उनका व्यवहार और भाव भंगिमा देखे तो उसका मन भिक्षा लेने का ही न करे। मैं उनके पास जाकर खड़ा हो गया। कौन था जो मुझसे कुछ पूछता? मैंने उससे कहा कि, "यदि वह मुझे भिक्षा देना चाहता है तो कृपया दे दे, मुझे जल्दी जाना है"। उन्हें यह पसन्द नहीं आया। व्यंगात्मक तरीके से बोलते हुए उसने कहा, "हाँ तुम घोड़े की पीठ पर बैठकर आए हो? घोड़े को वहीं खड़े रहने दो"। मैंने उनसे भिक्षा तो ले ली, किन्तु मैंने तब निश्चय किया, "हे भगवान ऐसे नीच लोगों के पास मुझे भिक्षा के लिये न भेजे"। उस दिन से मैं एक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगा। इससे यह अच्छा है कि किसी मित्र से मांग लिया जाये, जो मुझसे सहानुभूति रखते हैं, ना कि ऐसे लोगों से।

मेरा कोई मित्र नहीं था और न उस क्षेत्र के लोगों से जान पहचान थी। एक बार मेरे स्वर्गाश्रम में रहने के दौरान जब मैं स्वामी शिवानन्द जी की कुटी में रह रहा था, एक वकील वहाँ आये और स्वामी जी ने उनसे मुझे मिलवाया। उन्होंने मेरे प्रति भी एक विशेष लगाव दिखाया। वे सीतापुर के रहने वाले थे।

उनका नाम पंडित श्री चांद नरायण जी था। बाद में ही मैं उनके गुण और स्वभाव के बारे में जान पाया। वह सीतापुर के बड़े वकीलों में थे। वह काश्मीरी ब्राह्मण थे। वह साधुओं को पसन्द करते थे और उनमें विशेष रुचि लेते थे। वह जीवन में साधुओं की सेवा को बहुत महत्व देते थे। वे बहुत से साधुओं को धन, कपड़े और भिक्षा देते थे। उनका दाहिना हाथ नहीं जानता था कि उसके बांये हाथ ने क्या किया। वह अपनी मानवता की सेवा और दान को सावधानी पूर्वक, ध्यान से करते थे। उनका सांसारिक जीवन एक कमल के पत्ते पर पानी की बूंद की तरह था। जब वे अपने जीवन के दिन प्रति-दिन के गृहस्थी के क्रिया-कलापों में संलग्न रहते, तब उसकी कोई भी समस्या उन्हें परेशान नहीं करती, न उनके पास फटकती। उन्हें मुझसे विशेष लगाव था और वे मुझे कई बार अपने घर सीतापुर ले गये। एक बार जब मैं ब्रह्मपुरी में था, मैंने कुछ धन की मांग

की तो उन्होंने तुरन्त धन भेजा और लिखा कि जब कभी भी आवश्यकता हो, तो मुझे बताएं। मुझे याद नहीं है, मैंने कभी उन्हें या अन्य को धन के लिये अक्सर कहा हो। "योग क्षेमम् वहाम्यहम्" के सूत्र पर मुझे पूर्ण विश्वास है और प्रतिदिन का जीवन-यापन उस पर ही निर्भर करता है। मैं वसिष्ठ गुहा में एक वर्ष तक रहा। उस दौरान मैं श्री राम कृष्ण आश्रम कनखल में श्री राम कृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द की जन्मतिथि पर भाग लेने जाया करता था।

(16) काश्मीर

मैं समझता हूँ कि यह वर्ष 1930 था, जब मुझे काश्मीर के तीर्थों की यात्रा करने की इच्छा हुई। मैं सीतापुर गया। वहाँ से रावलपिण्डी होते हुए श्रीनगर पहुँचा। काश्मीर को स्वर्ग के समान समझा जाता है। मैं काश्मीर में किसी को नहीं जानता था। क्या भगवान सर्वत्र विद्यमान नहीं हैं? मैं कुछ दिन नारायण मठ में रुका। मैंने काश्मीर के मुख्य स्थानों के बारे में जानकारी प्राप्त की, फिर एक-एक करके देखना शुरू किया। यहाँ के बागों में विशिष्ट सुन्दरता है। यहाँ नदियों में हाऊसबोट होते हैं, जहाँ कोई रह सकता है। उनमें जीवन निश्चय ही आरामदेह है। एक सज्जन मुझे हाऊसबोट ले गये और वहाँ एक में रहने का अवसर मिला। नाव वाला नाव को खे कर इधर-उधर ले जाता था। धनवान वास्तव में इसका आनन्द उठा सकते हैं। अप्रैल-मई से लेकर अक्टूबर-नवम्बर तक मैं कई स्थानों पर रहा। "जैसे मट्टम, अनन्तनाग, पहलगाम आदि स्थान। यहाँ हिन्दू बहुत कम हैं। 90 प्रतिशत आबादी मुसलमानों की है। कोई भी हिन्दू और मुसलमानों को एक ही मकान में रहते देख सकता है। मुसलमानों में क्रूरता या हृदय विहीनता की एक झलक भी दिखाई नहीं देती। पंडितों के नौकर-चाकर मुसलमान हैं। यहाँ के मुसलमान, किसान, नौकर, धोबी, नाई और गाय चराने वाले हैं — सही मायने में हिन्दुओं के सभी मेहनत के कार्य मुसलमानों द्वारा किये जाते हैं। वास्तव में हिन्दुओं का मुसलमानों के बिना रहना असम्भव है। यहाँ हिन्दुओं की रसोई के लिए पानी मुसलमान लेकर आते हैं और हिन्दुओं के यहाँ मृत्यु होने पर मृत शरीर को घर से बाहर ले जाने का कार्य भी करते हैं। काश्मीरी पंडित बहुत दयालु हैं, वे विद्वान साधुओं का बहुत आदर करते हैं। उन्होंने मुझे अपने घर में रखने में प्रसन्नता का अनुभव किया। मैं उनके घरों में बहुत दिन नहीं रुका। पहलगाम ऊँचाई पर एक स्थान है। लोग टेन्ट लगाकर वहाँ रहते हैं। मैंने भी एक टेन्ट लगाकर कुछ दिन वहाँ रहा।

यहाँ का मुख्य दर्शनीय स्थल अमरनाथ की गुफा है। गृहस्थ और साधु, दोनों बड़ी संख्या में गुहा के दर्शन करने आते हैं। दर्शन का मुख्य दिन श्रावण मास (अगस्त-सितम्बर) की पूर्णमासी होता है। आषाढ़ माह (जुलाई-अगस्त) में भी गुहा में दर्शन करना सम्भव होता है। इन दिनों में जब बर्फ पिघलती है तो पिघलती बर्फ से शिव-पार्वती की मूर्ति बनती है,

ऐसी मान्यता है। श्रीनगर से यहाँ पहुँचने में करीब एक सप्ताह का समय लगता है।

श्रीनगर से तीर्थ यात्रियों का जत्था साथ-साथ अमरनाथ जाता है। महाराजा की ओर से भी इन यात्रियों को थोड़ी-बहुत सुविधा मिलती है। रास्ते में कई स्थानों पर रुकने के बाद वे अमरनाथ पहुँचते हैं। पंचतरणी नदी में स्नान करने के बाद ही प्रत्येक व्यक्ति गुहा में जाता है। यहाँ पहुँचकर हर कोई आनन्द का अनुभव करके समस्याओं और परेशानियों से दूर हो जाता है। उन दिनों रास्ते में रुकने का कोई सुरक्षित स्थान नहीं था। कई बार बर्फ गिरने लगती थी, जिससे यात्रियों को बहुत कठिनाई होती तथा क्षति पहुँचती थी। आजकल रास्तों पर बहुत जगहों पर धर्मशाला बन गये हैं और तीर्थ यात्री अमरनाथ काफी आराम और सुरक्षा से पहुँच जाते हैं।

यह आषाढ़ का माह (जुलाई-अगस्त) था। मैं अमरनाथ का दर्शन करने गया। एक सज्जन मुझे वहाँ ले गये। मेरे पास अपने लिये एक टेण्ट था। अमरनाथ के दर्शन बहुत संतोषपूर्ण तरीके से करने के बाद, एक सुबह मैं श्रीनगर लौट आया।

नवम्बर-दिसम्बर में श्रीनगर में बहुत अधिक ठण्ड पड़ने लगती है, किन्तु उससे पहले मैं काश्मीर से चल दिया। कुछ दिन लाहौर में बिताने के बाद मैं ऋषिकेश आया और वहाँ से वसिष्ठ गुहा वापस आ गया।

तृतीय अध्याय

पुनः बद्रीनाथ की ओर

मैं 6-7 महीने गुहा से बाहर रहा। कुछ अच्छा सोचकर मैं गुहा से गया था। इसी बीच कुछ साधुओं ने गुहा में रहना शुरू कर दिया था। जब मैं ऋषिकेश आया तो मुझे इसकी जानकारी मिली। वास्तव में वे गुहा नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः एक शाम मैं गुहा में पहुँचा। मेरे साथ एक छात्र था, जिसका नाम अभिमन्यु था। जब मैं आया तो वहाँ 3-4 मजबूत कद-काठी वाले साधु थे। वे इस निश्चय के साथ वहाँ ठहरे हुए थे, कि कुछ भी हो जाये, वे वहाँ से नहीं जायेंगे। उनके दृष्टिकोण की परवाह किये बिना सामान्य तरीके से मैंने गुहा में प्रवेश किया और अपना सारा सामान गुहा के अन्दर रखकर मैं बाहर आकर बैठ गया। उन्होंने न तो मुझसे कुछ कहा, ना मेरे विरुद्ध कुछ किया।

वे मेरे साथ 2-3 दिन गुहा में रुके और फिर गुहा छोड़कर चल दिये। जाते समय मैंने उन्हें दस रुपये दिये।

शिव और मुकुन्द पहले की तरह मुझसे प्रतिदिन पढ़ने आने लगे। मैं पहले भी बता चुका हूँ कि यहाँ पर बहुत कम लोग पढ़े लिखे थे। ये बच्चे अब तक पढ़ने लिखने तथा गणित का जोड़-घटाना करने में काफी अच्छे हो चुके थे। यहाँ के लोगों ने जब बच्चों की पढ़ाई की प्रगति देखी तो अन्य गाँव वालों के मन में भी अपने बच्चों को पढ़ाने की इच्छा जागी। वे मेरे पास बातचीत करने आये। मुझे इतने बच्चों को पढ़ाने का समय मिल पायेगा? किसी प्रकार, कुछ अन्य बच्चों ने मुझसे पढ़ना शुरू कर दिया। एक दूसरे अवसर पर जब मैं लम्बे समय तक गुहा छोड़कर कहीं बाहर गया था, एक ब्रह्मचारी गुहा में आकर रहने लगा। लौटने पर मैं पास वाली छोटी गुहा में रहने लगा। फिर मैं जाकर भिंगनी — वर्तमान आनन्द काशी — में रुका। मैं वहाँ दो वर्ष तक पर्णकुटी बनाकर रहा। 6-7 बच्चे मुझसे प्रतिदिन पढ़ने आते थे। जाड़े के मौसम में यहाँ रहना बड़ा कठिन होता है। अतः मैं ब्रह्मपुरी में जिस गुहा में पहले रहता था, जाकर रहने लगा। ये बच्चे भी आकर साथ देते थे।

एक बार जब मैं श्री राम कृष्ण की जन्म तिथि में भाग लेने कनखल गया तो ये बच्चे मेरे साथ आये। जंगल में रहने वाले इन बच्चों से मिलकर वहाँ के सारे लोग बहुत खुश हुए। इन बच्चों को तुलसीदास रामायण के

कई भाग कंठस्थ थे। उन बच्चों ने वहाँ एक सभा में गाकर सुनाया। इतना कहना पर्याप्त है कि इन बच्चों की कुशलता देखकर प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य मिश्रित हर्ष हुआ।

यह वर्ष 1932 की बात है। ऋषिकेश से इस पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचने का मार्ग नहीं था। यह सारा क्षेत्र टेहरी के महाराजा के अधिकार में था। यह स्थान टेहरी-गढ़वाल राज्य के अन्तर्गत आता था। उस समय पंडित चक्रधर राजा के मंत्री थे। वह बहुत ही वीर और साहसी व्यक्ति थे। उनके आग्रह पर महाराजा ने ऋषिकेश से कीर्तिनगर तक एक वाहन चलाने योग्य मार्ग बनवाया। किसी मार्ग के निर्माण के लिये सबसे पहला कार्य सड़क का सर्वेक्षण होता है। राजा के अधिकारियों द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार यह मार्ग वर्तमान सड़क से 3 मील (5 किलोमीटर) दूर लोरसी गाँव से निकलता। इस सर्वेक्षण के अनुसार उस गाँव के सभी घरों को तोड़कर हटाना आवश्यक था। गाँव वालों ने अपनी दुःख भरी गाथा मुझे सुनाई। जब एक बार मैं ऋषिकेश गया, तो यह बात मैंने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बाबू गंगा प्रसाद को बताई, जो इस काम के लिये वहाँ आया करते थे। उन्होंने सलाह दी कि मैं सीधा दीवान पंडित चक्रधर से मिलूँ, जो इस गाँव में जल्दी ही आने वाले हैं।

एक अंधेरी रात्रि में गुहा के सबसे अन्दर वाले भाग में बैठकर मैं भगवान की सोच में डूबा था। यह करीब 9 बजा होगा, एक ओवरसियर, जो मुझे जानता था, दौड़ता हुआ गुहा के अन्दर आया और मुझे बताया कि दीवान साहिब अपने अनुचरों के साथ आ गये हैं। मैंने उसे वापस भेजा और यह निवेदन किया कि वे जहाँ हैं, वहाँ रहें। यह एक विशेष दृश्य था, जब मैं कुछ क्षण बाद गुहा के बाहर आया, दीवान साहिब और उनके अनुचर बाहर बैठे थे। जैसे ही उन्होंने मुझे देखा, उन्होंने खड़े होकर मुझे नमस्कार किया और कहा, "स्वामी जी, हम सब आपके दरवाजे पर आये हुए हैं, मेरी बहुत मदद होगी यदि आप मुझे यहाँ कहीं आराम करने की स्वीकृति दे दें। यह कहते हुए कि यहीं आराम कर सकते हैं, मैं दीवान साहिब और मुख्य अभियन्ता को गुहा के अन्दर ले आया और वहाँ बैठाया। मैंने उनकी बातचीत से यह निष्कर्ष निकाला कि उनके पास खाने को कुछ नहीं है। वे रास्ते में बड़ी कठिनाई के बाद यहाँ थक कर आये हैं। जब से मैं गुहा में रहने लगा था, कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि मुझसे कोई मिलने आया हो और बिना भोजन के चला गया हो। भगवान की कृपा से मेरे पास 2 टिन गेहूँ का आटा और अन्य भोज्य सामग्री थी। मेरे पास बड़ी

मात्रा में टपिओका (लकड़ी कन्द) की जड़ थी, जो एक साधु ने खेती करके प्राप्त की थी, उसे स्वर्गाश्रम के साधु कृष्णानन्द ने मुझे भेजी थी। यह केरल में बहुत मात्रा में होती है। मैंने वह सारा सामान स्वयं दीवान साहिब के सेवकों को दे दिया और कुछ ही देर में उन्होंने चपाती, दाल और सब्जी बना ली। प्रत्येक व्यक्ति तृप्त था। उन्होंने टपिओका की सब्जी की तारीफ भी की।

दीवान साहिब और मुख्य अभियन्ता गुहा के अन्दर सोये। दीवान साहिब ने औपचारिकतावश कहा कि वे मेरे बहुत ऋणी हैं। "हम स्वामी जी के लिये एक बड़ा आश्रम बनवायेंगे। यदि कल सुबह मुख्य अभियन्ता को जगह दिखा दी जाये तो हम आगे की कार्यवाही शुरू कर सकते हैं"। दीवान साहिब ने ऐसा मुझसे कहा। यद्यपि मुझे बड़े भवन की कोई इच्छा नहीं थी और मुझे यह गुहा अपने लिये काफी लगती थी, किन्तु मैंने दीवान से "हाँ, हाँ" कहा। अगले ही दिन स्थान का चयन करने के लिये सुबह-सुबह एक इंजीनियर और एक सहायक को मेरे पास भेजा गया। हम स्थान चयन करने के लिये भिंगनी तक जा पहुँचे, जहाँ मैं गुहा में आने से पहले रुका था।

अभियन्ता (इन्जीनियर) को मेरे प्रति श्रद्धा एवम् स्नेह था। रास्ते में उसने मुझसे कहा, "स्वामी जी, यह दीवान बहुत तिकड़मी आदमी है, उसकी योजना है कि वह गुहा आपसे हथिया ले"। मैं भी सब कुछ समझ गया। दीवान ने पूछा कि क्या स्थान का चयन किया जा चुका है। मैंने कहा, "यह बाद में देखा जा सकता है"। अतः दीवान अपने सेवकों के साथ गाँव वालों की कठिनाई सुनने लोरसी गाँव चला गया।

उस रात्रि को जब वे गुहा में आये थे, उन्होंने सड़क निर्माण के बारे में मुझसे पूछा था और मैंने दीवान को सारी बातें सच-सच बताई थी। यदि सड़क गाँव के बीच से निकाली जाती है तो गाँव वालों को बहुत कष्ट और नुकसान होगा। मैंने विशेष रूप से जोर देकर कहा उनकी स्थिति समुद्र में फँके गये मनुष्यों की तरह होगी।

दीवान ने गाँव का निरीक्षण किया और लोगों को सांत्वना दी। तीसरे दिन सुबह वह एक डोली में बैठकर मेरी गुहा में आ गया। उसके साथ डोली को उठाने वाले सेवकों के अतिरिक्त कोई नहीं था। मैं उसके पास पहुँच कर बात करने लगा। उसने मुझसे कहा, "यदि आपको कोई स्थान पसन्द आया हो तो मैं वहाँ एक अच्छे भवन निर्माण के लिये सीधे आदेश दे दूँगा"। यह कहकर "आइये गुहा के अन्दर आकर बात करते हैं"। मैं

गुहा में अन्दर आकर बैठ गया। मैंने बिना किसी डर और हिचक कहा, "ओ, दीवान साहब, आपकी असली इच्छा क्या है ? हम लोग भ्रमण करने वाले लोग हैं और कहीं भी खुशी से रह सकते हैं, यदि आपको गुहा को लेने का मन है तो तुम सच-सच बता दो। मैं इसी क्षण गुहा छोड़ने के लिये तैयार हूँ।

मेरे ये कड़े शब्द सुनकर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा। हे, हे, हे, आप ऐसा कैसे सोच सकते हैं, आश्चर्य कितना आश्चर्य! ऐसा बुदबुदाता हुआ वह नरेन्द्र नगर को चल दिया।

चाहे कुछ भी हुआ हो, चक्रधर ने लोरसी गाँव से सड़क बनाने का निर्णय छोड़ दिया। गंगा नदी के किनारे सड़क निर्माण का सर्वेक्षण करने के लिये पंडित कुलानन्द को नियोजित किया गया। उसके कार्य में सहयोग करने के लिये जितहन्त नाम का एक ठेकेदार था। आज लोग इस सड़क से बड़ी संख्या में बद्रीनाथ की तीर्थ यात्रा के लिये जाते हैं और बहती गंगा नदी के दृश्य को देखकर सुख और आनन्द उठाते हैं।

मोटर चलाने योग्य सड़क बन जाने के कारण, गुहा और उसके आस-पास का क्षेत्र लोगों के लिये अज्ञात नहीं रहा। अब लोगों को सब जानकारी होने लगी। अब लोग वसिष्ठ गुहा का नाम सुनते तो उसे देखने की इच्छा करते। वर्ष 1933 तक गुहा के ऊपर तक सड़क बन गयी। एक दोपहर करीब 2 बजे टेहरी के महाराज अपने लाव-लश्कर के साथ वहाँ आये। वे वार्ता करके मुझसे परिचित हुए। बाद में वह यहाँ कई बार अपनी रानी के साथ आये। उस वर्ष कानपुर से एक सज्जन भी आये। वे एक टेण्ट डालकर यहाँ एक-दो दिन रहे। जब वे जाने लगे तो उन्होंने कुछ धन भी चढ़ाया।

अब मेरे मन में बद्रीनाथ जाने की इच्छा बलवती हुई। बहुत दिन पहले से मेरे मन में बद्रीनाथ जाकर, कुछ दिनों वहाँ रुककर भजन और पूजा करने की इच्छा, अब पूर्ण होने वाली थी। शिव और मुकुन्द अब परचून की दूकान चलाने लगे थे। मैंने इस कार्य के लिये कुछ धन से सहायता भी की।

एक दिन, मुकुन्द को साथ लेकर, मैंने बद्रीनाथ की यात्रा शुरू की। मेरे पास कुछ पैसे भी थे। यदि कोई समुचित कपड़े लेकर बद्रीनाथ नहीं जाये तो ठण्ड में उसे कष्ट होगा। मैं इस पवित्र स्थान पर कुछ महीने रहने के लिये जा रहा था। गुहा से मैं पैदल चल दिया। उस रात्रि में मालकुण्ड में रुका। अगले दिन मैं मौनीचट्टी के इस ओर पहुँच गया। वहाँ पर पार

जाने के लिए एक अस्थायी झूले वाला पुल था। उसे पार करके, व्यास चट्टी, देवप्रयाग और श्रीनगर पार करते हुए रुद्रप्रयाग पहुँचा। इस बीच मुकुन्द को बुखार हो गया। वह अपने साथ बोझ भी नहीं लेकर चल सकता था। मैं रास्ते में उसको बोझा ढोने में मदद करता था। कई बार मैं यह सोचता था कि मैंने मुकुन्द को लाकर बड़ी गलती की। मैं रुद्रप्रयाग में एक धर्मशाला में एक-दो दिन रुक गया। उसे दवाएँ दी गयीं। जब वह ठीक हो गया तो बद्रीनाथ की यात्रा पुनः प्रारम्भ की गयी। हमारे बोझ को अपने साथ लेकर चलने के लिये मैंने एक कुली ले लिया। उस समय यहाँ तीर्थ यात्रा का मौसम था। तीर्थयात्री रुद्रप्रयाग से सीधे केदारनाथ जाते थे। मैं पहले ही केदार-महेश्वर की यात्रा सम्पन्न कर चुका था, अतः मैंने अपनी वर्तमान यात्रा से उसे अलग कर दिया था। मेरे मन में मात्र एक विचार था कि मैं किसी प्रकार बद्रीनाथ जाऊँ।

रुद्र प्रयाग से कर्णप्रयाग पार करके मैं नन्द प्रयाग, चम्मोली, लालसंगा, पिपलकोटी, जोशीमठ, विष्णुप्रयाग, पाण्डुकेश्वर, हनुमान चट्टी इत्यादि होकर एक शाम को पुनः बद्रीनाथ पहुँच गया। पण्डा के घर में सारी सामग्री रखकर स्नान किया और भगवान के दर्शन करने के बाद खिचड़ी बनाकर खाया गया। हम लोगों ने वहाँ रात्रि विश्राम किया।

अगले दिन नियमित रूप से रहने के लिये मैंने स्थान देखना शुरू किया। मैंने सोचा कि अलकनन्दा के दूसरी ओर अकेली खाली पड़ी कुटी में रहा जाय। मैं वहाँ गया। मैं अपनी जान पहचान के स्वामी परमानन्द जी से मिला। उनकी सहायता से मैं एक पास वाली कुटी में रहने लगा। मैंने मुकुन्द को किसी के साथ वापस भेज दिया। अब मैं पूर्णतया स्वतन्त्र था।

मैं प्रातः तप्त कुण्ड में स्नान करता और मन्दिर जाकर भगवान के दर्शन करता। सबको ज्ञात है कि मन्दिर के अन्दर पूजा कराने वाले पुजारी नम्बूदरि ब्राह्मण होता है। मन्दिर के गर्भगृह के बाहर आकर वे पुरुष-सूक्त, गीता, सहस्रनाम, उपनिषद आदि का उच्च स्वर में पाठ करते थे। मैं भी उनके साथ पारायण में हिस्सा लेता था।

काली कम्बली वाले के अन्न क्षेत्र से कोई भी प्रतिदिन भिक्षा प्राप्त कर सकता था। भिक्षा लेकर उसका कुछ हिस्सा मैं सायं के लिये रखता था। ऐसे ही दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। मुझे जुकाम बुखार हो गया। पास में ही अस्पताल था। मैं वहाँ गया और दवाएँ लेने लगा, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। एक रात्रि मैंने सपने में एक वैद्य को देखा। मैंने देखा कि सपने में कोई मुझसे कह रहा है कि वैद्य के उपचार से फायदा होगा। वही

वैद्य अगले दिन मेरी कुटी के सामने आ गया। उसे पहचान कर मैंने अपनी बीमारी की पूरी बातें उसे बताई। जब मैं उससे दवाएँ लेने लगा, मैं ठीक हो गया। यह बताना आवश्यक है कि उस बीमारी के दौरान स्वामी श्री परमानन्द जी ने मुझे हर सम्भव सहायता प्रदान की।

गुरु पूर्णिमा आने वाली थी। आषाढ़ की पूर्णमासी को गुरु पूर्णिमा मनायी जाती है। एक दिन मैंने मानवता के मार्गदर्शक व्यास देव की पूजा की। इसके कारण आज के दिन शिष्य अपने गुरु, ज्ञानदाता या मार्गदर्शक की पूजा करते हैं। आदि शंकराचार्य ने बद्रीनाथ में विग्रह की स्थापना की थी। इस मन्दिर की पूजा सम्पन्न कराने वाले रावल साहब उन्हें अपना मार्गदर्शक मानते हैं और इस दिन उनकी पूजा करते हैं। आदिशंकराचार्य के अनुयायी दशनामी सन्यासी भी उनकी पूजा करते हैं। सभी सन्यासियों की पूजा किया जाना सम्भव नहीं होता, अतः 3-4 सन्यासी पूजा के लिये चयनित किये जाते हैं। उस दिन पूजा के लिये मुझे भी आमंत्रित किया गया।

पूजा के लिये रावल साहिब स्वयं गर्भगृह से पूजा स्थल आये। पूजा के लिये उपयुक्त समझे जाने वाले सन्यासियों के पैर धोने के बाद वे आदर के साथ अर्घ्य पादय देकर उन सन्यासियों की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं। उस दिन से 4 माह तक उन सन्यासियों के खान-पान व अन्य सभी व्यय की व्यवस्था मन्दिर की ओर से की जाती है। उस दिन से रावल साहब उन्हें मार्गदर्शक मान लेते हैं। मुझे भी भिक्षा मांगने के लिये अन्न क्षेत्र नहीं जाना पड़ा।

मैंने बद्रीनाथ पुरी में मलयालम के मांह चिङ्गम (अगस्त-सितम्बर) तक भगवान के दर्शन करते हुए आनन्द से व्यतीत किये। जन्माष्टमी आने वाली थी। उस दिन मन्दिर में विशेष पूजा व अन्य कार्यक्रम किये जाते हैं। मैंने उन सब को देखा और भाग भी लिया। उसके तुरन्त बाद मैंने एक कुली किया। अपना सामान लेकर वसिष्ठ गुहा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में हनुमान चट्टी से थोड़ी दूर एक स्थान आदि-बद्री है। वहाँ भी केरल के लोगों द्वारा पूजा की जाती है। मैं वहाँ एक सप्ताह रुका और फिर मैं लालसंग पहुँचा। वहाँ से मार्ग बदल कर पहाड़ों के मार्ग से कुली के साथ मैं दोपहर को एक गाँव में पहुँचा। भूख और प्यास से बेहाल था। मैंने गाँव के लोगों से कुछ खाने व पीने के लिये मांगा। मेरे पास कुछ धन भी था। मैंने उनके सामने धन की थैली खोल दी और कहा, "कृपया जितना धन चाहिये ले लो और मुझे कुछ खाने-पीने के लिये दो"। वे हिले नहीं,

मेरे बार-बार प्रार्थना करने के बाद उन्होंने पीने के लिये न तो मुझे पानी दिया और न मट्ठा दिया। जब मैंने उनमें से एक को छड़ी से धमकाना शुरू किया तो गाँव के सभी लोग चारों ओर से खाने पीने की विभिन्न सामग्री ले आये। वे बड़ी मात्रा में दूध, दही, फल आदि लेकर रखने लगे और वहाँ भोज्य सामग्री का एक बड़ा ढेर लगा दिया। मैं तो थोड़ी ही मात्रा में दूध और दही चाहता था। मैंने जो कुछ खाया था, उसके पैसे देने लगा, किन्तु मेरे बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने धन स्वीकार नहीं किया। वहाँ कुछ देर आराम करने के बाद मैंने कुली के साथ अपनी आगे की यात्रा शुरू की और शाम तक मैं लोरसी गाँव पहुँच गया। वहाँ शिव और मुकुन्द खड़े हुए थे। अगले दिन सुबह हम गुहा की ओर चल दिये और गुहा जा पहुँचे। पूर्ण शान्ति (शान्तम् प्रशान्तम्)

(18)
स्नेह बन्धन और गुरु भक्ति

गुरोरधि पदमे मनश्चेन्न लग्नं

ततः किम्, ततः किम्, ततः किम् ततः किम्

(यदि किसी के पास समृद्धि, सम्पन्नता और ऐश्वर्य है, किन्तु उसके पास गुरु के चरण कमलों की भक्ति नहीं है, तो यह सब व्यर्थ है।)

मेरे मन में यह दृढ़ विश्वास है कि मार्गदर्शक (गुरु) की कृपा के प्रभाव से असम्भव दिखाई देने वाले कार्य भी बिना प्रयास के सम्भव हो जाते हैं। मैं यह बार-बार दुहराना चाहूँगा कि श्री तुलसी महाराज (स्वामी निर्मलानन्द जी) ने जीवन के प्रारम्भिक काल (बचपन से) से प्रयास करके मुझे मनुष्य बना दिया। यद्यपि अब यह शरीर लम्बे समय से गुरु जी से दूर है, किन्तु अब भी मेरा मन और आत्मा स्वामी जी के समीप निरन्तर रहती है। उनसे कभी दूर नहीं रही। ऐसा नहीं है कि मेरे मन में स्वामी जी को शारीरिक रूप से देखने की इच्छा नहीं थी। जन्म भूमि के प्रति मेरे प्रेम ने, मेरे मन को कई बार आकर्षित किया, किन्तु जब कभी भी कोई विचार और भाव मेरे मन में उठते, गुहा में जाते ही सारे विचार और भाव स्वतः समाप्त हो जाते। कुछ प्रेमी जनों के पत्र भी मुझे जन्मभूमि की ओर आकर्षित करते थे। तिरुवल्ला आश्रम में मेरे साथ रहने वाले श्री वागीश्वरानन्द स्वामी जी मुझे पत्र लिखते रहते थे। मुझे उनका एक पत्र प्राप्त हुआ, उसमें लिखा था, "यदि आप यहाँ नहीं आयेंगे तो हम गुहा के लिये चल देंगे"। उनके हृदय में, मेरे प्रति प्रेम का यह सागर देखकर मैं इतना पत्थर दिल नहीं था कि मैं अपने को रोक पाता। जब कभी भी ऐसे प्रेम भरे पत्र मिलते, मेरे मन में अपनी जन्म भूमि जाने की इच्छा बलवती होती जाती। दूसरी ओर मेरे मन में गुहा छोड़ने का साहस नहीं होता। फिर भी किसी प्रकार से मैंने एक जवाबी पत्र तिरुवल्ला के लिये पोस्ट किया। उस पत्र में मैंने गुहा से जाने की तिथि तथा अन्य विवरण लिखा। पत्र डाकखाने में डालने के बाद, मुझे गुहा छोड़ने का पश्चाताप हुआ, किन्तु मैं पत्र की इच्छा को व्यर्थ नहीं करना चाहता था। अन्ततः मैंने गुहा से जाने का निर्णय लिया।

गुहा से ऋषिकेश, ऋषिकेश से दिल्ली फिर सीतापुर, वहाँ से वृन्दावन और एक माह खुशी से वृन्दावन रहने के बाद मैं कानपुर चल दिया। कानपुर से मैं कलकत्ता पहुँचा और वहाँ से मैं बैलूर मठ पहुँच गया।

बैलूर मठ में मुझे सन्यास की दीक्षा देने वाले महापुरुष महाराज अब शरीर त्याग कर चुके थे। वर्तमान में श्री सुधीर महाराज मुख्य प्रबन्धक थे। वे भी मुझसे बहुत स्नेह करते थे। बैलूर मठ में 3-4 दिन रहने के बाद मैं पुरी के श्री रामकृष्ण आश्रम पहुँचा। वहाँ आश्रम से जगन्नाथ पुरी गया और कुछ दिन रुककर भगवान के दर्शन का आनन्द लिया। वहाँ से मद्रास के आश्रम पहुँचा। मैंने अभी तक श्री निर्मलानन्द स्वामी जी को अपनी यात्रा के बारे में नहीं बताया था। स्वामी जी स्थायी रूप से बँगलोर के आश्रम में रहा करते थे, किन्तु किन्हीं कारणोंवश, बँगलोर आश्रम छोड़कर वे आजकल केरल में ओट्टप्पालम् के आश्रम में रह रहे थे, जो उनकी प्रेरणा से निर्मित किया जा रहा था। मुझे इस बारे में पता चला। वास्तव में मेरी यात्रा का मुख्य उद्देश्य उस पवित्र आत्मा (स्वामी जी) के दर्शन करना था। मैंने मद्रास से स्वामी जी को पत्र लिखा। मद्रास आश्रम के तत्कालीन प्रेसीडेण्ट स्वामी शाश्वतानन्द जी थे। मेरे मद्रास का प्रवास सुखमय रहा।

मैं मद्रास से रेलगाड़ी में चढ़ा। अगले दिन मैं 8 बजे प्रातः ओट्टप्पालम् रेलवे स्टेशन पहुँच गया। करीब 9 बजे कुछ भेंट के साथ ओट्टप्पालम् आश्रम पहुँचा। स्वामी जी बागीचे में कुछ कार्य में व्यस्त थे। मैंने स्वामी जी को कुछ दूर से देखा। उनके पास धीरे से पहुँचकर मैं उनके पैरों में गिर पड़ा। मुझे अपने साथ लेकर स्वामी जी आश्रम के बरामदे में बैठ गये। उन्होंने मेरे बारे में बहुत सी जानकारी प्राप्त की। "यदि तुम मुझे पहले से स्टेशन पहुँचने का समय बता देते तो मैं तुम्हें लिवाने के लिये किसी को रेलवे स्टेशन भेज देता"। उनकी इस प्रेम भरी बातों से मेरा हृदय भर उठा। स्वामी जी के निर्देश से मैंने जाकर चाय और अन्य चीजें ली। अब मलयालम का चिङ्गम माह (अगस्त-सितम्बर) आ गया था। पानी अब भी बरस रहा था और भारतपुजा नदी में मिट्टी मिला पानी बहुत तेजी से बह रहा था। इस आश्रम के मुख्य प्रबन्धक श्री सुखानन्द स्वामी जी थे। मैंने अपनी लायी सारी भेंट उन्हें दे दी। कुछ देर बाद मैं भारतपुजा नदी में गया। स्नान करके कपड़े धोये। आश्रम में रुके हुए श्री रामानन्द स्वामी जी भी मेरे साथ नदी में स्नान करने आये। ब्रह्मचारी दामोदरन, श्री-कान्तानन्द स्वामी जी, मुरहरानन्द स्वामी जी, अमलानन्द स्वामी जी और अन्य भी आश्रम में ठहरे थे। दोपहर का भोजन करने के बाद मैंने आराम किया। मैं भी आश्रम के विभिन्न कार्यों में संलग्न हो गया।

सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्

अब इसके बाद मैं क्या लिखूँ, एक अजीब उहापोह की स्थिति थी। अतः मैंने इस स्थिति में लिखना छोड़ दिया। 6-7 महीने इसी प्रकार व्यतीत हो गये।

“सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्, सत्यम् अप्रियम् ना ब्रूयात्”

सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये।

सत्य बोलना चाहिये और जिससे वार्ता कर रहे हो उससे प्रिय बोलना चाहिये। यदि कोई बात पूर्ण सत्य हो और फिर भी अप्रिय हो, तो जहाँ तक हो सके वार्ताकार से नहीं बोलनी चाहिये। अच्छा हो कि चुप रहा जाय। यह निश्चय ही एक आदर्श नीतिवाक्य है।

मेरे द्वारा लिखी पाण्डुलिपि को कुछ मान्य व्यक्तियों ने श्रद्धापूर्वक पढ़ा। इन मान्यों के स्नेह भरे आग्रह एवम् लगातार कहे जाने पर, अष्टमी रोहणी के पवित्र दिन मैंने अपनी आत्मकथा को पुनः लिखना शुरू किया।

स्वामी जी की इच्छा के अनुसार मैं ओट्टप्पालम आश्रम में कुछ दिन रुका और जिन कार्यों में सहयोग कर सकता था, किया। मैं पहले भी कह चुका हूँ स्वामी जी स्थायी रूप से बैंगलोर आश्रम में रहते थे और मुझे भी उनके साथ उस आश्रम में कुछ समय रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ यह विशेष रूप से बताना चाहूँगा कि स्वामी जी की तात्त्विक श्रद्धा के परिणाम स्वरूप, एक पत्थरीले जमीन का टुकड़ा, एक सुन्दर फलों के बागीचे, आम के बाग, गौशाला आदि से भरा पुरा आदर्श आश्रम बन गया। किन्तु किसी अज्ञात कारण से स्वामी जी बैंगलोर आश्रम में न रह करके तिरुवनन्तपुरम के श्रीरामकृष्ण आश्रम में चले गये। बाद में स्वामी जी ओट्टप्पालम में श्री रामकृष्ण नगर के श्री राम कृष्ण आश्रम में रहने लगे।

ओट्टप्पालम आश्रम के चारों ओर कई ब्राह्मण परिवार रहते थे। ब्राह्मण समाज ने अन्यायपूर्ण तरीके से उन्हें अपनी बिरादरी से निकाल दिया था। इस कारण वे बड़ी दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने सपरिवार स्वामी जी के चरणों में शरण ली। स्वामी जी ने उनके जीवन को उठाने के लिये अपना समय लगाया।

हमारे समाज और देश का भविष्य और उत्थान हमारे युवक, युवतियों पर निर्भर करता है। स्वामी जी ब्राह्मण के लड़कों और लड़कियों के विकास के लिये सही और वास्तविक प्रयास के लिये प्राणपण मेहनत किया करते। वे, उन्हें शिक्षा देते और उनको शारीरिक प्रशिक्षण, ज्ञान प्राप्त करने के तरीके, ध्यान और भजन आदि सिखाते थे, ताकि वे अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुणों को विकसित कर सकें। अतीव गम्भीर स्वामी जी छोटे बच्चों के साथ बच्चे बनकर व्यवहार किया करते।

यहाँ भी स्वामी जी 2-3 घण्टे शारीरिक श्रम किया करते थे। स्वामी जी के आश्रमवासी शिष्य भी कड़ी मेहनत किये बिना नहीं रह सकते थे। मैं भी स्वामी जी के पास जाकर कभी-कभी उनके कार्य में भाग लेता था। किन्तु जब मैं उस जमीन पर बिना जूता-चप्पल पहने खड़ा रहता, तो मेरे पैरों में दर्द होने लगता था। स्वामी जी को यह बात पहले पता नहीं थी। बाद में स्वामी जी कई बार कहा करते “Bhaktam, wants some other work, some literary work (भक्त कुछ अलग काम करना चाहता है। कुछ पढ़ने-लिखने का कार्य)। यह कार्य भक्त का नहीं है, इसको साहित्य में ही अभिरुचि है।

“जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” * मेरी जन्मभूमि देखने की इच्छा बलवती हो गयी। मैंने स्वामी जी को यह बात बताई और उनका आशीर्वाद लेकर मैं एक दिन तिरुवल्ला की ओर चल दिया। एर्नाकुलम पहुँचने के बाद मैं दो-तीन दिन Poor Home (गरीबों के घर) में रहा और फिर आलप्पुजा पहुँचा।

यह गरीबों का घर कोच्चि के महाराज द्वारा स्थापित कराया गया था। आदमी और औरत जिनका कोई भी पालनेवाला/देखभाल करने वाला नहीं था, वे यहाँ रहा करते थे। उनको रहने के अलावा भोजन तथा कपड़े भी मिलते थे। कोचीन की सरकार ने इस संस्थान का प्रबन्ध श्री रामकृष्ण आश्रम को सौंप रखा था। कुछ स्वामी जी इस Poor Home संस्थान (गरीबों का घर) की व्यवस्था को देखा करते थे। वहाँ मौजूद उन लोगों का मित्रवत् व्यवहार मिला।

आलप्पुजा में भी एक श्री रामकृष्ण आश्रम है। मैं वहाँ 2-3 दिन रुका। यह स्थान स्वामी जी को वहाँ के प्रसिद्ध वकील श्री पी.जी. गोविन्द पिल्लई ने गुरु दक्षिणा में दिया था। यहाँ पर कई लोग स्वामी जी के भक्त थे।

*जननी और जन्मभूमि दोनों स्वर्ग से बड़ी हैं।

वकील श्रीकृष्ण पिल्लइ स्वामी जी के महत्वपूर्ण शिष्यों में एक थे। एक और, श्री गोविन्द पिल्लइ बड़े तीक्ष्ण बुद्धि के व्यक्ति थे और मुझमें विशेष रुचि थी। वे उस समय आलप्पुजा के जिला न्यायालय में कर्मचारी थे। वे लोग मुझे अम्बलप्पुजा के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण मन्दिर ले गये (करीब 11 मील या 18 किलोमीटर अम्बलप्पुजा से)। अष्टमी रोहणी आने वाली थी। पाल पायसम् “खीर” पूरे केरल में प्रसिद्ध है। पायसम् (खीर) का सेवन करके और भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करके मैं अष्टमी रोहणी तक वहाँ रुका।

अगले दिन मैं छोटी नाव में तिरुवल्ला के लिये चल पड़ा। रास्ते में मैं रामनकर में उतरा। मैं नारकत्तर तुम्बयिल कुरुप्प के घर पहुँचा। यह स्वामी सुखानन्द जी का पूर्व आश्रम था। मैं उनकी वृद्ध माँ से मिला। अपने कुछ मित्रों की सेवाओं को स्वीकार करके मैं चङ्गनाशशेरी के लिये नाव से रवाना हुआ और 3 बजे दोपहर को चङ्गनाशशेरी पहुँच गया। वहाँ से बस के द्वारा मैं तिरुवल्ला के नये आश्रम के पास पहुँचा। वहाँ से एक-दो मिनट पैदल चलकर मैं आश्रम पहुँच गया।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(20)

जन्म भूमि

जब मैं आश्रम पहुँचा तो केवल श्री वागीश्वरानन्द स्वामी जी और ब्रह्मचारी वहाँ थे। उस समय करीब सायं के 5 बजे थे। जिस क्षण मैंने आश्रम में कदम रखा वागीश्वरानन्द स्वामी जी बहुत खुश हुए और उन्होंने श्रद्धा और स्नेह से मेरे साथ व्यवहार किया। मैंने भी अम्बलप्पुजा के श्रीकृष्ण मन्दिर से प्रसाद के रूप में लाये उन्नियप्पम् (पकवान) और पाल—पायसम् (खीर), उन्हें भेंट किये। संक्षेप में उन्हें अपना अनुभव बताते हुए मैंने स्नान कर, ध्यान और पूजा की। मैंने शाम की पूजा, दीप आराधना (आरती) पूर्णकर रात्रि में भोजन किया। उसके बाद श्री रामकृष्ण का ध्यान करते हुए मैं निद्रा देवी की गोद में सो गया।

मैं इस आश्रम के सम्बन्ध में कुछ बताना चाहता हूँ। मैं पहले वर्णित कर चुका हूँ कि मैं तिरुवल्ला के आश्रम के निर्माण के समय से ही रह रहा था। उन दिनों भी स्वामी जी नियमित रूप से प्रतिवर्ष आते थे। यह स्थान बहुत छोटा था, इसलिये मैं स्वामी जी को यहाँ रहने पर हो रही असुविधा का अनुभव कर विचार करता रहता था। इस कमी को दूर करने के लिये मैं एक उपयुक्त एवम् बड़े खुले स्थल में भवन निर्माण के प्रयत्न में लगा रहता था। भगवान की कृपा से श्री वेलियत्तु कुरुप्पु ने अपनी जमीन आश्रम को दान करके उसकी रजिस्ट्री कराकर दी। मैंने स्वामी जी को इस स्थान को दिखाया। ऊँचा स्थान, नदी का सामीप्य, पास में एक बड़ी राजकीय सड़क, एक निर्जन शान्त स्थान — वहाँ वह सब कुछ था, जो एक आश्रम के लिये उपयुक्त था। स्वामी जी भी प्रसन्न हो गये।

मेरे मन में यह विचार अन्दर तक पैठ गया था कि किसी भी प्रकार से एक अच्छा सुविधाजनक भवन का निर्माण हो जाये, किन्तु मैं अपनी इच्छाओं को कोई ठोस रूप नहीं दे सका, क्योंकि शीघ्र ही तिरुवल्ला छोड़कर मैं कोयिलाण्डी आश्रम चला गया था। इतना कहना पर्याप्त है कि किसी प्रकार आश्रम के लिये एक अच्छे भवन का निर्माण हुआ। यह सब स्वामी जी का आशीर्वाद था। मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि यह निर्माण कार्य वागीश्वरानन्द स्वामी जी और निर्विकारानन्द स्वामी जी के विशेष प्रयास और रुचि का परिणाम है। अगले दिन मैं आश्रम में ही रुका। बहुत से लोग, जो मुझे जानते थे, मुझसे मिलने आये। सर्वप्रथम मैं तिरुवल्ला

मन्दिर गया और श्री बल्लभ जी के दर्शन किये। मुझे एक वट वृक्ष से विशेष लगाव था, उसको प्रणाम करके मैं उसके नीचे बैठ गया। उस वृक्ष के नीचे बने सीमेन्ट के चबूतरे पर बैठकर मैंने भजन-कीर्तन का आनन्द उठाया। बाद में मैं रात्रि में, श्री वागीश्वरानन्द जी के साथ आश्रम आया और आराम किया।

अगले दिन मैं अपने जन्म स्थल (गृह) गया। मैंने अपने आस-पास के क्षेत्र की पैदल यात्रा की और मुख्य-मुख्य लोगों का आतिथ्य ग्रहण किया। इस प्रकार 3-4 दिन तिरुवल्ला के आश्रम में बिताए।

पुल्लाटु में कुछ लोगों को मुझसे मिलने की इच्छा थी। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति वैद्य नारायणप्पनिकर थे। एक बार वे परिवार के साथ कार में आये और मुझे पुल्लाटु ले गये। वागीश्वरानन्द स्वामी जी भी मेरे साथ थे। हम लोग 2-3 दिन रुके। एक सांयकाल हम लोग आरन्मुला मन्दिर गये और दर्शन किये। वागीश्वरानन्द जी की इच्छा पर मैं चेङ्गन्नूर की ओर चला गया। वहाँ नदी के किनारे एक खूबसूरत भवन में 2-3 दिन रहा। वहाँ से मैं तिरुवल्ला आ गया। तिरुवल्ला से वागीश्वरानन्द स्वामी जी के साथ चेङ्गन्नूर गये। वहाँ से मैं हरिप्पाट्ट के लिये अकेले चल पड़ा।

हरिप्पाट्ट का आश्रम मेरा एकदम प्रिय स्थान है। इस आश्रम की पवित्रता श्री महाराज के चरण कमल पड़ने के कारण और भी बढ़ गयी थी। यहीं मुझे मंत्र दीक्षा मिली थी। चेल्लपा स्वामी जी, चितसुखानन्द स्वामी जी और चितप्रभासानन्द स्वामी जी मेरे आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ 3-4 दिन आराम से व्यतीत करने के बाद मैं मुट्टम् और कायंकुलम् के आश्रमों में गया। उस समय चितसुखानन्द स्वामी जी भी मेरे साथ थे। कायंकुलम् से हम अदूर पहुँचे। श्री शंकरवल्लिल परमेश्वरम् पिल्लइ वहाँ मुंसिफ थे। अदूर में राम कृष्ण आश्रम है, किन्तु मैं पिल्लइ के घर रुका था। वहाँ से मैं कोल्लम, शास्ताकोट्टा और अन्य स्थान गया। अन्त में एक शाम मैं तिरुवनन्तपुरम में "प्रबुद्ध केरलम्" के कार्यालय गया। निरञ्जनानन्द स्वामी जी और अन्य तब वहाँ ठहरे हुए थे। वहाँ एक दो दिन ठहरने के बाद डा० तम्पी मुझे वट्टियूर कावु आश्रम (तिरुवनन्तपुरम) ले गये। वहाँ पर भी कुछ स्वामी जी रह रहे थे। उस आश्रम के मुख्य प्रबन्धक स्वामी निर्विकारानन्द जी थे। श्री पद्मनाभन तम्पी जो पुलिस अधीक्षक थे, ने हमारे स्वामी जी (श्री निर्मलानन्द जी) से सन्यास लिया था और वे भी वहीं ठहरे हुए थे। श्री ओजस्वानन्द स्वामी जी, श्री सच्चिदानन्द स्वामी जी और श्री अमलानन्द स्वामी जी भी वहीं ठहरे थे। मैं वहाँ केवल एक-दो

दिन रुका। वहाँ रुक कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, क्योंकि इस आश्रम का शिलान्यास प्रेसीडेण्ट महाराज ने किया था। उस अवसर पर भी मैं महाराज के काफी निकट था। जब उन्होंने मुझे आदेश दिया, देखो भक्त! यह कितना रमणीय स्थान है, जब यह आश्रम पूरा हो जाये, तो तुम कुछ युवा लोगों को ब्रह्मचारी बनाने के लिये यहाँ रहना। Train some Brahmchari here. मुझे वह आदेश आज भी याद है।

बाद में डा० तम्पी अपने घर ले गये। एक-दो दिन वहाँ रहने के बाद मैं कन्याकुमारी के लिये चल दिया। श्री निर्विकारानन्द स्वामी जी और चितप्रभासानन्द जी भी मेरे साथ आ गये। शुचीन्द्रम् 'नागरकोविल' में दर्शन के बाद हम कन्याकुमारी पहुँचे। हम लोगों ने सरकारी सत्र (धर्मशाला) में जगह ली। कई कारणों से कन्याकुमारी मेरे लिये महत्वपूर्ण तीर्थ केन्द्र है। हम लोग देवी माँ के दिव्य दर्शन करके 4-5 दिन वहाँ रहे। नमक बनाने के तालाब के मालिक श्री करयालु का सहयोग सराहना योग्य है। मेरे विशेष प्रिय श्री अम्बानन्द स्वामी जी भी यहाँ आ गये। मुझे बहुत अच्छा लगा। उनके भाई श्री गोपाल पिल्लइ के घर मैंने कुछ दिन व्यतीत किये, उसके बाद मैं तिरुवनन्तपुरम लौट गया।

मेरी इच्छा कन्याकुमारी से मदुराई होकर उत्तर भारत लौटने की थी। मैंने तदानुसार स्वामी जी को भी ओट्टप्पालम पत्र लिख दिया। उनका आदेश था कि मैं ओट्टप्पालम आऊँ। अतः मैं उस मार्ग से वापस लौटा, जिससे आते समय आया था।

मुझे गुरुपवनपुरम् (गुरुवायूर) बहुत पसन्द है। अतः मैं वहाँ से सीधे चला गया। वहाँ कुछ दिन भजन और पूजा करके मैं ओट्टपालम के लिये चल दिया। एक सज्जन श्री कुंजीराम पतियार मुझे बहुत प्रिय थे। वह उस समय पट्टाम्बी में प्रवास कर रहे थे। मैं पट्टाम्बी आकर एक-दो दिन वहाँ रुका। पट्टाम्बी से एक दिन दोपहर को मैं स्वामी जी के पास पहुँचा। स्वामी जी उस समय अपना भोजन ग्रहण कर रहे थे। मैं उनके सामने पहुँचा। प्रणाम करके उनके पास बैठ गया। स्वामी जी बहुत प्रसन्न हो गये। स्वामी जी ने अपने भोजन का एक हिस्सा मुझे खाने के लिये दिया। मैंने अमृत रूप में उसे ग्रहण किया।

स्वामी जी ने मुझसे दक्षिण भारत यात्रा का पूरा वर्णन प्राप्त किया और मैं स्वामी जी के पास कुछ दिन रुका। मैं कोयिलाण्डी आश्रम भी गया। स्वामी जी के साथ मैं श्रीकृष्ण नायर के घर गया। उस समय वे जिला एवम् सत्र न्यायाधीश थे। वे स्वामी जी के परम भक्त थे। शेखरानन्द स्वामी

जी उन दिनों कोज्जिकोड़े के आश्रम में निवास करते थे। उनके आश्रम स मैं पुनः ओट्टप्पालम आश्रम लौट आया।

मैंने स्वामी जी के चरण कमलों में कुछ और दिन बिताए। एक दिन स्वामी जी ने कहा, "तुम एक काम करो, जो भक्त यहाँ आते हैं, उनके लिये भागवत का पाठ करो"। मैंने स्वीकार किया, तब मैंने श्री कुंडूपन्निक्कर को याद किया। उन्होंने मुझसे कुछ दिन अपने घर पर भागवत का पाठ करने की इच्छा प्रकट की थी। जब मैंने स्वामी जी को इस बारे में बताया तो उन्होंने अपनी सहमति दी कि मुझे यह करना चाहिये। श्री पन्निक्कर उस समय अपने नये भवन चेरुप्पुलशशेरी में रह रहे थे। उनकी वृद्ध मां भी उनके साथ थी। उनके घर के सभी सदस्य मुझे जानते थे।

मैं चेरुप्पुलशशेरी पहुँचा। यह एक अच्छा स्थान है। यहाँ पर एक शास्ता (अय्यपा) का मन्दिर है। यहाँ एक विशेष दिव्यता का अनुभव किया जा सकता है। मैं उस मन्दिर में अक्सर श्री पन्निक्कर के साथ पूजा करने जाया करता था। कुछ दिनों मैंने भागवत का कुछ भाग पढ़कर उन्हें सुनाया। एक बार फिर मैं श्री पन्निक्कर, उनकी पत्नी और बच्चों के साथ उनकी कार में स्वामी जी के पास ओट्टप्पालम आया। स्वामी जी के दर्शन करके और कुछ आराम करने के बाद श्री पन्निक्कर का परिवार अपने घर वापस चला गया। पन्निक्कर ने आश्रम के लिये 3 रु० या कुछ और प्रतिमाह रु० का धन देना शुरू किया। वह उसे बहुत दिनों तक देते रहे।

मेरी उत्तराखण्ड वापिस होने की इच्छा बलवती हो गयी, लेकिन स्वामी जी इच्छुक नहीं थे, कि मैं जाऊँ।

(21)

“वज्रादपि कठोराणि मृदूणि कुसमादपि”

“वज्रादपि कठोराणि मृदूणि कुसमादपि” — स्वामी जी का हृदय हीरे से कठोर और फूल से भी कोमल है। जब कभी वे किसी में कोई त्रुटि या कमी देखते तो वह पहले ही अवसर पर बुरी तरह से फटकारते। स्वामी जी ने मुझे कई बार झापड़ मारा। क्रोध की मूर्ति बने स्वामी जी अचानक शान्त हो जाते थे, एक मासूम बच्चे की तरह ऐसा मैंने कई बार देखा है। स्वामी जी बाहरी व्यक्ति को नहीं, अपने शिष्यों को फटकारते थे। ओट्टप्पालम आश्रम में स्वामी जी प्रथम तल पर रहते थे। एक बार वह अपने एक शिष्य को कठोरता से फटकार रहे थे। मेरे जुकाम हो गया था। स्वामी जी के पास युक्लप्टस का तेल था। स्वामी का गुस्सा श्री नरसिंहमूर्ति की तरह तेज होता, तो उनके पास जाने की हिम्मत कोई नहीं करता, लेकिन मेरी आवश्यकता ने मुझे उनके पास जाने के लिये विवश किया। जब मैंने उनके तमतमाये चेहरे के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया तो उनका गुस्सा एकाएक शान्त हो गया और वह एक बच्चे की तरह शान्त हो गये। वे तुरन्त उठकर खड़े हो गये। अपना बक्सा खोला, दवा की बोतल और रुई निकाली और प्यार से मुझे दिया। वह तुरन्त भूल जाते कि थोड़ी देर पहले क्या हुआ था। क्या यह महान लोगों का चरित्र नहीं है।

“दुर्लभम् त्रयमेवैतत् द्वैवानुग्रहेतुम्

मनुष्यत्वम् मुमुक्षुत्वम् महापुरुष समश्रया”

मनुष्य का जीवन मिला है, उसे जानवर की तरह खाकर, सोकर, डरकर और विषय भोग में नहीं व्यतीत करना चाहिये। एक तीव्र इच्छा होनी चाहिये कि भौतिक भोगों के आनन्द और इन्द्रियों के सुख से भी बाहर निकल सके। यदि यह दोनों भी प्राप्त कर लिये जायें, तो भी अन्तिम लक्ष्य, मोक्ष, प्राप्त करना पूर्णतयः महात्माओं के आशीर्वाद के ऊपर निर्भर करता है। उसके बिना कुछ भी संभव नहीं। यदि किसी ने भी महात्माओं की सेवा पूर्ण भक्ति से की है, तो उसके लिये कुछ भी प्राप्त करना असम्भव नहीं है। मैंने भी स्वामी जी के साथ व्यवहार में लेश मात्र भी असावधानी नहीं की, किन्तु स्वामी जी के पास रहना भी एक तरह की कठिन तपस्या है। जब कभी भी मेरे मन में किसी प्रकार की उथल-पुथल होती (भ्रम की स्थिति बनती) मुझे नुकसान ही होता था।

मेरी भी स्वामी जी को छोड़कर भाग जाने की इच्छा होती थी, किन्तु स्वामी जी की सेवा करते समय मेरे मन में कभी भी जरा भी अनिच्छा की भावना नहीं आती। स्वामी जी की छोटी सी छोटी इच्छा की सावधानी पूर्वक पूर्ति करते हुए मैं ओट्टप्पालम में ही रुका। एक दिन स्वामी जी ने आदेश दिया, "तुम तिरुवल्ला आश्रम जाओ, वहाँ रुको और आश्रम के कार्य सावधानी पूर्वक देखो"। मैं उनकी इच्छा के कारण तुरन्त तैयार हो गया।

भगवान के घर (देवता मन्दिरम्) जन्म लेना अच्छा है, किन्तु वहाँ पर शरीर छोड़ना उपयुक्त नहीं है। स्वामी विवेकानन्द का यह मन्त्र मेरे अन्दर गहरे पैठ गया था।

तिरुवितांकूर राज्य में बहुत से आश्रम थे। मैं उनमें से कई आश्रमों में भी गया। कुछ आश्रमों के संचालकों में स्वामी जी के प्रति श्रद्धा, आदर और भक्ति नहीं थी। वे स्वामी जी के आदेशों के पालन करने में विश्वास नहीं करते थे। मैं धीरे-धीरे यह समझने लगा। मैंने ठीक से महसूस किया कि स्वामी जी मुझे इस उग्र और उथल-पुथल वाली स्थिति से बाहर भेजना चाहते हैं। कैसे भी हो मैंने यथासम्भव स्वामी जी की इच्छापूर्ति करने की कोशिश की। मैं तिरुवल्ला के लिये स्वामी जी का एक पत्र लेकर चल दिया। यह पत्र स्वामी अमलानन्द जी ने स्वामी जी के निर्देश पर लिखा था। मेरी सारी शक्ति स्वामी जी के आशीर्वाद और शुभ कामनाओं पर थी। उस पत्र में यह लिखा था, मैं पुरुषोत्तमानन्द को आश्रम भेज रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति उनकी आज्ञा मानेगा। (I am sending Purushottamananda to the Ashram and every one must obey him implicitly)

मुझे आश्रम में जीवन बिताने का मन नहीं था। मेरा पूरा उद्देश्य स्वामी जी की आज्ञा का पालन करके तिरुवल्ला पहुँचना था। अपने सन्यासी भाइयों और ब्रह्मचारियों को पूरी स्थिति से अवगत कराके, स्वामी जी के विचारों से अवगत कराना, आपस में सौहार्द बनाये रखने तथा आदेशों का अनुपालन करने की स्थिति तैयार कर, उत्तर भारत जाने के लिये स्वामी जी से अनुमति लेना था। मैं कोट्टायम होकर तिरुवल्ला पहुँचा। मुझे पता चला स्वामी जी के बहुत से शिष्य तिरुवल्ला के लिये चल दिये हैं। उन्हें मेरे आने के बारे में पता चल गया था।

यह मलयालम का कुम्भम् (फरवरी-मार्च) माह था। मुझसे गर्मी सहन नहीं हो रही थी। मैं बस से 5 बजे शाम को तिरुवल्ला आश्रम पहुँचा। मैंने अपने सामान की गठरी एक जगह रखी। उस समय वहाँ एक ब्रह्मचारी था। मैंने अपने साथ लाये केले उसे दे दिये। कोई मेरे लिये कुएँ से पानी

निकाल लाया। मैं कुएँ के पास गया और खूब स्नान किया। ठंडे पानी से मेरे शरीर को ठंडक मिली। देवता के दर्शन करके मैं आश्रम के एक कोने में बैठ गया। दीप आराधना (आरती) समाप्त हो गयी किन्तु कोई भी दिखाई नहीं दिया। स्वामी जी के 4-5 शिष्य वहाँ इकट्ठा हुए। वे चले गये और करीब 7.30 बजे रात्रि को लौटे। सब लोगों ने मुझे देखा कि मैं बैठा हूँ, किन्तु सबने यह दिखाने की कोशिश की कि किसी ने मुझे नहीं देखा और पास से निकल गये। एक शिष्य ने मेरे पास आकर बड़े प्यार से मुझसे जानकारी प्राप्त की।

यह रात्रि भोजन का समय था। एक बच्चे ने मुझे खाने के लिये आमंत्रित किया। यद्यपि मैं भूखा था, किन्तु मेरा मन खाना खाने का नहीं हो रहा था। किसी प्रकार से भी किसी अतिथि को दिया गया निमंत्रण अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक कोने में मेरे लिये भी कुछ रखा था। मैं बैठ गया और थोड़ा-बहुत मैंने भी खाया। यह उनकी अपने गुरु के प्रति उत्कृष्ट और अटूट भक्ति थी, जिसकी अभद्रता का निशाना मैं बना।

मानसिक कुंठा से भरा मैं आश्रम के बरामदे में गया और सोने की कोशिश की। अगले दिन प्रातःकाल शौच आदि क्रिया से निवृत्त होकर मैं कुएँ के किनारे पहुँचा और खूब नहाया। मेरे मन में इस आश्रम में रहने की जरा भी इच्छा नहीं बची थी। मैं बहुत भूखा था। आश्रम के पास एक दूकान पर जाकर मैंने दूध और फल खरीद कर खाये। मैंने स्वामी जी का पवित्र पत्र अभी तक किसी को नहीं दिया। फिर भी वे सभी बातें समझ चुके थे।

मैंने कुछ क्षण बिताये, मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। यह सोचकर कि मैं अपने बचपन के मित्र शंकर वेलिल हाउस के नारायण पिल्लइ से सलाह लूँ और तब आगे क्या किया जाय, यह निर्णय लूँ, मैं उनके निवास पालक्कामठम् हाउस चल दिया। मैंने उन्हें सारी बातें बताई। वहाँ मैंने भवन के तालाब के स्वच्छ पानी में स्नान किया। रात्रि पूजा और ध्यान किया और अच्छा भोजन खाकर आराम किया। उनकी राय थी कि मुझे आश्रम नहीं छोड़ना चाहिये, वरन् वहाँ बराबर रहना चाहिये। 3 बजे दोपहर को मैं उनका घर छोड़कर आश्रम की ओर चला। मैंने उनको बता दिया कि मैं उस आश्रम में तभी रहूँगा, जब वे मेरे रहनेपर सहमत होंगे और मुझे जबरदस्ती आश्रम में रुकने की कोई इच्छा नहीं है। उन्होंने अपने साथ अपने पुत्र राम कृष्ण को भेज दिया। मेरे पास 2-3 मुलायम नारियल थे। जब मैं आश्रम में था, तो वहाँ मात्र एक ब्रह्मचारी था। मैं वहाँ कुछ देर

ठहरा। वहाँ रहने वाले सन्यासी लौटने लगे। उनके साथ कुछ और लोग भी थे।

मैं ब्रह्मचारी के पास गया और उसे स्वामी जी का पत्र दिखाया। मैंने उससे निवेदन किया कि वह यह पत्र प्रबन्धक को दिखा दे। उसने यह करने से मना कर दिया। मैं धीरे से आश्रम के प्रबन्धक के पास गया। उसने मेरी ओर देखा भी नहीं। "मैं स्वामी जी के आदेश से यहाँ आया हूँ, यदि आपकी इच्छा हो तो कृपया इस पत्र को पढ़ें"। बड़ी उदासीनता से उसने वह पत्र लिया और उसे पढ़ा। उसने विचित्र सा मुँह बिचकाया, जैसे पूछ रहा हो "कौन स्वामी जी, कैसा पत्र" और गुरुदेव का पवित्र पत्र फेंक दिया। हे ! इसे इस तरह फेंकने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह मेरे लिये बहुत कीमती है। मैंने वह पत्र जमीन से उठा लिया और अपने सिर से बार-बार लगाया और सुरक्षित रख लिया।

मुझे इससे क्या निष्कर्ष निकालना चाहिये या क्या संदेह करना चाहिये। मेरे लिये यह अशोचनीय था कि मैं अपने भाइयों से लड़ूँ। मैंने अपना सामान बाँधा और उस स्थान पर जाने की तैयारी की, जहाँ से बस मिल सके। राम कृष्ण पिल्लइ ने मुझे बड़ी मदद की। उस शाम को मैं अदूर पहुँच गया। वहाँ के मुसिफ श्री परमेश्वरन् पिल्लइ स्वामी के बड़े भक्त थे। वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मैंने उन्हें सारी बातें बताईं। रात्रि भोजन करने के बाद मैं आराम से सोया। हरि ओम्।

अब क्या किया जाये? इन झगड़ों में घसिटने से अच्छा, वसिष्ठ गुहा लौटना अधिक उपयुक्त नहीं है? फिर भी मैंने पूरे प्रकरण पर एक लम्बा पत्र स्वामी जी को लिखकर डाक से भेज दिया। श्री पिल्लइ बहुत खुश थे। मैं उनके घर एक दो दिन रुका। स्वामी जी के उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए मैं जाकर शास्ताकोट्टा में रुक गया। यह एक अति रमणीय स्थान है। यहाँ एक शास्ता (अध्यप्पा) का मन्दिर है (यह त्रवणकोर के उन कुछ स्थानों में से है, जहाँ ताजे पानीकी झील है)। यहाँ एकान्तवास की पूरी व्यवस्था है। जब मैं वहाँ रह रहा था, एक दिन शाम को मुरहरानन्द स्वामी जी कार से आये। मेरा पत्र मिलते ही स्वामी जी ने मुरहरानन्द स्वामी जी को अदूर के लिये तुरन्त भेज दिया और श्री पिल्लइ ने अपनी कार में उन्हें शास्ताकोट्टा भेज दिया। मुरहरानन्द स्वामी जी ने सारी बातों से मुझे अवगत कराया। हम लोग वापस अदूर आ गये। स्वामी जी अदूर आने के लिये तैयार हैं, इसलिए हम लोग तिरुवनन्तपुरम पहुँच गये। स्वामी जी के निर्देश थे कि श्री पिल्लइ की कार से श्री निर्विकारानन्द जी को लेकर जितनी जल्दी हो सके, ओट्टप्पालम पहुँचूँ।

अब स्वामी जी का आना निश्चित था। श्री पिल्लइ के घर उनके रुकने की तैयारियाँ शुरू हो गयीं। यहाँ की गरमी मुझसे सहन नहीं हो रही थी। श्री पिल्लइ के घर के पास एक जंगल था और उसके बीच एक देवी का मन्दिर था, मैं अक्सर, वहाँ जाकर आराम करता था। मैं स्वामी जी के आने की आकुलता से प्रतीक्षा कर रहा था। स्वामी जी को लाने जो कार गई थी, अब वापस आ गई थी, उसमें ड्राइवर के अतिरिक्त कोई नहीं था। श्री पिल्लइ की कार में मरम्मत का काम हो रहा था, अतः उन्होंने किराये की कार भेज दी थी। स्वामी जी को यह पसन्द नहीं आया। यदि श्री पिल्लइ की निजी कार होती तो स्वामी जी अपनी आवश्यकता के अनुसार उसका उपयोग करते। स्वामी जी ओट्टप्पालम से सीधे एक ही बार में इतनी लम्बी यात्रा पसन्द नहीं करते थे। स्वामी जी अपनी यात्रा के दौरान सुविधाजनक स्थानों पर रुक-रुक कर आराम से आते थे। इस कारण उन्होंने उस कार को तुरन्त वापस भेज दिया। उन्होंने इसे इंगित करते हुए एक पत्र भी भेजा कि श्री परमेश्वरन् पिल्लइ को कार ठीक होने के बाद भेजनी चाहिये थी।

मैं कष्टमय स्थिति में था। कई दिनों तक मुझे ठीक से नींद नहीं आयी, मैं स्वामी जी की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रहा था। श्री पिल्लई का बंगला मुख्य सड़क से लगा हुआ था। जब कभी भी किसी कार की आवाज आती, स्वामी जी की कार की होगी, समझकर, मैं सड़क की ओर दौड़ता। अब जो बचा था, उससे निराशा होती थी। मैं थक कर कमजोर हो गया, मैं कैसे यहाँ से जाऊँ, कहीं भी जाने के लिये श्री परमेश्वरन् पिल्लई अनुमति नहीं दे रहे हैं। भगवान की इच्छा कौन जानता है? मेरे एक स्नेही वकील, जो वहाँ से कुछ दूर कांजिरप्पल्ली में रहते थे, मेरे सामीप्य के इच्छुक थे। उन्होंने कुछ महीने तिरुवल्ला आश्रम में भी मेरे साथ अध्यात्म की क्रियाओं में व्यतीत किये थे। अब उन्होंने मुझे कांजिरप्पल्ली में आमंत्रित किया। श्री पिल्लई सहमत हो गये और मैं वहाँ चला गया।

मैंने स्वामी जी को निम्न पंक्तियाँ लिखकर एक पत्र डाक द्वारा भेजा —
 "Seeing the present state of Ashrams in Travancore, I find it difficult to stay any where there. With Swamiji's kind permission, I am leaving for North India, only to come again when ever your holiness wants me".

"त्रवणकोर के आश्रमों की वर्तमान स्थिति देखकर मैं यहाँ कहीं भी रुकने में कठिनाई महसूस कर रहा हूँ। आपकी अनुग्रह—पूर्ण अनुमति लेकर मैं उत्तर भारत की ओर जाने के लिये सोच रहा हूँ। जब कभी भी पवित्रात्मा (स्वामी जी) मुझे बुलायेंगे मैं वापस आ जाऊँगा।

कांजिरप्पल्ली में कुछ सज्जन मुझे जानते थे, जैसे कि वहाँ के तत्कालीन मुंसिफ। वहाँ 3-4 दिन रहने के बाद मैं मदुराई होकर मद्रास पहुँच गया। इस बार मेरी मद्रास के आश्रम जाने का पूर्व नियोजित कार्यक्रम नहीं था। पूर्व में जब मैं यहाँ रह रहा था, तो तत्कालीन प्रेसीडेंट ने स्वामी जी के लिये अभद्र शब्दों का प्रयोग किया था। मैं इस प्रकार के शब्दों को पुनः सुनना नहीं चाहता था। 3-4 दिन एक डाक्टर मित्र के घर रहने के बाद मैं एक शाम मद्रास से रेलगाड़ी पर चल पड़ा। जैसे ही मैं ट्रेन में चढ़ने जा रहा था, मैंने मद्रास आश्रम के मठाधिपति (प्रेसीडेंट) को मद्रास रेलवे स्टेशन पर देखा। पूर्व की तुलना में इस बार हम लोगों ने सौहार्द पूर्ण वातावरण में साथ-साथ यात्रा की। एक सज्जन राजमंदरी रेलवे स्टेशन पर मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं उतर गया और उनके साथ उनके घर गया।

वे श्री रामकृष्ण के परम भक्त थे। उनका नाम वैकिटराऊनरा था। वह

एक अध्यापक थे। मैं वहाँ 15 दिन रुका। हम लोगों ने वहाँ श्री रामकृष्ण की शताब्दी जन्म उत्सव बनाया।

यहाँ बहुत से लोग मुझसे भली-भाँति परिचित हो गये। एक दिन मैं गोदावरी नदी से स्टीम बोट में बैठकर हैदराबाद राज्य के लिये रवाना हो गया। मैंने इस राज्य में गोदावरी नदी के किनारे पहाड़ी के ऊपर श्री राम के एक बहुत प्रसिद्ध मन्दिर के बारे में बहुत सुन रखा था। राम दास तत्कालीन नवाब का एक कर्मचारी था। मैंने सुना था कि किस तरह सरकारी कार्य के लिये दिये गये धन से राम दास ने राम मन्दिर का निर्माण कराया? कैसे नवाब ने उसे इस गलती के लिये जेल भेज दिया? कैसे भगवान ने मानव शरीर में नवाब को धन वापस किया और रामदास को जेल से बाहर निकलवाया?

मैं इस कहानी का संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ।

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार, गौतमी नदी (वर्तमान गोदावरी नदी) के तट पर एक ऊँचा पहाड़ था जिसे भद्राचलम् के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में वहाँ एक खूबसूरत मन्दिर है। मन्दिर के गर्भ गृह में स्थापित, पवित्र विग्रह श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के हैं। कथा इस प्रकार से है — "एक बहुत भक्त भद्र गृहणी जिसका नाम दामाक्य था, को स्वप्न में वह स्थान दिखाई दिया, जहाँ श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के विग्रह जमीन के अन्दर मिट्टी के नीचे गहरे पड़े हुए थे। उसे स्वप्न में यह निर्देश मिला कि मिट्टी खोदकर वह तुरन्त उनको बाहर निकालकर भद्राचलम् के मन्दिर में स्थापित करे। उसको यह भी आदेश था कि श्री राम, सीता और लक्ष्मण की भक्ति पूर्वक पूजा तथा अर्चना तब तक करे, जब तक परम भक्त रामदास वहाँ नहीं आता। वह भद्र महिला सारे निर्देशों का भक्तिपूर्वक पालन कर विग्रहों की पूजा सम्पन्न करती रही।

भद्राचलम् तब मुगल साम्राज्य का हिस्सा था। उस क्षेत्र का प्रशासक नवाब अब्दुल्ला था, उसके दो हिन्दू मंत्री थे। उनमें से एक मंत्री की बहिन का पति गोपन्ना था। वह भगवान श्रीराम का परम भक्त था। वह भद्राचलम् का तहसीलदार था। उसकी श्रीराम में असीम भक्ति थी। उसने भद्राचलम् के खूबसूरत मन्दिर का निर्माण करवाया और उत्सव के साथ श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के विग्रह स्थापित किये। उसने उन विग्रहों को मूल्यवान, मोती के हारों और मालाओं से सजाया। रामदास या गोपन्ना को कहाँ से यह धन प्राप्त हुआ? उन्होंने इस कार्य के लिये सरकारी खजाने से 6 लाख सोने की मोहरें नवाब को बिना बताये निकाली थी। इस दुष्कृति

के लिये नवाब ने उन्हें जेल में डाल दिया। वे 12 साल तक जेल की यातनाएं सहते रहे। जेल में भी वे अपने इष्ट देवता की पूजा-ध्यान करते रहे। अन्त में उन्होंने अपने शरीर का त्याग करने की योजना बनायी और सही अवसर की तलाश में रहे। देवी सीता को अपने सच्चे भक्त पर दया आ गयी और उन्होंने पति से रामदास को जेल से छोड़ने की प्रार्थना की। श्रीराम और लक्ष्मण, दो सिपाहियों का वेश बनाकर और सोने की 6 लाख मोहरें लेकर मध्य रात्रि में नवाब के शयन कक्ष में पहुँच गये। नवाब उन दो युवकों को देखकर स्तम्भित रह गये। जब नवाब ने उनसे इतनी रात्रि में आने का कारण जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि रामदास द्वारा खर्च की जा चुकी 6 लाख सोने की मोहरें वापस करने आये हैं तथा रामदास को तुरन्त जेल से छोड़ देने की प्रार्थना की। ऐसा कह कर उन्होंने बोरे खोलकर 6 लाख सोने की मोहरें जमीन में बिखेर दीं। आश्चर्य से अभिभूत होकर नवाब उन दो युवकों के साथ तुरन्त चल दिये और रामदास को जेल से आजाद कर दिया। दोनों युवक गायब हो गये। जब अगले दिन नवाब उठा तो उसे वह स्वप्न सा लगा। वह अपने शयन कक्ष से कहीं नहीं गया था, किन्तु 6 लाख सोने की मोहरें अब भी जमीन पर पड़ीं थीं। नवाब को कमरे में विशेष चमक दिखाई दी। नवाब उठा और रामदास को जेल से आजाद किया और उसे सारे विवरण से परिचित कराया। अपने सौभाग्य को धन्यवाद देते हुए कि उसने भगवान राम और लक्ष्मण के दर्शन किये, उसने पुनः रामदास को भद्राचलम का तहसीलदार बना दिया। उसने रामदास को 6 लाख सोने की मोहर देते हुए कहा कि वह जैसा ठीक समझे, उसे खर्च कर सकता है।”

अब मेरी उस पवित्र स्थल को देखने की इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। वहाँ एक-दो साधु भी मेरे साथ थे। भगवान राम, सीता और लक्ष्मण के दर्शन करने के बाद मैं एक-दो दिन वहाँ रुका। वहाँ से मैं रेलगाड़ी द्वारा उत्तर भारत की ओर पुनः चल दिया। कुछ दिन मैं कानपुर आकर अपने जान-पहचान के एक सज्जन के यहाँ रुका। कानपुर से मैं गोरखपुर के गीता प्रेस गया। उन्होंने पहले भी मुझे आमंत्रित किया था। इस समय पूरे वाद्य यन्त्रों के साथ पवित्र मंत्र (हरे राम-हरे राम, हरे कृष्ण-हरे कृष्ण) का अखण्ड पाठ दिन-रात लगातार चल रहा था। वहाँ पर बहुत स्थानों से आये भक्त इकट्ठा थे और जप एक वर्ष तक चलाने के लिये सन्नद्ध थे। मैंने भी प्रसन्नतापूर्वक उसमें भाग लिया और 8-10 दिन रुका। मैंने श्रीमद्भागवत के सप्ताह पाठ में भी भाग लिया। एक विद्वान बड़ी भक्ति के साथ वहाँ सस्वर पाठ करते थे। वहाँ पर भी मैं लोगों के स्नेह का पात्र बन गया।

गोरखपुर से मैं लखनऊ की ओर चल दिया। एक सज्जन बाबू ईश्वरी दयाल जब बद्रीनाथ की यात्रा पर जा रहे थे तब वसिष्ठ गुहा आये थे। मेरे लखनऊ जाने का विचार अब उनकी इच्छाओं के अनुसार था, मैंने उन्हें पहले से ही पत्र द्वारा सूचित किया था। अतः वे स्टेशन पर मेरा इंतजार कर रहे थे। मैं उनके साथ उनके घर गया। उनके पिता और भाई बहुत प्रसन्न हुए। मैंने भी वहाँ कीर्तन और अन्य कार्यों में समय व्यतीत किया। मैं एक-दो दिन श्री रामकृष्ण आश्रम में भी रुका और बहुत से लोगों से मुलाकात की।

लखनऊ से मैं सीतापुर गया। सीतापुर के अग्रणी वकील श्री सन्त नारायण हरकौली और प्रमुख लोग उत्सुकतापूर्वक मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ कुछ दिन रुकने के बाद मैं हरिद्वार होकर ऋषिकेश गया और वहाँ से अन्ततः गुहा पहुँच गया।

(23) गंगा और गुहा

केवल गंगा का दर्शन ही मन को पवित्र कर देता है लेकिन गंगा में स्नान की महत्ता केवल अनुभव से ही जानी जा सकती है।

पुनातु भागवत्यम्बा गंगा दुःसंगनाशिनी ।।

तनोतु भक्तिम् विमलाम् निश्रेयससुखावहाम् ।।

हे, माँ गंगा, तुम दुष्ट संगति का नाश करती हो, इस प्राणी की मन की कलुषता को दूर कर, कृपा करके माँ शुद्ध भक्ति प्रदान करो, जो मेरे परम आनन्द का कारण बने। यही मेरी एक मात्र इच्छा है और आपसे प्रार्थना है।

यहाँ (वसिष्ठ गुहा) मेरे जीवन की प्रकृति में एक बदलाव लाया। गंगा में स्नान, गुहा में जीवन, एकान्त जीवन में सुन्दर दैविक परिदृश्य का अवलोकन और शान्ति, मन शान्त करने में सहयोग देता है।

“गुहायाम् निहितम् तत्त्वम्”

(गुहा में यह तत्त्व निहित है।)

तत्त्व (परम सत्य) गुहा (हृदय की गुहा अर्थात् हृदय के अन्दर) में छुपा है। यद्यपि यह वैदिक ऋचा विशेष रूप से हृदय की गुहा के लिये है तब भी बाहरी “पहाड़ की गुहा” साधकों को स्वयं को समझने और अनुभव करने में काफी हद तक सहयोग करती है और इस वैदिक वाक्य पर ठीक उतरती है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है यह अक्षरशः सत्य है।

यह मन, कामदि (काम, क्रोध, मद, लोभ) के समुद्र में फँसकर ऊपर—नीचे होकर उस दुःखद स्थिति में ठीक एक उस जहाज की तरह है, जो एक भयंकर झंझावात में फँसकर ऊपर—नीचे हो रहा है और समुद्र में डूबने जा रहा है। उस भयंकर दुःखद स्थिति में भी यदि आप गुहा के अन्दर प्रवेश करते हैं और अपने मन में सोचते हैं तो मन को उथल—पुथल करने वाले सारे विचार गायब हो जाते हैं जैसे सूर्य के निकलने से अंधकार। वह मन को विवश करता है कि आप यहाँ हमेशा के लिये रहे। लोग बाहर की दुनिया को भूल जाते हैं। मन पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तब हृदय के अन्दर से एक ही आवाज आती है —

धन्योहम्, धन्योहम् (ओह मैं निश्चय ही धन्य हूँ)

ठीक तब मुझे भर्तृहरि का सुन्दर श्लोक स्मरण हो आता है —

धन्योहम् गिरि कन्दरेषु वसताम्

ज्योतिष्पदम् ध्यायताम् आनन्दाश्रुकणान्

पिबन्ति शकुना निश्शंक मङ्कशयाः

जिनको भगवान का आशीर्वाद प्राप्त है वे पर्वतों की गुहा में बैठे रहते हैं और परम ज्योति का ध्यान करके परम आनन्द का अनुभव करता हैं। उन भाग्यशालियों की गोद में बैठ लेशमात्र भय से रहित पक्षी उनके आनन्द अश्रु का स्वाद लेते हैं।

विद्वान पाठक मुझे यहाँ गलत न समझें। मैं वह स्थिति नहीं प्राप्त कर पाया हूँ या उसके आसपास पहुँचा हूँ, किन्तु मैं यह जरा सा अन्दाज लगा सकता हूँ कि इस आनन्द से भरी स्थिति क्या हो सकती है।

“मोक्षम् इच्छसि चेत् तातविषयात् विषवत् त्यज”, यदि तुम सच्चे मन से मोक्ष की आकांक्षा करते हो तो तुम्हें विषयों को विष के समान धिक्कार करके पूर्णतः छोड़ना ही है। यह सब, एकान्त और शान्त जीवन का उद्देश्य, पूर्ण विषय वैराग्य सिद्ध करने के लिये ही है। यह भी आवश्यक है कि सद्ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय। आजकल अधिक से अधिक “योग वासिष्ठम्” को पढ़ रहा हूँ। जब मैं उत्तरकाशी में था तो मुख्य रूप से वेदान्त की पुस्तकें पढ़ता था। मेरा वेदान्त पर ध्यान अधिक होने के कारण मेरा मन भागवत से कम होने लगा और उस स्थिति पर पहुँच गया, जहाँ से लौटा न जा सके। मैंने अपनी भागवत की पुस्तक उस समय किसी को दान कर दी। अब मैं अपना समय स्नान, ध्यान, जप और वेदान्त पढ़ने में लगाता था। लोग मेरे पास आते और जाते। एक—दो लोग सदा मेरे पास आकर गुहा में रहते।

शाल्यान्तम् सघ्नतम् पयोदधियुतम् येय भुंजते मानवाः तेषाम्

इन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् विंध्यः प्लवेत् सागरे ।।

(यदि कोई प्रतिदिन अच्छे चावल, घी और दूध एवं दही के साथ खाये और अपनी इन्द्रियों पर काबू रखे तो निश्चय ही विंध्य पर्वत समुद्र में डूब जायेगा।)

एक बार जब मैं सीतापुर में था। मुझे दूध और फल प्राप्त हो सका। इसके खाने से मुझे काफी हल्का महसूस होता था। यदि सत्य कहा जाये, सभी आध्यात्मिक क्रियाएँ, जैसे ध्यान आदि, पेट से शुरू होती हैं और वहाँ रहती हैं।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ स्थिरामतिः

मतिलभ्ये सर्व ग्रन्थिनाम विप्रमोक्षः (छन्दोपनिषद्)

भोजन की शुद्धता में ही तत्त्व शुद्धि रहती है। तत्त्व शुद्धि में बुद्धि स्थिर रहती है। जब बुद्धि स्थिर रहती है, तो सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, यानि मोह और माया के बन्धन हमेशा के लिये टूट जाते हैं।

अब मैंने अयाचक वृत्ति स्वीकार की है (इस जीवन में किसी से भी कोई चीज न माँगना, यहाँ तक कि खाना भी)।

“योगक्षेम वहाम्यहम्”। मुझे भगवान के इस वचन में पूर्ण आस्था है। मुझे किसी से भी कोई चीज माँगने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई। मेरा अपना खर्च बहुत कम है किन्तु ब्रह्मचारी, सन्यासी और गृहस्थ (जो तीर्थ यात्रा पर आते हैं) जो आते जाते हैं, से खर्च बढ़ता जाता है। यह सब कुछ सर्वशक्ति (भगवान) के द्वारा ही चलाया जा रहा है।

(24)

पशुपति नाथ के दर्शन

यह 1936 का वर्ष था, जब मैं केरल की यात्रा से लौट कर गुहा आया तब तक कीर्तिनगर तक बस जाने योग्य सड़क बन गयी थी। इस नई सुविधा ने मुझे अक्सर बद्रीनाथ जाने के लिये प्रोत्साहित किया। मेरे लिये प्रत्येक बार बद्रीनाथ जाकर लगभग 4 माह स्वतंत्र रूप से रहना सम्भव हो सका। मेरी तत्कालीन टेहरी के महाराजा से भी जान-पहचान हो गयी।

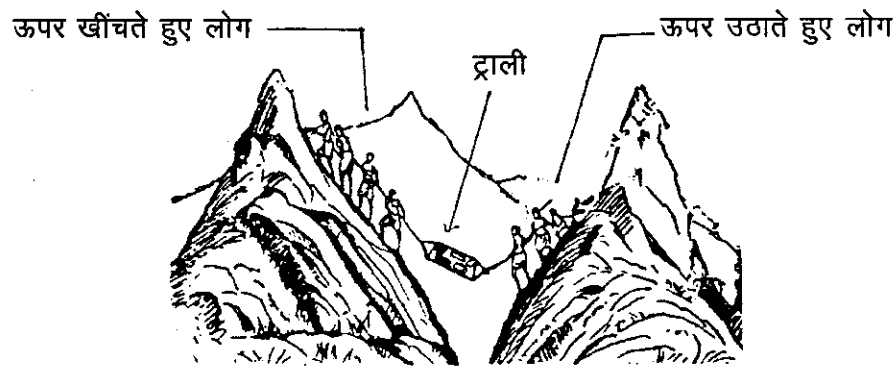
जब मस्तिष्क के किसी कोने में काम विचार उदय हो रहा है, तो उसे समाप्त करना ही मन शुद्धि का लक्षण है। परिशुद्धि का लक्षण है कि कामादि विचार का मन में जन्म ही न हो। यह लक्षण मैंने स्वामी जी से प्राप्त किया था कि हृदय को इतना पवित्र तभी समझा जा सकता है जबकि उसके अन्दर की भावनाओं, यहाँ तक कि भावनाओं का जन्म ही न होने पाये। तीर्थ यात्राओं और अध्यात्मिक साधना का मूल उद्देश्य मन को उस स्थिति में पहुँचाना है (अर्थात् स्थिति प्रज्ञा होना)। यद्यपि कई बार मैंने वह स्थिति प्राप्त की है किन्तु जब मैं सांसारिक लोगों से जुड़ता हूँ। ऐसा लगता है कि मैं वह सब खो चुका हूँ।

नेपाल के युवराज ब्रह्म शमशेर जंग बहादुर एक बार वसिष्ठ गुहा आये। उनसे मेरी मित्रता हो गयी। नेपाल में प्रसिद्ध पशुपति नाथ का मन्दिर है। कोई भी बाहरी व्यक्ति बिना विशेष अनुमति के नेपाल में प्रवेश नहीं कर सकता। किन्तु शिवरात्रि के दिन बिना किसी रोक-टोक के पशुपति नाथ मन्दिर में जाकर पशुपति नाथ के दर्शन कर सकता है। बहुत से साधु और गृहस्थ उस अवसर पर जाते हैं। तीर्थ यात्रियों की सुविधा के लिये बहुत स्थानों पर धर्मशालाएं स्थापित की गई हैं। गरीब लोगों को मुफ्त भोजन भी दिया जाता है।

मैं लखनऊ से रक्सौल रेलगाड़ी द्वारा गया। मेरे साथ कोई नहीं था। अकेले यात्रा करना मुझे अच्छा लगता है। जैसे ही मैं रक्सौल पहुँचा, मैंने टेलीफोन से युवराज को सूचना दी। अपने कर्मचारियों के माध्यम से उन्होंने मेरे रुकने के सारे इंतजाम कराये। 2-3 दिन आराम से रहने के बाद मैंने रेल से यात्रा शुरू कर दी। वहाँ करीब 100 मील (160 कि०मी०) की रेलवे लाइन है। उसके बाद कोई भी बस से यात्रा कर सकता है। अन्तिम 20 मील (32 कि०मी०) पैदल यात्रा करनी पड़ती है। कोई डाँडी में

बैठकर यात्रा कर सकता है (डाँडी को 4 लोग लेकर चलते हैं)। युवराज ने एक आदमी को मेरी सुरक्षा के लिये भेजा। डाँडी में बैठकर, मैं एक शाम को नेपाल पहुँच गया। युवराज अपने मित्रों के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने अपनी कार से मुझे वहाँ से 2-3 मील (3.5 कि०मी०) दूर एक आश्रम भेज दिया।

भारी सामान जैसे मोटरकार, आदि नेपाल (काठमाण्डू) के पास रेलवे स्टेशन से नेपाल रोप वे से ले जाये जाते थे।



नेपाल (काठमाण्डू) एक पहाड़ी समतल मैदान है। वहाँ सड़कों पर कार से घूमना सुविधाजनक है। यहाँ ज्यादातर लोग गरीब हैं। केवल राजघराने के लोग ही अच्छे भवनों में रहते हैं। यह लोग ही ऐश्वर्य की सामग्री यथा कार आदि रखते हैं।

मैंने आरामदायक तरीके से रात्रि आश्रम में गुजारी। अगले दिन युवराज स्वयं आश्रम आये और मुझे कार में पशुपतिनाथ मन्दिर ले गये। इस प्रकार मैं पशुपतिनाथ के भी दर्शन कर सका। इस विग्रह में कई महात्म्य संकल्पित हैं (महानता के कुछ विशेष चिन्ह लिंग में दिखाई दिये)। यह विग्रह कोई साधारण लिंग नहीं है, जो सामान्यतः सभी मन्दिरों में दिखाई देता है। यह विग्रह 4 फिट ऊँचा है। उसके चारों ओर तथा ऊपर की ओर शिव के मुख हैं। गर्भ गृह के 4 द्वार हैं जो हर दिशा में हैं। पूजा और अन्य क्रियाकलाप चारों द्वारों पर एक साथ सम्पन्न होते हैं। एक ही साथ भक्त चारों दिशाओं के दरवाजे पर भीड़ लगा लेते हैं।

क्या परम शिव पंचमुखी देवता नहीं हैं? मैंने पहले ही से बताया है कि

पशुपतिनाथ के पाँच मुख हैं। प्रत्येक मुख के लिये एक-एक श्लोक है, जिसे मैं स्तुति (स्त्रोत) नीचे लिख रहा हूँ।

संवर्त्ताग्नि तडित् प्रदीप्त कनक प्रस्पर्द्धि तेजोऽरुणम्
गंभीर ध्वनि सामवेद जनकम् ताम्राधरम् सुन्दरम्
अर्द्धन्दु द्युति लोल पिंगिल जटाभार प्रबद्धोरगम्
वन्दे सिद्ध सुरासुरेन्द्र नमितम् पूर्वम् मुखम् शूलिनः 11।
कालाभ्र भ्रमराञ्जन द्युति निभम् व्यावृत्तपिंगे क्षणम्
कर्णोत्भासीत भोगिमस्तक मणि प्रोदभिन्न दंष्ट्राङ्कुरम्
सर्वप्रोत कपाल शुक्ति शकल व्याकीर्ण वक्षोरगम्
वन्दे दक्षिणमीश्वरस्य वदनम् चाथर्व नाभोदयम् 12।
प्रालेयाचल चन्द्र कुन्दधवलम् गोक्षीर फेन प्रभम्
भस्माभ्यक्त मनंग देहदहन ज्वालावली लोचनम्
ब्रह्मेन्द्रादि मरुदगणार्चितपदम् ऋग्वेद नाभोदयम्
वन्देहम् सकलं कलंकरहितम् स्थाणोमुखम् पश्चिमम् 13।
गौरम् कुङ्कुम पङ्क गन्धसलिल व्यापाण्डु गण्डस्थलम्
भूविक्षेपकटाक्षवीक्षण लसत संसक्त कर्णोत्पलं
स्निग्धम् बिंब फलाधर प्रहसितम् नीलालकं सुन्दरम्
वन्दे याजुष वेद घोष जनकं वक्रम् हरस्योत्तरम् 14।
व्यक्त्याव्यक्त निरूपितम् च परमं षट्त्रिंशत् त्वातमकं
तस्मादुत्तरतत्त्वमक्षरपदं ध्येयम् सदा योगिभिः
ओंकारादि समस्त मन्त्र जनकम् सूक्ष्मादि सूक्ष्मात् परम्
वन्देहम् परमेश्वरस्य वदनम् दिव्यापि तेजोमयम् 15।
सर्वथा यत् पशूनपातितैश्चय भ्रमते सह
तेषामधि पतिर्यश्च तस्मात् पशुपति स्मृतः
(इति श्री पशुपति स्त्रोतम् सम्पूर्णम्)

दर्शन करके और विग्रह को आराम से छूकर, प्रणाम करने के बाद, मैं मन्दिर के समीप धर्मशाला में रहने वापस आ गया। मेरे लिये सारी भोज्य सामग्री महल से आती थी। प्रत्येक दिन धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ और परिचर्चा होती थी। मैंने अन्य प्रसिद्ध स्थानों के भी दर्शन किये और इस

प्रकार शिवरात्रि व्यतीत हो गयी। अब सभी तीर्थ यात्रियों के वापस जाने की भीड़ होने लगी। सामान्यतः बाहरी तीर्थयात्री बिना राजा की विशेष अनुमति के 7 दिन से ज्यादा नहीं रुकते। मैंने भी वापस जाने का निर्णय लिया। एक राजसेवक मुझे रक्सौल तक छोड़ने आया। रक्सौल से मैं पुनः लखनऊ पहुँचा।

कुछ दिन लखनऊ और सीतापुर में बिताने के बाद मैं पुनः एक बार वसिष्ठ गुहा पहुँचा। लखनऊ में अधिकतर मैं शुक्लाघाट में रुकता था। लखनऊ के एक धनी जमींदार श्री देवी प्रसाद शुक्ला ने अपनी स्वर्गवासी, प्रिय पत्नी की स्मृति में गोमती के किनारे एक दो मंजिला भवन निर्मित करवाया था। वे मेरे मित्र और भक्त बन गये। वे शुभ कार्यों में प्रसन्नता पूर्वक धन खर्च करते थे। उनके घर प्रतिदिन धार्मिक एवं अध्यात्मिक अनुष्ठान हुआ करते थे। रुद्र (शिव) की अभिषेक पूजा, गीता का पाठ, श्रीमद्भागवत् का पारायणम् (पाठ) और गीता ज्ञान के कार्य, श्रद्धा और विश्वास के साथ मेरी देखरेख में बहुत निपुणता के साथ सम्पादित किये जाते थे। उन्होंने एक अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना की थी। बाद में वह हाई स्कूल हो गया। मैंने हाईस्कूल के भवन का शिलान्यास किया था और बाद में उसका शुभारम्भ की कार्यवाही भी मेरे द्वारा सम्पन्न हुई। जब कभी भी मैं लखनऊ में रहता, मैं विद्यालय जाता तथा छात्रों को सलाह के कुछ शब्द जरूर कहता। अब वह विद्यालय इण्टर कालेज हो गया। उनके संस्थापक की मृत्यु के बाद उनके भाई उस दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं। जब भी मैं शुक्ला घाट में रुकता था, भजन, कीर्तन, पाठ (पारायणम्) पूजा और हवन नियमित रूप से होता था।

(25)

विद्यालय स्थापना

पुनः वसिष्ठ गुहा में रहना शुरू हो गया। प्रत्येक मानव का एक मात्र उद्देश्य अनवरत आनन्द प्राप्त करना है। यह आनन्द मानसिक शान्ति में स्थित है। जैसे ही मैं वसिष्ठ गुहा में प्रवेश करता हूँ मेरा मन और मस्तिष्क दोनों ही शान्त हो जाते हैं। इसी कारण से मैं वसिष्ठ गुहा में शीघ्रातिशीघ्र वापस आता हूँ। मेरे मन में जो भी भाव, विचार उठते हैं, जिस क्षण गुहा में प्रवेश करके आसनस्थ होता हूँ, वह स्वतः समाप्त हो जाते हैं। मेरे लिये यह कहना असम्भव है कि गुहा में रहने के कारण, मेरे जीवन में किस स्तर तक आध्यात्मिक उन्नति हुई है। 2 बजे दोपहर का समय रहा होगा, मैं ध्यान की अवस्था में गुहा के अन्दर बैठा था। ऐसा लगा, कोई कह रहा है, "Now, Begin for a school (अब एक विद्यालय शुरू करो)। इस क्षेत्र में अनपढ़ लोग रहते हैं उनमें से 99 प्रतिशत लोग अपने हस्ताक्षर करना भी नहीं जानते हैं। मैंने पहले भी बताया है कि जब मैंने गुहा में जीवन शुरू किया था, तो मैंने कुछ स्थानीय बच्चों को पढ़ाना शुरू किया था। अब मुझे यह विचार भी मिल गया है। मैं गुहा के बाहर आ गया। उस समय वहाँ कुछ लोग थे जो मेरे विचारों में रुचि रखते थे। मैंने अपने विचारों से उन्हें अवगत कराया। फिर भी उनकी प्रतिक्रिया थी "यहाँ के लोगों की क्रियाशील सहायता और सहयोग के बिना यहाँ विद्यालय शुरू करना करीब-करीब असम्भव है। अतः इनके लिये कोई कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। "कोशिश करने से आराम से बैठना अच्छा है।" ऐसा कहकर उन्होंने मुझे बहुत हतोत्साहित किया।

मैं स्थानीय लोगों की मानसिकता बहुत अच्छी तरह जानता था। उनसे किसी सहायता की कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती थी, उससे भी खराब यह कि उनकी नाराजगी और वैमनस्य और मिलना था। उनके मन में अपने बच्चों को शिक्षित करने के प्रति जरा भी इच्छा नहीं है। उनका मुख्य व्यवसाय कृषि है और इस गढ़वाली क्षेत्र में अच्छे तरीके से कृषि करना मुश्किल है। यदि बच्चे स्कूल पढ़ने चले जायेंगे तो यह सारा कार्य कौन करेगा। यहाँ सभी के पास खेती के लिये उपयुक्त भूमि है, यहाँ सारी जमीन राजा की सम्पदा है, ग्रामवासी जो जोतते हैं, महसूस करते हैं कि यह उनकी भूमि है। उन्हें जमीन बेचने का कोई अधिकार नहीं है। यहाँ कोई भी भूखा नहीं रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार अन्न

के लिये खेती करता है। वे गेहूँ, चावल, कई प्रकार की दाल और हरी सब्जी इत्यादि पैदा करते हैं। वे कृषि के लिये पूर्णतयः वर्षा देवता के ऊपर निर्भर रहते हैं। यदि वर्षा नहीं होती तो पूरे क्षेत्र में अकाल पड़ जाता है। किन्तु आजकल जब से सड़कें बन गयी हैं, किसी भी सूखे क्षेत्र में अकाल की स्थिति से निपटने के लिये सरकार के द्वारा खाद्यान्न तुरन्त से भेजा जाता है।

ऐसे ही एक स्थान में मुझे स्कूल स्थापित करने का विचार उत्पन्न हुआ। मैंने अपने विचारों पर नियन्त्रण करने की कोशिश की, किन्तु सफल नहीं हुआ। इसके अलावा दूसरी ओर जब मैं इस विचार पर नियन्त्रण करने की कोशिश करता वह उतनी ही तेजी से मेरे मन में दृढ़ होते जाते। किम् बहुना! (इस विचार बिन्दु को जन्म कैसे दिया जाय?) इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये मैं अगले दिन नरेन्द्र नगर पहुँचकर राजभवन में गया। तत्कालीन महाराज श्री नरेन्द्रशाह मुझे अच्छी तरह जानते थे। गुहा से लगभग 1 मील (1½ कि०मी०) दूर गंगा के किनारे एक खूबसूरत भवन है, जब कभी भी महाराज इस क्षेत्र में आते हैं वहाँ आकर रुकते। जब कभी भी वे भवन में ठहरते थे, वे मुझसे मिलने गुहा भी आते थे। मैंने उनसे विद्यालय स्थापित करने के लिये प्रस्ताव रखा। वे एक प्राथमिक स्कूल स्थापित करने के लिये सहमत हो गये। धीरे-धीरे एक प्राथमिक स्कूल स्थापित हो गया।

मैंने बहुत ही आराम का अनुभव किया, किन्तु शीघ्र ही कुछ बड़े लोगों के आग्रह पर मैंने टेहरी सरकार से माध्यमिक विद्यालय स्थापित करने के लिये पत्राचार शुरू किया। आदेश जारी किये गये कि यदि भवन निर्माण का कार्य हम स्वयं करें तो सरकार माध्यमिक स्कूल की अनुमति प्रदान कर देगी। उन्होंने भवन की योजना भी मेरे पास भेजी। हमने चंदा माँगना शुरू किया। कुछ धन बिना किसी विशेष कोशिश के प्राप्त हो गया। हमें शासन से भवन के लिये लकड़ी मिल गयी। भवन निर्माण की सामग्री यथा, सीमेन्ट, चूना और लोहे के सरिये आदि प्राप्त करने के बाद निर्माण कार्य शुरू हो गया। तीन माह में एक बड़ा कमरा और उसके दोनों ओर एक-एक कमरा लगभग तैयार हो गया, उसमें दरवाजों, खिड़की, बरामदा और प्लास्टर का कार्य शेष रह गया था। प्राइमरी स्कूल में ही 6-7 तथा 8वें की कक्षा शुरू हो गयी। शासन ने तीन अध्यापकों की नियुक्ति कर दी। जितना धन संग्रहित हुआ था, सब व्यय हो गया। अतः काम को अस्थायी रूप से रोक दिया गया। मेरा शरीर कमजोर हो गया। पैर में दर्द बार-बार होने के

कारण, मैं उतना नहीं चल पाता था, जितनी मुझे आवश्यकता थी।

अब, क्या करना, यह शरीर भी समाप्त हो जाये, यह सोचकर मैं गुहा से दूर बाहर जाने के लिये विवश हो गया। अपने उपचार के लिये मैं कुछ दिन रामकृष्ण सेवा आश्रम हरिद्वार में रुका। वहाँ से दिल्ली और मद्रास होकर मैं कांचीपुरम पहुँचा और एक-दो माह नारायण सेवा आश्रम में रुका, जहाँ मैंने आयुर्वेदिक उपचार करवाये जैसे पिजिच्चिलो, किजिओ। मुझे कुछ आराम मिला। वहाँ से मैं कालहस्ती गया और प्रसिद्ध शिव मन्दिर में पूजा की और अन्य मन्दिर गया। जब मैं वहाँ आराम से रह रहा था, अचानक मुझे एक टेलीग्राम मिला, Badly ill, Come Soon. श्री आर०सी० शुक्ला, एम.बी.बी.एस. मेरे पुराने मित्र हैं। इतना ही नहीं, जब वह लखनऊ में माध्यमिक स्कूल में पढ़ते थे, वे कई बार गुहा आये थे। उन्हें मेरे प्रति विशेष भक्ति थी। जैसे ही मुझे टेलीग्राम मिला, मैंने सारे सोच-विचार और योजना बन्द कर दी और शीघ्र ही रेल से नागपुर के लिये रवाना हो गया। यह वर्ष 1949 था। वह नागपुर स्टेशन पर मेरा इंतजार कर रहे थे। वह बहुत बीमार दिखाई दे रहे थे। हम उनके घर पहुँचे। उनकी पत्नी और दो बच्चे उनके साथ रह रहे थे। बीमारी सुनकर उनके पिता भी वहाँ आ गये थे। वे सभी पूर्ण रूप से निराश थे। वह नागपुर मेडिकल स्कूल में मुख्य अध्यापक थे। उनका मासिक वेतन 400-500 रुपये था। यह रोग एक तरह की मिरगी थी, उन्हें मेरे ऊपर विश्वास था। मेरे आने के 2-3 दिन बाद उन्हें पूर्णतयः आराम मिल गया। मैं वहाँ और कुछ दिन रुका।

अब मुझे विभिन्न स्थानों से लगातार पत्र प्राप्त होने लगे। मेरी गुहा जाने की इच्छा नहीं थी। इन पत्रों में किये गये आग्रह के कारण ही मैं लखनऊ पहुँचा। मेरे सभी मित्रों को बहुत प्रसन्नता हुई। वहाँ से एक बार फिर मैं गुहा के लिये चल दिया। हमने स्कूल के निर्माण का कार्य पुनः प्रारम्भ किया और बच्चों ने नये भवन की कक्षा में जाना प्रारम्भ कर दिया।

वर्ष 1950 निश्चय ही बहुत स्मरणीय है। आजादी के लिये राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन चरम स्थिति में शान्तिपूर्ण, बिना उग्र हुए, अहिंसा के आधार पर, बिना किसी शत्रुता की भावना तथा बिना किसी हथियार या अस्त्र के प्राप्त करने का वर्ष नहीं था? राजा के माध्यम से शासित भारत के सभी छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य, भारतवर्ष में विलीन हो गये। टेहरी का राज्य उत्तर प्रदेश में मिला दिया गया और वहाँ के राजा नाम मात्र के राजा रह गये।

मालिकमुकलेरिय मन्नन्ते तोलिल मारापु केट्टुन्नतुम भवान

(यह वाक्य मलयालम की प्रसिद्ध आध्यात्मिक कविता "ज्ञान पान" से है, जिसकी रचना प्रसिद्ध कवि पून्तानम नम्बूदरी ने किया है।)

अर्थ :- "यह केवल आप ही हैं जो क्षण मात्र में ही राजा की अतुल्य शासन की शक्ति को समाप्त कर महल से सड़क का एक साधारण आदमी बना देते हैं और उसकी पीठ पर बोझ लादने को विवश करते हैं"।

अखण्ड हिन्दुस्तान अब दो हिस्सों में बंट गया। मुसलमानों को आवंटित भाग, पाकिस्तान बन गया। मैं नहीं समझता, उस दौरान भारतवर्ष में शैतानियत और दुष्टता का जो ताण्डव पूरे देश में विशेषकर पंजाब और पूर्वी बंगाल में हुआ, उसका वर्णन करना यहाँ आवश्यक है। एक ही क्षण में उस क्षेत्र के लाखों धनी जमींदारों को मजबूर होकर सड़कों पर आकर भीख माँगने के लिये विवश होना पड़ा। वस्तुएँ, सम्पदा, घर, जमीन, जिसे वे अपना समझकर गर्व करते थे, वह सब दूसरे के पास चला गया। किसी प्रकार अकल्पनीय कष्टों से गुजर कर विभाजित भारत में शरण के लिये आये और भारत सरकार ने पूरी सहृदयता के साथ उन्हें शरण और सहायता दी। मैं जब गुहा में था, इनमें से कुछ शरणार्थी आया करते थे। ये लोग भीख माँगने को छोड़कर जो भी कार्य कर सकते थे, वे अपने जीवनयापन के लिये करते थे। महात्मा गाँधी ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच सौहार्द एवम् एकता पैदा करने की बहुत कोशिश की। अन्त में वह भी नाम मात्र हो गया।

भवन निर्माण को पूर्ण करने का कार्य लगातार चल रहा है। टेहरी की महारानी ने भी कुछ दान दिया। कुछ कमरों को छोड़कर, लगभग सभी कमरे और बरामदा पूर्ण हो चुका था। कुछ सज्जनों की सहायता से, बिना कोई खास परेशानी के, भवन निर्माण का कार्य सम्भव हुआ।

वर्ष 1952 में रेलवे के एक महत्वपूर्ण अधिकारी मुझे अपने रेलवे सैलून (एक विशेष कोच) में बम्बई ले गये। पंडित हंसराज नागर भी मेरे साथ थे। हम बम्बई (मुम्बई) के मलबार हिल में एक बहुत खूबसूरत बंगले में पहुँचे। मैं यहाँ करीब एक माह तक रुका। प्रत्येक शाम को मैं समुद्र के किनारे पहुँच जाया करता था, समुद्र में स्नान करता, वहाँ कुछ देर रुककर तब वापस घर आता। मैंने महत्वपूर्ण मन्दिरों और अन्य स्थानों को देखा। मैं साधु और महात्माओं से भी मिला। मैं लखनऊ से होकर गुहा वापस गया।

वर्ष 1953 में मैं शिमला गया। वहाँ पर भी एक माह रुका। वहाँ पर मेरे स्वास्थ्य में कुछ सुधार आया। वहाँ से दिल्ली होता हुआ मैं लखनऊ पहुँचा। वहाँ कुछ दिन रुकने के बाद मैं पुनः गुहा वापस चला गया।

वर्ष 1953 में प्रयाग में पूर्ण कुम्भ पड़ा। प्राचीन प्रयाग वर्तमान में इलाहाबाद कहलाता है। यह हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ गंगा और यमुना का संगम है। पौराणिक मान्यता के अनुसार सरस्वती नदी यहाँ अदृश्य होकर बहती है और इन दो नदियों के साथ मिलती है। इस संगम स्थान (गंगा, यमुना और सरस्वती) को त्रिवेणी कहते हैं।

राशियों के 12 चिन्ह हैं। गुरु (बृहस्पति) को एक राशि से दूसरी राशि में पहुँचने में एक वर्ष लगता है। प्रयाग में कुम्भ (मेला) तब लगता है जब बृहस्पति मकर राशि में आता है। बृहस्पति मकर राशि में 12 वर्ष में एक बार आता है। अतः इस प्रकार पूर्ण कुम्भ नियमित रूप से 12 वर्ष के बाद आता है। इस पवित्र समय लाखों साधु, महात्मा और गृहस्थ तीर्थ यात्रा कर प्रयाग में त्रिवेणी के संगम स्नान करते हैं। दशनामी सन्यासी, वैरागी, उदासी, साधु और महात्मा, हिन्दू धर्मावलम्बी तथा अन्य धर्म (यथा बौद्ध, जैन आदि) त्रिवेणी संगम में गंगा के तट पर इकठ्ठा होते हैं और अपने टेण्ट या खुले में भी रहते हैं और स्वयं को भजन और अन्य आध्यात्मिक और धार्मिक कार्यों में लगाते हैं। माघ का महीना प्रयाग के लिये विशेष महत्व रखता है। गृहस्थ लोग भी सपत्नीक माघ में स्नान करते और रहते हैं। यह स्थान जहाँ पति-पत्नी एक अलग कुटी में या अस्थायी भवन बनाकर रहते हैं तथा सीमित भोजन खाकर, भजन गाते, पवित्र पुस्तकों का पाठ आदि करते हैं इसे "कल्प वास" कहते हैं। इस प्रकार के मेले प्रतिवर्ष

प्रयाग में लगते हैं। मैंने भी इस प्रकार का कल्प वास 4-5 बार किया है। त्रिवेणी संगम पर प्रवास बहुत ही खुशी और तरोताजगी लाने वाला होता है। बहुत सी बीमारियाँ इससे ठीक हो जाती हैं। कुछ अवसरों पर भी जब मैं पक्षाघात (रहयूमेटिक) दर्द से परेशान था, त्रिवेणी स्नान ने मुझे काफी आराम दिया।

इस वर्ष मौनी अमावस्या का दिन त्रिवेणी में डुबकी लगाने के लिये विशेष महत्वपूर्ण था। प्रधानमंत्री नेहरू, राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद, राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी और अन्य प्रमुख व्यक्ति वहाँ उस दिन आये थे। साधुओं और यात्रियों की भीड़ अनुमान से बहुत अधिक थी। पुलिस के नियन्त्रण और सुरक्षा में कमी के कारण हजारों तीर्थ-यात्रियों को भीड़ में फँसने से दुखद घटना का शिकार होना पड़ा। ऐसा हुआ कि कुछ लोग भीड़ के कारण जमीन पर गिर पड़े और जो पीछे से आ रहे थे, वे पीछे की भीड़ के कारण आगे बढ़ते गये और गिरे हुए लोगों के ऊपर होते हुए उन्हें पीसते हुए निकले, यह भी ध्यान न रहा कि नीचे गिरे लोग आदमी और औरत हैं। बहुत से लोग नदी में गिर गये। मैंने अपना स्नान बहुत जल्दी प्रातः किया था और अपने स्थान पर आकर बैठा था। बहुत से अधिकारी जैसे जिला अधिकारी एवं अन्य मुझे भली-भाँति जानते थे। 8-10 लोग मेरे साथ भी लखनऊ से आये थे। यह दुर्घटना करीब 8 बजे प्रातःकाल हुई। भगवान कौन सी चीजें करवाता है।

“घोरतरसंसारसागरत्तिन्केन्नेन्ने त्राणनम् चेय्तीटणे तारकब्रह्ममे”

(हे परमेश्वर आप तो संसार रूपी सागर से लोगों को पार करवाते हैं, कृपया मुझे संसार रूपी भयानक समुद्र से सुरक्षित रखो)।

प्रयाग से मैं लखनऊ वापस आ गया। मुझे कुछ बुखार और दर्द होने लगा, मैं शुक्ला घाट पर रुका। मैं चिकित्सा के प्रति उदासीन था। फिर भी मेरे सभी मित्र विभिन्न डाक्टरों और वैद्यों को लाये। मैं कुछ दिनों में बिल्कुल ठीक हो गया। मैंने शिवरात्रि इस वर्ष यहाँ मनायी। बरेली, मुरादाबाद और दिल्ली होकर मैं ऋषिकेश पहुँचा और वहाँ से मैं गुहा पहुँच गया।

(28)

दक्षिण की ओर

वर्ष 1951 में, मैं गुहा से दिल्ली आया। मैं एक सज्जन के घर पर कुछ दिन रुका। वहाँ से मैं शीघ्र ही मद्रास (वर्तमान चेन्नई) पहुँचा। मैं 6-7 दिन आराम से श्री रामकृष्ण मिशन के आश्रम में रुका। जब मैं समुद्र के किनारे नहाने के लिये जाया करता था तो कुछ छात्र मेरे साथ आया करते थे। वे प्रतिदिन आश्रम में भी आते थे। प्रत्येक रात्रि भोजन के उपरान्त वे सत्संग भी करते थे, जब मैं मद्रास जा रहा था तो रास्ते में मैंने कुछ दिन राजमंदरी के श्री रामकृष्ण आश्रम में विश्राम किया, मेरे एक मित्र श्री रामकृष्ण राव मुझे गोदावरी के डेल्टा* प्रदेश ले गये। यह स्थान बहुत ही चित्रात्मक था। यहाँ भी कई नारियल के वृक्षवृन्द थे। पहली दृष्टि में यह केरल की तरह दिखाई दे रहा था। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर है। इस मन्दिर की एक पौराणिक कहानी है जो निम्नवत् है -

“प्राचीन काल में यह स्थान एक घना जंगल था। पूर्वकाल में एक निर्धन ब्राह्मण सायंकाल को जंगल के अन्दर भटक गया। एक शेर ने उसका पीछा किया। वह ब्राह्मण एक बेल के वृक्ष के ऊपर चढ़ गया और शेर से बच गया। शेर उस पेड़ के नीचे लगातार खड़े होकर ब्राह्मण के नीचे उतरने की प्रतीक्षा करता रहा। ब्राह्मण ने पेड़ पर बैठकर स्त्रोत और जप करते हुए किसी तरह पूरी रात्रि बितायी। बेल पत्र से उसने पुष्पांजलि भी की। वह सारी फूल-पत्तियाँ शेर के ऊपर गिरी। ब्राह्मण ने सवेरे देखा, वहाँ शेर के स्थान पर शिवलिंग है। वह पेड़ से नीचे उतरा और शिवलिंग की पूजा की। नगर में आकर उसने नगर के लोगों को इस बात से अवगत कराया। वहाँ के लोग यह सुनकर आश्चर्य चकित हो गये और काफी संख्या में आकर शिवलिंग के दर्शन किये। उन्होंने वहाँ एक मन्दिर बनवाया। मेरी इच्छा थी कि मैं वहाँ कुछ दिन रुकूँ। किन्तु वह तुरन्त सम्भव न हो सका। मद्रास से मैं सीधे ओट्टप्पालम के श्री रामकृष्ण आश्रम पहुँचा। इस आश्रम के संस्थापक स्वामी निर्मलानन्द जी ने अब समाधि ले ली थी।

स्वर्गीय स्वामी जी ने अपने अन्तिम दिन ओट्टप्पालम् के आश्रम में बिताए। अतः इस आश्रम का विशेष महत्व है। मैं यहाँ एक रात्रि रुक

*नदी, समुद्र में मिलने से पहले, कई छोटी-छोटी धाराओं में विभक्त हो जाती और उनके बीच के प्रदेश को डेल्टा प्रदेश कहते हैं।

सका। श्री कुण्डू पन्निक्कर ऐसे व्यक्ति थे जो मुझसे अत्यधिक स्नेह रखते थे। उन्हें ओट्टप्पालम् में मेरे आने की जानकारी प्राप्त हुई। तुरन्त उनका प्रिय पुत्र मुझे ओट्टप्पालम् से अपने घर ले जाने के लिये अपनी कार लेकर आया। जब मैं चेरुप्पुलशेरी पहुँचा, तो श्री पन्निक्कर, उनकी पत्नी और बच्चे बहुत खुश हुए। मैं वहाँ तीन दिन रुका। पन्निक्कर कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे, बहुत से रोगों से ग्रसित होने के उपरान्त भी उनके चेहरे पर मुस्कराहट रहती थी, वह अपनी बैठने की स्थिति में बदलाव या हाथ पैर घुमाना, बिना दूसरे की सहायता के नहीं कर सकते थे। जब वे मुझे देखते थे तो उनमें एक विशेष शक्ति आ जाती थी। वह अपने बिस्तर पर स्वयं बैठते। पास के अय्यप्पा मन्दिर में भागवत पाठ (पारायणम्) हो रहा था। वहाँ के मुख्य लोगों ने निवेदन किया कि मैं उस समारोह में भाग लूँ। जब मैं कार से मन्दिर जाने लगा, श्री पन्निक्कर भी मेरे साथ गये। अब वह सज्जन नहीं हैं। समय सबको समाप्त करता है किन्तु कोई भी इस सत्य को अनुभव नहीं करता, इससे अधिक आश्चर्य और विचित्र बात और क्या हो सकती है।

एक महान देशभक्त कुंजिक्कम्म को वहाँ से साथ लेकर मैं एक रात्रि कार से ओट्टप्पालम् के आश्रम पहुँचा। पलाटु परु—कुट्टी अम्मा, जीवन भर श्री स्वामी जी की परम भक्त रहीं। रास्ते में मैं उस भद्र महिला के घर गया। मेरे मित्र श्री चिन्मयानन्द स्वामी जी अब आश्रम में रह रहे थे। वह मुझे स्वामी जी के पूर्व आश्रम में ले गये। भारतपुजा पार करने के बाद हम लोग मुख्य रूप से पैदल चले। हम लोगों ने रास्ते में परुत्तिप्पली में कुछ सज्जनों की सेवाएँ स्वीकार कीं। मैंने एक—दो दिन देवी माँ के मन्दिर में भी गुजारे, तब पालियत्तु चेरिय—अच्छन अपने घर ले गये। उनके अलग बने घर के ऊपर के भाग में दो—तीन दिन हमने आराम से बिताए। उनकी बेटियों को संगीत का विशेष ज्ञान था। मैं हर्षपूर्वक आज भी उनके भक्तिपूर्ण कीर्तन (गीत) के मधुर संगीत की याद करता हूँ। उन्होंने बहुत से मन्दिर बनवाये थे। उनमें से एक मन्दिर के बारे में मैं बताना चाहता हूँ जो यहाँ से 3 मील (5 कि०मी०) दूर है। उस मन्दिर से कई लोग मेरे पास आये और भजन, संगीत और नगाड़े (झ्रम) बजाते हुए मुझे अपने साथ मन्दिर ले गये। यहाँ कोई भी हिन्दू बिना किसी जाति—पाँति के भेदभाव के पूजा कर सकता है। यह एक खूबसूरत स्थान है। वहाँ एक रात्रि बिताने के बाद मैं अच्छन की कोठी में वापस आ गया तब श्री दामोदरम नायर बी.ए.बी.एल. वकील मुझे पालक्काडु ले गये। उनके द्वारा एक आश्रम “विज्ञान रमणीयम्” की स्थापना की गयी। वहाँ के कई सज्जन बराबर

आश्रम आते थे और ध्यान तथा अन्य धार्मिक कार्य करते थे। उससे जुड़ा एक छोटा सा पुस्तकालय था। वहाँ दो दिन व्यतीत करने के बाद मैं कार से सीधे गुरुवायूर चल दिया। दामोदरन नायर, स्वामी ज्ञानानन्द जी और साधु बलराम जी भी मेरे साथ थे। रास्ते में हम कुछ स्कूलों में भी गये। हम गुरुवायूर रात्रि 8 बजे पहुँचे। मन्दिर के अधिकारियों ने हमें आवश्यक सहायता और सुविधा प्रदान की। भगवान के दर्शन करने के उपरान्त खाना खाया और फिर बाद में मन्दिर के भवन में विश्राम किया। साधु बलराम जी भी मेरे साथ रुके, दूसरे लोग कार से पालक्काडु के लिये वापस लौट गये।

(29) दक्षिण तीर्थ यात्रा

अगले दिन प्रातः मैं पास के मम्मियूर मन्दिर गया, वहाँ स्नान आदि किया। यह एक एकान्त स्थल है। अतः मैंने वहाँ ध्यान किया। उसके बाद गुरुवायूर में गुरुवायुरप्पन के दर्शन किये और अपने विश्राम स्थल को वापस हो लिया। बहुत से लोग वहाँ मुझसे मिलने आये। भोजन की सामग्री मन्दिर से आती थी। वहाँ के तत्कालीन प्रबन्धक सेवानिवृत्त न्यायाधीश श्रीकृष्ण नायर के गहरे मित्र थे। श्री नायर ने, मेरे बारे में, उन्हें पहले से ही लिख दिया था। प्रबन्धक महोदय ने मेरे लिये मन्दिर के समीप बहुत अच्छी और सुविधाजनक स्थान में व्यवस्था की। मैं वहाँ मात्र 3 दिन रुका। मन्दिर प्रबन्धक के कहने पर दो दिन भोजन हाल में मैंने धार्मिक प्रकरणों पर व्याख्यान दिया। चौथे दिन प्रातः 8 बजे मैं त्रिचूर के लिये निकल गया। कुंजिक्कम्म, जानकी अम्मा और साधु बलराम जी मेरे साथ थे। 10 बजे हम लोग त्रिचूर में श्री रामकृष्ण आश्रम में पहुँच गये। उस आश्रम के प्रबन्धक स्वामी ईश्वरानन्द जी थे। वह बहुत प्रसन्न हुए। आश्रम से सटा हुआ एक हाईस्कूल तथा शारदा मन्दिर है। मैं उस सबमें गया। शाम को मैंने यहाँ भी प्रवचन दिये। तीसरे दिन मैं एर्नाकुलम् के लिये चल पड़ा। एर्नाकुलम् में एक सज्जन की सेवाएं स्वीकार करते हुए मैं वैट्टिला के श्री रामकृष्ण आश्रम पहुँचा, वहाँ के मुख्य कर्ता-धर्ता श्री पुरंजनानन्द स्वामी जी थे। यह एक सुन्दर स्थान है। यहाँ की कार्य प्रणाली बहुत व्यवस्थित और सुचारु रूप से चल रही है। इस आश्रम के साथ एक औषधालय भी है। यहाँ निर्धन रोगियों को मुफ्त दवाएँ दी जाती हैं। मैंने यहाँ भी प्रवचन दिया था। कोज़िकोट्टे के आश्रम के अध्यक्ष श्री निर्विकारानन्द स्वामी जी वहाँ कुछ लोगों के साथ आये हुए थे। उनकी इच्छा के अनुसार मैंने कई लोगों को मंत्रोपदेश दिये। 3 दिन तक मैं यहाँ आराम से रुका।

तिरुवनन्तपुरम से स्वामी जी के भक्त शंकर वेलिल हाउस के परमेश्वरन पिल्लइ के पत्र अक्सर प्राप्त होते रहते थे। उनकी प्रिय पत्नी भी स्वामी जी की शिष्य थी। वह उस समय रोग से ग्रस्त होने के कारण बिस्तर से लगी थीं। पूर्व में अपने पति और दो बच्चों के साथ वह वसिष्ठ गुहा के पास निर्मलालय में 6-7 दिन रुकीं थीं। वह मुझे देखने की बहुत इच्छुक थीं अतः एक दिन प्रातः मैं आश्रम से तिरुवनन्तपुरम के लिये बस से चल पड़ा। कुंजिक्कम्म, साधु बलराम जी और एक गृहस्थ श्री रमण

नायर भी मेरे साथ थे। हम लोग दोपहर को तिरुवनन्तपुरम पहुँचे। बस स्टैण्ड से हम लोग श्री परमेश्वरन पिल्लइ के घर पहुँच गये।

मैं बिस्तर पर पड़े रोगी की प्रसन्नता को शब्दों में वर्णित नहीं कर सकता। उसने सबसे पहले मुझे देखा था। यद्यपि वह बिस्तर से लगी थीं, मुझे देखते ही अचानक बैठ गयीं। उस समय श्री पिल्लइ तथा उनके दो पुत्र और पुत्रियाँ वहाँ थे। वहाँ मैंने स्नान करके आराम किया। सभी लोगों का वहाँ रुकना सुविधाजनक नहीं था। जो लोग मेरे साथ वहाँ तक आये थे, उनकी कन्याकुमारी जाने की इच्छा थी। पिल्लइ की कार से हम करीब 9 बजे रात्रि को कन्याकुमारी के एक सत्र (धर्मशाला) में पहुँचे। अगले दिन अभावस्था थी। बहुत से लोग समुद्र में स्नान के लिये एकत्रित हुए थे और हम लोगों को माँ देवी की पूजा के लिये ठहरने का स्थान प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। यहाँ भी मन्दिर के अधिशासी अधिकारी की सहायता से हमें रुकने का उपयुक्त स्थान मिल गया। हम लोग 3 दिन रुके, समुद्र स्नान और देवी माँ के दर्शन किये। मेरे मित्र और सहपाठी श्री प्रणवानन्द स्वामी जी वहाँ रुके हुए थे। वे मेरे साथ गुहा में भी रुके थे। एक शाम को जब हम तिरुवनन्तपुरम के लिये चले वह भी हमारे साथ आये। थोड़ी देर शुचीन्द्रम् में आराम करने के बाद हमने अपनी यात्रा जारी रखी। जब हम लोग तिरुवनन्तपुरम बस स्टैण्ड पहुँचे, रात्रि का 10 बज रहा था। वहाँ से हम सभी लोग शहर के श्री रामकृष्ण आश्रम गये। वहाँ के प्रबन्धक स्वामी तपस्यानन्द जी ने हम लोगों का स्वागत किया और हर्ष पूर्वक हमें हर प्रकार का सहयोग एवं सुविधा दी। मेरे साथ जो अन्य लोग थे, वे अपने-अपने स्थानों के लिये चल दिये। केवल साधु बलराम जी मेरे साथ आश्रम में रुके।

तिरुवनन्तपुरम में श्री स्वामी जी द्वारा स्थापित वट्टियूरकावु के श्री रामकृष्ण आश्रम गया और वहाँ 2-3 दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए। यह निश्चय ही एक सुरम्य स्थल है। तपस्या के लिये उपयुक्त स्थान है। जब मैं वहाँ रुका हुआ था, स्वामी तपस्यानन्द जी भी वहाँ आ गये। उनके द्वारा ही आश्रम के सारे व्यय आदि की व्यवस्था पूर्ण होती है।

एक युवक श्रीनिवासन, जो मुझसे मद्रास आश्रम में मिला था और मुझसे जान पहचान हो गयी थी, वह भी मुझसे वट्टियूरकावु आश्रम में मिलने आया। बहुत से सज्जन तिरुवनन्तपुरम शहर से मुझसे मिलने आया करते थे। उनकी इच्छा के अनुसार मैं तिरुवनन्तपुरम के लिये रवाना हो गया। मैं श्री नारायण पिल्लइ मुख्य चिकित्सक, धन्वंतरि मठम् आयुर्वेदिक

औषधालय के घर पर रुका। पदमनाभस्वामी के मन्दिर जाकर मैंने "अनन्तशयनम्" (विष्णु जी) के दर्शन किये।

तिरुवनन्तपुरम में यहाँ के शासक श्री चित्तिरा तिरुनाल के नाम से हिन्दू धार्मिक पुस्तकालय है। उसके सुरक्षा अधिकारी (क्यूरेटर) श्री शेषाद्रि बी.ए.एम.एल. थे। मैं पुस्तकालय तथा व्याख्यानशाला गया, जहाँ मैंने एक-दो दिन व्याख्यान दिया। मेरे श्रद्धेय डा० तम्पी अब बहुत अस्वस्थ थे। वे अब तिरुवनन्तपुरम में समुद्र के किनारे एक बंगले में रह रहे थे। उनकी पत्नी भी वहाँ थीं और अपने रुग्ण पति की भक्तिपूर्वक सेवा कर रहीं थीं। उनके पुत्र डा० केशव नायर चिकित्सा अधिकारी थे। एक रात्रि मैं उनके समुद्र के किनारे वाले घर गया और वहाँ रुका। डा० तम्पी तिरुवितांकूर राज्य में श्री रामकृष्ण संघ की रीढ़ रज्जु (बैक बोन) तथा प्रमुख संरक्षकों की स्थापना कड़ी में से एक थे। निश्चय ही वे इस खराब स्वास्थ्य अवस्था के भागी नहीं थे, भगवान उन्हें शान्ति प्रदान करें।

श्री एम०आर० नारायण पिल्लइ, जो स्वामी जी के सर्वाधिक प्रमुख अनुयायियों में से एक थे, भी इस दुनियाँ से कूच कर गये, मात्र अपना नाम छोड़ गये। शंकर वेलिल हाउस के श्री परमेश्वरन पिल्लइ के साथ मैं स्वर्गीय नारायण पिल्लइ के घर गया और उनकी पत्नी, बच्चों और अन्य लोगों से मिला। मैंने कुछ सज्जनों की सेवायें भी प्राप्त की। मेरा धनवन्तरि मठम् में प्रवास निश्चय ही बहुत सुखद और हर्ष पूर्ण रहा। यहाँ से मैं धनवन्तरि मठ के चिकित्सक की कार से चेङ्गन्नूर के लिये निकला। रास्ते में मैं सदानन्द आश्रम भी गया। फिर मैंने अडूर में करुणाकरन नायर के घर जाकर खाना खाया और आराम किया। वहाँ से मैं श्री रामकृष्ण आश्रम गया। वहाँ मैं स्वामी नरसिम्हानन्द जी से मिला।

लगभग 4 बजे दोपहर को मैं चेङ्गन्नूर मंदिर के सामने के प्रवेश द्वार पर पहुँचा। जब उस रात्रि मैं रुकने के लिये मैं वहाँ आवश्यक प्रबन्ध कर रहा था, तभी वहाँ वैद्यराज नारायण पिल्लइ आरन्मुला से कार में चेङ्गन्नूर आये और मेरे सहयोगियों सहित मुझे अपने साथ ले गये। मन्दिर में दर्शन करने के बाद मैं उनके घर पर रुका।

पुल्लाडु वैद्य नारायण पनिकर का पुत्र वासु पिल्लइ भी वहाँ आया हुआ था। अगले दिन उनका पुत्र हम सबको पुल्लाडु में अपने घर ले गया। मैं वहाँ 2-3 दिन रुका। मैं वैद्य के हाईस्कूल में गया और बच्चों को सलाह के कुछ शब्द कहे।

एक प्रातः पुल्लाडु से चलकर करीब 10 बजे मैं तिरुवल्ला आश्रम

पहुँचा। शेखरानन्द स्वामी जी इस आश्रम के मुख्य कर्ता-धर्ता थे। निरंजनानन्द स्वामी जी, वागीश्वरानन्द स्वामी जी, निर्विकारानन्द स्वामी जी, धर्मानन्द स्वामी जी और अन्य लोग वहाँ ठहरे हुए थे। यहाँ मैं भी प्रसन्नतापूर्वक 3 दिन रुका। मैं तिरुवल्ला मन्दिर गया और श्री बल्लभ की पूजा की। देवस्वम् मुख्य (त्रवणकोर राज्य के मन्दिरों के प्रशासनिक विभाग के अध्यक्ष) श्री रमण नम्बूदरिपाद से मेरी जान-पहचान मेरे तिरुवनन्तपुरम प्रवास में हुई। वे आश्रम आये और मुझे स्थानीय हिन्दू हाई स्कूल में ले गये। मैंने छात्रों को सलाह के दो शब्द कहे। मेरी हिन्दू स्कूल स्थापित करने की बड़ी इच्छा थी और मैंने इसके लिये प्रयास भी किये थे। मेरी उस इच्छा को मूर्तरूप अब दूसरों के द्वारा दिया गया था। वहाँ से नम्बूदरिपाद मुझे चेङ्गन्नूर मन्दिर ले गये। वहाँ पंबा नदी में स्नान करके मैंने देवी पार्वती-परमेश्वर के दर्शन किये और तिरुवल्ला वापस आ गया। निर्विकारानन्द स्वामी जी की मां का निमंत्रण स्वीकार करके मैं मावेली मठ गया। मैंने विशेष रूप से उस घर में चल रहे नाम-संकीर्तन का आनन्द उठाया। वहाँ से भिक्षा लेकर रात्रि में ही तिरुवल्ला आश्रम लौट गया और आराम किया। मैंने तेवणकोट्टु में भी नम्बूदरिपाद के घर पर भिक्षा स्वीकार की। सुदेवन नाम के एक सज्जन तिरुवल्ला आश्रम में मुझसे मिलने आये और उन्होंने आध्यात्मिक विषय पर मुझसे अभिमत प्राप्त किया।

सुहृद्यों के बीच से गुहा की ओर

बद्रीनाथ मन्दिर की पूजा को सम्पन्न करने का विशेषाधिकार केवल केरल के नम्बूदरि ब्राह्मण को ही है। पूजा करने वाले ब्राह्मण ब्रह्मचारी ही होते हैं। रीति के अनुसार महाराजा टेहरी, महाराजा (त्रवणकोर तथा कोचीन) से विशेष अनुरोध करके उपयुक्त प्रतिभागियों में से एक का चयन करके, भेजने को कहते हैं। ये पुजारी 'रावल' नाम से जाने जाते हैं और रीति-रिवाज के अनुसार आदर देने के लिये उन्हें "रावल साहब" कहकर सम्बोधित किया जाता है। गोविन्दन नम्बूदरि, जो केरल के तलवड़ी क्षेत्र में अब रह रहे हैं, एक ऐसे ही रावल थे। जब मैं बद्री में था तब से मेरा उनसे अच्छा परिचय था। वह मुझसे मिलना चाहते थे, अतः मुझे अपने घर आने का निमंत्रण दिया। मैं पानी के रास्ते छोटी नाव से गया। श्रीनिवासन और साधु बलराम जी भी मेरे साथ थे। रावल ने स्वयं मुझे लेने के लिये नाव भेजी थी। 3 बजे दोपहर तिरुवल्ला छोड़कर मैं 5 बजे शाम को तलवड़ी पहुँच गया। उस समय नदी में बाढ़ आयी हुई थी और रावल का घर पानी से चारों ओर घिरा हुआ था।

रावल साहब बहुत प्रसन्न थे। मैंने वहाँ प्रसन्नता पूर्वक रात्रि बिताई। सच कहें तो यह एक तरीके से बहुत ही असुविधाजनक स्थान था। किन्तु अच्छे दिल के मालिक होने के कारण और उत्कृष्ट व्यवहार के कारण मैं सब कुछ भूल गया और वहाँ प्रसन्नता पूर्वक रहा। अगले दिन दोपहर को भोजन के बाद मैं नदी में नाव के माध्यम से करीब 5 बजे शाम को हरिप्पाट्ट के श्री रामकृष्ण आश्रम पहुँच गया।

आश्रम के मुख्य कर्ता-धर्ता स्वामी चित्सुखानन्द जी थे। उनकी हृदय के साथ की गयी प्रेम भरी सेवाओं को स्वीकार करते हुए मैं वहाँ एक दो दिन रुका। चित्प्रभासानन्द स्वामी जी ने भी बड़े सौहार्द के साथ मुझे रखा। बचपन से ही मैं अधिकाधिक मन्दिरों में जाया करता था। रीति के अनुसार मैंने सुब्रह्मण्यम् स्वामी की हरिप्पाट्ट मन्दिर में पूजा की। वहाँ मण्डप में बैठकर कुछ समय ध्यान और जप किया, मन्दिर का प्रसाद ग्रहण कर, मैं रात्रि को स्वामी चित्सुखानन्द जी के साथ हरिप्पाट्ट के आश्रम में वापस आ गया।

हरि कथाएँ पहले भी आयोजित की जाया करती थी, किन्तु आजकल

हरि कथाओं के सम्पादन करने में उनकी विषयवस्तु और स्वभाव में परिवर्तन आया है। आश्रम में हरि कथाओं के सम्पादन के बीच मैंने छोटी लड़कियों के द्वारा किया गया गीत और नृत्य भी देखा।

आश्रम से, थोड़ा सा दूर, एक भट्टतिरि (मलयालम नम्बूदरि ब्राह्मण) का घर है। तिरुवल्ला के कुजिक्काटु नम्बूदरि बहुत प्रसिद्ध थे। उन्हें 'तन्त्री' भी कहा जाता था, क्योंकि वे कुछ मन्दिरों में तान्त्रिक क्रियाएँ सम्पन्न करवाते थे। सभी लोग उनका आदर किया करते थे। उनमें से एक कुजिक्काटु भट्टतिरि का घर हरिप्पाट्ट में था। उसके निवेदन पर मैं उसके घर गया। मैंने धर्म के विषय पर, वहाँ कई व्याख्यान दिये। सभी लोग प्रसन्न थे। अगले दिन मैंने और मेरे आश्रम के साथियों ने वहाँ भिक्षा स्वीकार की।

चित्सुखानन्द स्वामी जी के देखरेख में हरिप्पाट्ट आश्रम के अतिरिक्त मुट्टम् और कायंकुलम में भी रामकृष्ण आश्रम की स्थापना की गयी। जब मैं गुहा में रहता था, लोग समय-समय पर मेरे पास आकर रुकते थे। कायंकुलम के निकट मनकुजी का एक युवक भी ऐसा ही एक व्यक्ति था। उसका नाम बालानन्द था। वह बहुत दिनों से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। हरिप्पाट्ट आश्रम से मैं मुट्टम् आश्रम पहुँचा। वहाँ मैं दो-तीन दिन रुका। बालानन्द जी वहाँ आ गये और वहाँ से कायंकुलम आश्रम होकर अपने घर ले गये। अब वह समय आया, जब मैं प्रसिद्ध ओच्चिरा को देख सका। बालानन्द स्वामी जी ओच्चिरा में एक आश्रम निर्मित करना चाहते थे। जब मैं बालानन्द स्वामी जी के साथ रुका था, तो मुट्टम् आश्रम के मुख्य मुझे कार से अपने आश्रम ले गया। मैंने 3-4 दिन वहाँ बहुत प्रसन्नता पूर्वक गुजारे।

जब मैं वहाँ था, उस समय घटित एक घटना को अवश्य ही वर्णित करना चाहूँगा। एक दिन दोपहर लगभग 2 बजे, मैंने लगभग 7 वर्ष के छोटे बच्चे को देखा। जिस क्षण मैंने उसको देखा, मेरे मन में उसके प्रति विशेष स्नेह उत्पन्न हुआ। बच्चे को भी मेरे प्रति स्नेह उपजा। उस समय वहाँ सत्संग चल रहा था। मैंने जो कुछ कहा, उसका पालन करते हुए बच्चा मेरे पास जमीन पर बैठ गया और ध्यान करना शुरू कर दिया। उसके चेहरे पर विशेष चैतन्य था। वह उस 'ज्ञान' की स्थिति में उसी प्रकार 10-15 मिनट बैठा रहा। न केवल मैं बल्कि सभी लोगों को हर्ष और आनन्द का अनुभव हुआ। बच्चे का नाम भक्तवत्सलन था। उसके पिता पेरियमनइल्लम के नम्बूदरि थे। वह हरिप्पाट्ट में राजकीय विद्यालय में

अध्यापक थे। मैं उस बच्चे के साथ पेरियमनइल्लम भी गया। उन्होंने पूर्ण आदर के साथ मेरी सेवा की। यद्यपि भक्तवत्सलन एक नायर ही था, तद्यपि उसके मुख मण्डल पर विशेष ब्राह्मण आभा (चमक) थी। क्या उसके पिता एक ब्राह्मण नहीं थे? इतना ही नहीं, इस परिवार के लोग पिछले कई वंश से अपनी पुत्रियों का विवाह ब्राह्मणों से करते थे।

शूद्रायाम् ब्राह्मणज्जातः

श्रेयसा चेत ब्रजायते

अश्रेयात् श्रेयसिम् जातिमृगच्छत्या सप्तमाद् युगात्

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्

मनु स्मृति के इस वाक्य के अनुसार, यह बच्चा निश्चय ही ब्राह्मण पुत्र है। मैंने यह बात उसके पिता को बताई। मैंने आग्रह किया कि इस बच्चे को गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाय और इसका उपनयन (यज्ञोपवीत धारण) संस्कार किया जाय। उसके पिता ने मेरे सुझाव को नकारा नहीं, किन्तु साथ ही उसमें इतना साहस नहीं था कि वह अपने पारम्परिक रीति-रिवाजों के विरुद्ध जाये। यह कुछ भी हो, इस में कोई शंका नहीं कि वह भक्त वत्सलन निश्चय ही एक सौभाग्यशाली बच्चा है।

यहाँ (मुट्टम्) से मैं बालानन्द स्वामी जी के साथ कायंकुलम् होकर प्रसिद्ध स्थान ओच्चिरा गया। सर्वशक्तिमान भगवान निश्चय ही अपने भक्तों के प्रति स्नेह रखता है। यहाँ यह एक प्रसिद्ध कथा है। एक ब्राह्मण के एक ईश्वर भक्त सेवक के सामने भगवान एक भैंसे के रूप में प्रकट हुए थे। वे उस सेवक के सारे बोझ को अपने ऊपर लेकर बहुत सहनशीलता के साथ चले। मैं इस प्रसिद्ध स्थान को पहली बार देख रहा हूँ। मैं इधर-उधर 2-3 दिन बालानन्द स्वामी जी के साथ रुका और फिर मुट्टम् के आश्रम वापस लौट गया। दो-तीन दिन वहाँ रुकने के बाद मैं चेङ्गन्नूर को चल दिया।

कुछ सज्जनों ने मुझे चेङ्गन्नूर में विशेष रूप से आमंत्रित किया। आने जाने की सुविधा, उपयुक्त रुकने का स्थान, पानी की सुविधा और अन्य आरामदायक सुविधाओं ने चेङ्गन्नूर में रुकने की ओर आकर्षित किया। मैं मन्दिर के एक भवन में 2-3 दिन रुका। मैं मन्दिर में नियमित रूप से जाता था। एक-दो दिन मैंने आध्यात्मिक विषय पर व्याख्यान दिये। वहाँ से मैं कवियूर गया। वहाँ मैंने प्रसिद्ध पार्वती नारायण पिल्लड का आतिथ्य ग्रहण किया और उनके घर रुका और यहाँ भी मन्दिर में दर्शन किया। मैं वहाँ भी हाई स्कूल गया और छात्रों को सलाह के कुछ शब्द

कहे। श्री माधवन रमण पिल्लड, स्कूल निरीक्षण, कवियूर से मुझे अपने साथ घर ले गये। वहाँ से पुनः एक बार तिरुवल्ला लौटा।

बालानन्द स्वामी जी कायंकुलम् के निकट सेवा आश्रम के लिये एक छोटा सा भवन निर्माण कर रहे थे और निर्माण कार्य अपने अन्तिम चरण पर था। उन्होंने मुझे शुभारम्भ समारोह सम्पन्न करने के लिये बुलाया। यह वह समय था, जब मैं केरल यात्रा को समाप्त करके उत्तर भारत लौटने की तैयारी कर रहा था, किन्तु उनकी इच्छा पूर्ति के लिये मैं पुनः मुट्टम् से होकर सेवा आश्रम गया। चित्सुखानन्द स्वामी जी विशेष रूप से हरिष्पाद से मेरे साथ आये। शुभारम्भ समारोह में भाग लेने के बाद अगले दिन मैं बस से आलप्पुज्जा गया और स्टीम बोट से रात्रि एर्नाकुलम गया। रात्रि एक सज्जन के घर पर गुजारी। मैं अगले दिन थोड़ी दूर पर स्थित वैट्टिला के श्री रामकृष्ण आश्रम गया। 2-3 दिन आराम करने के बाद मैं कालडी पहुँचा। यह श्रीमद् आदि शंकराचार्य का जन्म स्थान है। कालडी में अब श्री रामकृष्ण आश्रम है और उसके साथ एक हाई स्कूल है। उसके मुखिया अगमानन्द स्वामी जी थे। मैं उनसे बहुत समय बाद मिल रहा था। वहाँ 2-3 दिन सुख से रहने के बाद मैं श्री रामकृष्ण आश्रम पुत्तुक्काडु के लिये चल पड़ा। यहाँ के मुखिया स्वामी अमलानन्द जी थे। मैं उनके विशेष आग्रह के कारण वहाँ गया। वहाँ मैंने उनके एक शिष्य को सन्यास की दीक्षा दी। वहाँ से एक बार फिर मैं त्रिचूर आश्रम गया। मैंने आश्रम के लोगों से कहा था कि कन्याकुमारी से लौटते समय मैं एक बार फिर आश्रम आऊँगा। ईश्वरानन्द स्वामी जी मेरे पुनः आश्रम आने से बहुत प्रसन्न हुए। मैं वहाँ एक-दो दिन रुका और मैंने अध्यात्म के विषयों पर विचार-विमर्श भी हुआ।

कोज़िकोट्टे में बहुत से लोग उत्सुकतापूर्वक मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। विशेष रूप से स्वामी निर्विकारानन्द जी त्रिचूर से कोज़िकोट्टे पहुँचे। मैंने कोज़िकोट्टे में कई व्याख्यान दिये। वहाँ से मैं चेरुप्पुल्लशेरी में श्री कुण्डू पन्निक्कर के घर गया। वह उत्सुकतापूर्वक मेरे आने का इन्तजार कर रहे थे। वहाँ मैं एक दो दिन रहकर एक बार पुनः ओट्टुप्पालम गया। कुंजिक्कम्म, श्री कृष्णन नायर और चिन्मयानन्द स्वामी जी भी मेरे साथ थे। रास्तों में हम लोग कुंजिक्कम्म के घर गये। एक बार वह भक्तिमय माँ वसिष्ठ गुहा भी आयी थी। एक जानकी अम्मा भी वहाँ पास में रहती थीं। एक दिन रात्रि हम उनके घर में भी रहे। अगला दिन 8 सितम्बर था। दिव्य जीवन संघ (डिवाइन लाइफ सोसाइटी) के लोग स्वामी शिवानन्द जी की जन्म तिथि मना रहे थे। मैंने भी उस समारोह में भाग लिया। वहाँ

से चलकर अगले दिन प्रातः 10 बजे हम लोग ओट्टप्पालम् के श्री राम कृष्ण आश्रम पहुँचे और आराम किया।

मद्रास आश्रम के अध्यक्ष स्वामी कैलाशानन्द जी थे। केवल उन्होंने ही नहीं आश्रम के अन्य लोगों ने भी उत्तर भारत की ओर लौटने पर एक बार आश्रम आने के लिये विवश किया था। उनकी इच्छा का आदर करते हुए मैं दोबारा मद्रास आश्रम आया था। मैं वहाँ एक-दो दिन रुका। रेलगाड़ी में सीट मिलना मुश्किल काम था। मैं सुखानन्द स्वामी जी से इस अवसर पर नहीं मिल सका। वे कांचीपुरम् आश्रम के मुखिया थे। मैं कुछ युवकों के साथ वहाँ गया था। मैं वहाँ नारायण सेवा आश्रम भी गया। कांचीपुरम् आश्रम में दो-तीन दिन रुकने के बाद मैं मद्रास लौट गया और फिर रेलगाड़ी से लखनऊ पहुँचा।

अब मुझे कुछ रोग हो गया। मैं शुक्ला घाट पर ही कुछ दिन रुका। जब मेरा स्वास्थ्य सामान्य हो गया तो मैंने गुहा की ओर प्रस्थान किया और गुहा में आराम से रह रहा हूँ।

(31)

ज्ञानोपदेश

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो घृत्यात्मानं नियम्य च।

शब्दादीन्विषयास्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥ 1

विविक्त सेवी लघ्वाशी यतवाक्काय मानसः।

ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ 2

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ 3

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मदभक्तिं लभते पराम्॥ 4

भक्त्या मामभि जानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥ 5

श्रीमद भगवद् गीता "मोक्ष सन्यास योग" (श्लोक 51-55)

(भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं — हे अर्जुन! विशुद्ध (शुद्ध हो चुकी) बुद्धि से युक्त, एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करने वाला तथा मिताहारी (हल्का और अल्पाहार करने वाला) मन और वाणी को जो जीत चुका हो (मन और वाणी पर पूर्ण नियन्त्रण) ऐसे शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार से प्राप्त हुआ पुरुष निरन्तर ध्यान योग से परायण हुआ, सात्त्विक धारणा से अन्तःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्यागकर और राग द्वेषों को नष्ट करके। (1, 2)

तथा अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रह को त्याग कर, ममता रहित और शान्त अन्तःकरण हुआ, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकी भाव होने के लिये योग्य होता है। (3)

फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकी भाव से स्थित हुआ प्रसन्नचित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिये शोक करता है और न किसी की आकांक्षा करता है एवं सब भूतों में समभाव हुआ मेरी पराभक्ति (जो तत्त्वज्ञान की पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहा जाता वही, यहाँ पराभक्ति, ज्ञान की परानिष्ठा, परम नैष्कर्म्य सिद्धि और परम सिद्धि इत्यादि नामों से जानी जाती है) प्राप्त होता है। (4)

और उस परा भक्ति के द्वारा, मेरे को तत्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूँ तथा उस भक्ति से मेरे को तत्व से जानकर तत्काल ही मेरे में प्रवेश हो जाता है। अर्थात् अनन्य भाव से मेरे को प्राप्त हो जाता है, फिर उसकी दृष्टि में मुझे वासुदेव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता। अर्थात् वह मुझमें रमण करता है। (5)

जब भी मैं श्रीमद् भगवद् गीता को पढ़ना शुरू करता हूँ, तो उपरोक्त लिखित भाग पर विशेष रूप से ध्यान देता था। वसिष्ठ गुहा ऐसे जीवन को जीने के लिये उपयुक्त स्थान है। यहाँ आने तथा यहाँ निरन्तर रहने के सौभाग्य को क्या कह सकता हूँ, सब भगवान की कृपा है। मेरे मन की आन्तरिक भावनाएँ जब भी बलवती होकर मुझे कुछ करने के लिये उकसाती, तो इस गुहा ने मुझे बचाया है। ऐसा नहीं है कि विषयासक्ति ने मुझे गलत मार्ग पर चलने के लिये उकसाया न हो, किन्तु मैंने अपनी जननेन्द्रिय को प्राकृतिक या अप्राकृतिक तरीके से यौन सुख के लिये मलिन नहीं किया। क्या ऐसा नहीं है कि पूरी दुनिया यौन सुख के लिये औरतों के पीछे भाग रही है। मैं इस विषय के बारे में कुछ भी नहीं जानता। अब नवम्बर 1955 को मैं 75 वर्ष का हो जाऊँगा, किन्तु इस वार्धक्य ने मेरे हृदय को तनिक भी नहीं छुआ है। जब कोई भी, जो मुझसे काफी छोटे हैं, अपने बुढ़ापे की बातें मुझसे करते हैं, "मैं बहुत बुढ़ा हो गया हूँ, अब मैं क्या करूँ"। जब वे अपनी दयनीयता इस प्रकार दिखाते हैं, मैं अपनी हंसी नहीं रोक पाता। इस उम्र में भी मेरा दिल एक बच्चे की तरह है। मैं ब्रह्मचर्य के बारे में क्या कहूँ।

अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम् ।

धर्म्यम् यशस्यम् आयुष्यम् लोकद्वय रसायनम् ।।

ब्रह्मचर्य जीवन इस लोक और परलोक में रसायन जैसा सुख और आरोग्य देता है। (ब्रह्मचारी का सीधा-साधा जीवन, कड़ी मेहनत का फल उस प्रकार है, जैसे कि शक्तिवर्धक आयुर्वेदिक रसायन, जीवन को नई शक्ति, प्रसन्नता और स्वास्थ्य दोनों ही जीवन में प्रदान करता है।)

इन सब के बाद भी मन कई अवसरों पर विषयाकुल होता था, किन्तु मैं कभी भी इन्द्रिय सुख भोगने वाले लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चला। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह सब भगवत् (परम ब्रह्म परमेश्वर) कृपा से हुआ। जब मैं 18 वर्ष का था, तब मुझे पक्षाघात का तीव्र आघात हुआ। नवरक्किजि और पिजिच्चिल का 5 बार लेप होता था। मैं

घी, दूध और काषाय (काढ़ा) का सेवन प्रतिदिन करता था। क्या यह सब चीजें मेरी इन्द्रिय और लिंग को पुष्ट नहीं कर रहा था? यह आध्यात्मिक साहित्य जैसे भगवद् गीता और भागवत का ही प्रभाव है, जिसने शारीरिक सुख के लिये मुझे अपने मार्ग से भटकने नहीं दिया। इतना ही नहीं, छोटी उम्र से ही इन्द्रिय वासना और भगवान के प्रति वासना (अदम्य इच्छा, तीव्र कामना) में निरन्तर टकराव रहता था। मेरी आन्तरिक इच्छा थी कि ईश्वर के प्रति मेरी भक्ति प्रगाढ़ हो। भगवान के आशीर्वाद से, मेरी इस इच्छा एवम् विचार ने मुझे सुरक्षित रखा।

मैं नियमित रूप से प्रार्थना करता एवम् आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ता तथा ध्यान करता था। मैंने कभी भी प्रातः एवम् सायंकाल का समय बिना प्रार्थना और ध्यान के नहीं बिताया। रेलगाड़ी में भी यात्रा करते समय मैं एक कोने में बिना किसी से बात किये शान्त बैठ जाता और अपनी प्रार्थना और ध्यान करता। यह मेरा स्वभाव बन गया था। मेरी सबसे बड़ी इच्छा थी कि मैं भगवान का सर्वप्रथम भक्त बनूँ, किन्तु अब मेरी इच्छा है, "त्वत्भक्त भक्तन्ते भृत्य भावं कल्पिच्चालतुम-मति" (वह [भगवान] मुझे उनके सबसे बड़े भक्तों के भक्तों का सेवक बनने की अनुमति प्रदान करें)।

"मम् माया दुरत्यया" क्या यह भगवान के महान शब्द नहीं है। श्री विवेकानन्द स्वामी ने माया की तुलना पक्षाघात से की है। जब अपने सिर से रह्युमटिस्म* को हटाने की कोशिश करते हों तो वह गरदन में चला जाता है और जब गरदन से हटाना चाहते हो तो वह पीठ के पीछे के क्षेत्र में आ जाता है। वहाँ से हाथ, पाँव या पैर में। तुम पूर्ण रूप से एवम् स्थायी रूप से माया को अपनी प्रणाली तन्त्र से नहीं हटा सकते। यद्यपि बहुत सी कामनाएँ हैं, तद्यपि भगवान के आशीर्वाद एवम् कृपा ने उनमें फँस जाने से रोका है।

धावन्नप्यावृताक्षः स्खलति न कुःचिल देवदेवाखिलात्मन्

भगवान अपने भक्तों की हर समय स्वयं देखभाल करते हैं। उस समय जब भक्त आँख बन्द करके गद्दों और खाईयों के मार्ग में चलता है, तो भी भगवान देखता है कि उसका भक्त किसी गद्दे में न गिर जाय। अन्ततः मैं कौन हूँ। बस एक झूठा भक्त? सही भक्त होने से (सच्चा और पूर्ण भक्त), तो वह व्यक्ति मनुष्य नहीं — भगवान ही है।

*रह्युमटिस्म : एक बीमारी, जिसमें शरीर के जोड़ों और मांसपेशियों में जकड़न आ जाती है तथा जोड़ों में दर्द होता है। शरीर के उस भाग का कार्य करना कठिन हो जाता है।

त्वत् भक्तिस्तु कथारसामृत झरीनिर्मज्जनेन स्वयं
सिद्ध्यन्ती विमल प्रबोध पदवीक्लेश तस्तन्वती।
सद्यः सिद्धिकरी जयत्ययि विभो सैवास्तु मे त्वत्पद
प्रेम प्रौढि रसाद्रता द्रुततरा वातालयाधीश्वरः।

“नारायणीयम्” 2.10

(32)

ज्ञानोपदेश और राम चरित मानस

सत्ये न लभ्यस्तपसाहयेषात्मा सम्यक्

ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् “श्रुति”

यदि कोई आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊँचा उठना चाहता है, तो उसमें 4 गुण अवश्य होने चाहिये। सत्यनिष्ठा, तपस्या, सम्यक् ज्ञान (सत्यज्ञान) और ब्रह्मचर्य।

‘सत्यम्’ शब्द का अर्थ मेरी दृष्टि में निष्ठा या वह स्थिति है, जहाँ झूठ रहित या दिखावा रहित स्थिति (निष्कपट भाव) sincerity। मैं भारत के कई भागों में रहा हूँ, मैं हिन्दी भाषा में थोड़ा बहुत समझ सकता हूँ। बहुत बार कई अवसरों पर मैंने दिव्यात्मा श्री तुलसीदास द्वारा रचित पुस्तक रामायण (राम चरित मानस) की नैसर्गिक रचना को पढ़ा है। श्री तुलसी महाराज जी (श्री निर्मलानन्द स्वामी जी — मेरे गुरु स्वामी) ने स्वयं, मेरे सम्मुख भी श्री तुलसीदास महाराज कृत “रामायणम्” (राम चरित मानस) की बड़े जोरदार ढंग से प्रशंसा की है। उन्हें कालीदास की उपमा से अलंकृत किया है। तुलसीदास महाराज जी स्वयं अतुलनीय, महान और उच्च कोटि के विद्वान संत और कवि थे।

मैं नीचे एक-दो उदाहरण दे रहा हूँ।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर।।

यदि किसी दीप को द्वार की चौखट पर रख दिया जाय तो वह बाहर और भीतर (अन्दर) दोनों ही जगह प्रकाश करता है। शरीर का द्वार मुख है। यदि कोई प्रकाश का दीपक यहाँ रख दे तो बाहर और भीतर दोनों ही प्रकाशित होंगे। यह प्रकाश का दीपक — राम नाम है। राम नाम जपते रहिये बाहर और भीतर दोनों प्रकाशित होंगे। आपके ज्ञान का प्रकाश फैलेगा — निश्चय ही ज्ञान की चमक दिखाई देगी।

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना।।

विभीषण श्री राम से पूछता है, “हे! नाथ, आपके पास न तो रथ है, न घोड़ा है, न शरीर और पैर में युद्ध में प्रयोग किये जाने वाले रक्षा कवच और जूते ही हैं। रावण बलवान और वीर है, आप उसे कैसे जीतेंगे?

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
दया की मूर्ति श्री राम ने कहा, हे मित्र, सुनो! जिससे जय होती है,
वह रथ कुछ दूसरा ही होता है। उस रथ के गुण सुनो।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

बल विवेक दम परिहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे।।

उस रथ के शौर्य और धैर्य दो पहिये होते हैं। सत्य और शील (अच्छा
आचरण) उसका ध्वज चिन्ह और दृढ़ ध्वजा है। बल, विवेक, दम और
परहित रूपी रथ के चार घोड़े होते हैं। क्षमा, कृपा और समता की रस्सी
(रास) से ये जुड़े हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विग्यान कठिन कोदंडा।।

ईश्वर का भजन ही चतुर सारथी है। विरक्ति रूपी कवच है, संतोष
रूपी तलवार है, दान रूपी फरसा है, बुद्धि रूपी प्रचण्ड शक्ति है। श्रेष्ठ
ज्ञान ही मजबूत और शक्तिशाली धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिली मुख नाना।।

कवच अभेद बिग्र गुर पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।

निर्मल और अचल मन तरकश के समान है। यम (मन का वश में
होना) और नियम ये विभिन्न प्रकार के बाण हैं। ब्राह्मण और गुरु की पूजा
अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का कोई दूसरा उपाय नहीं।

सखा धर्म मय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

हे सखा! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ होगा, उसे अपने शत्रु को
हराने में क्या कठिनाई हो सकती है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति के दुश्मन कैसे
हो सकते हैं।

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।

जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर।।

‘संसार’ रूपी शत्रु ही अजेय है (संसार का अर्थ जन्म-मृत्यु का चक्र) हे मन
में धैर्य रखने वाले मित्र! यदि किसी के पास ऐसा रथ है, तो वह इस संसार
को जीत सकता है (रावण की मृत्यु तो इसके सामने एक पतिंगे को मारने
के समान है)।

तुलसीदास महाराज का बहुत दृढ़ मत यह है कोई भी सब कर्म करे,
किन्तु पूर्ण निष्ठा और निष्कपट भाव से करे।

मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा

मन, कर्म और वचन से (मनसा, वाचा, कर्मणा) पूर्ण अनुशासन के
साथ सेवा और पूजा करनी चाहिये। उसमें मन, वाणी और कर्म सब एक
ही लय और ताल में हों (उसमें कोई अन्तर न हो)। मनस्येकम् वचस्येकम्
कर्मण्येकम् महात्मनाम्। बड़े और सज्जन लोगों के कर्मों में निरन्तरता होती
है और विचार, वाणी और कर्म में सत्यता होती है। निष्ठाहीनता और
दिखावा नाश के कारण होते हैं। मैंने भी कोशिश की कि मैं अपने जीवन
से निष्ठाहीनता को समाप्त करूँ।

कैतवम् विद्वभजिक्कुन्न वक्कुल्ल

योगवुम् क्षेमवुम् पूर्तिं चैयवान

समसारियाकुन्न पार्थन्डे सारथि

सर्वदा एट्टमडुत्तिरुप्पू

(अर्थ – पूर्ण योग होना, यानि उन सब वस्तुओं को प्राप्त करना जो
उसके अभी तक पास नहीं हैं और क्षेम यानि जो उसके पास हैं उसकी
सुरक्षा, जो उस परमेश्वर की सेवा पूर्ण निष्ठा और बिना किसी दिखावे के
करता है। भगवान् कृष्ण (पार्थ सारथी) जो काम को समाप्त करने वाले हैं।
उसके हमेशा साथ रहते हैं। जिस प्रकार उन्होंने अर्जुन का रथ हांका था
और उसके मन के सारे भ्रम को समाप्त कर दिया था उसी प्रकार उसको
भी मार्ग दिखाते हैं।)

वर्ष 1954, अक्टूबर में मैं एक सज्जन के निवेदन पर प्रयाग गया। मैं
3 माह तक गंगा के किनारे बने एक खूबसूरत बंगले में रहा। यह भवन श्री
श्याम नाथ का था। वहाँ प्रतिदिन धार्मिक कार्य होते रहते थे। श्री आई.के.
तैमिनि, एक महाविद्यालय के प्रोफेसर, उसका सारा खर्च वहन करते थे।
लखनऊ के बहुत से लोग भी वहाँ आकर कई-कई दिन रहते थे। डा०
तैमिनि की पत्नी वहाँ पर पूजा, हवन आदि सभी कार्यों में अग्रणी भूमिका
निभाती थी।

कार्यक्रम कुछ इस प्रकार होता था।

8 बजे से 11 बजे प्रातः तक – होम, पूजा स्तोत्र, गीता का पाठ, देवी
सप्तशती का पाठ

12 बजे – भोजन

4 बजे से 6 बजे तक – मेरा व्याख्यान तथा वार्ता

बहुत से लोग मुझसे नियमित मिलने आते थे। डा० तैमिनि लोगों के

प्रश्न और मेरे द्वारा दिये गये उत्तर को बाकायदा लिखा करते थे। मैं इस सबको यहाँ लिखना नहीं चाहता, क्योंकि वह पूर्ण विषय पुस्तक के रूप में अलग प्रकाशित हो चुका होगा। मेरा 76वाँ जन्मदिन भी वहाँ लोगों ने बड़े धूमधाम से मनाया। मैंने इलाहाबाद में भी कई स्थानों पर अपने व्याख्यान दिये। प्रयाग से मैं कानपुर आ गया। वहाँ मैं श्री ए०के० वाटल एम.ए., एल. एल.बी. का 2-3 दिन अतिथि रहा और फिर लखनऊ पहुँचकर शुक्ला घाट पर रुका। वहाँ मैंने कुछ दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए और फरवरी में मैं गुहा वापस आ गया।

शान्ति, पूर्ण शान्ति।

(33)

ज्ञानोपदेश – श्री रामकृष्ण

जिस समय से मैंने श्री रामकृष्ण जी के बारे में जानना शुरू किया, मेरा मन उस दिव्य पुरुष की ओर आकर्षित होना शुरू हो गया। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है। मैंने "प्रबुद्ध केरलम्" मैगजीन की सभी प्रतियाँ एक-एक करके शुरू से पढ़नीं शुरू की। मैंने पूजा, जप, ध्यान आदि भी करीब 10-12 वर्ष श्री रामकृष्ण आश्रम तिरुवल्ला, हरिप्पाट्ट और कोयिलाण्डी में किया था। मेरा मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास था। मैंने श्री रामकृष्ण परम हंस को इस हेतु अपना आदर्श माना था। इस उदाहरण देने वाले व्यक्ति का प्रत्येक अमृत वचन दिव्य और प्रत्येक कृत्य गीता और उपनिषद् का निचोड़ था। जब मैं उस महात्मा के अमृत वचन पर मंथन करता हूँ तो मुझे हमेशा शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। उनके अमर और स्नेह युक्त शब्द ने मेरे आध्यात्मिक जीवन को विकसित करने में बहुत मदद की है। इसने मुझे नया रूप, नया ढंग और दिशा दी है। मुझे याद है कि वर्ष 1910 में श्री स्वामी जी ने मुझे तिरुवल्ला आश्रम में श्री रामकृष्ण जी पर एक कविता लिखने को कहा था। तुम श्री रामकृष्ण पर एक कविता की रचना करो।

मैं नीचे अपना प्रथम गीत लिख रहा हूँ –

पल्लवी

श्री रामकृष्ण शरणागत जन पालन लोलुप मामक दैवमे।

चरण

घोरतर संसार सागरत्तिन्केन्नेन्ने

त्राणनम् चेय्तीटणे तारक ब्रह्ममे

श्री रामकृष्ण शरणागत

नित्य मल्लातेयुल्ल वस्तुविलोन्निन्कलुम्

एत्तरु तेन्मनं उत्तम पूरुष

श्री रामकृष्ण शरणागत

काम क्रोधादि दोषमाकवे वेटिजुनिन

पाद भजनम् चेय्वानेकणे अनुग्रहम्

श्री रामकृष्ण शरणागत

सत्तु चित्तानन्दत्तिलेप्पोलुं मुलुकियुं

मत्तनाय चरिप्पतिनेत्तुमो भाग्यम् मम।

श्री रामकृष्ण शरणागत

"ब्रह्म कीर्तनम्"

बाद में मैंने कुछ और गीत और स्तोत्र भी लिखे, जो मैंने शंकर वेलिल हाउस की श्री परमेश्वरन पिल्लडू की प्रेममयी माँ के लिये लिखा था, अब प्रकाशित हो चुकी है। जब मैं कन्याकुमारी जाकर वापस आ रहा था तो मैंने रास्ते में श्री पुल्लाडु वैद्यर की सेवाएं स्वीकार कीं थीं, वहाँ भी मैंने एक गीत गाया था।

(ज्ञान कुम्भी)

कल्याण मूर्तियाम् कारमुकिल वर्णनटे

संताप नाशमाम् सत्चरित्रम्

चिन्तिच्चु चिन्तिच्चु सत्गतिनेदुवा

नेन्ते मटिक्कुन्नु मालोकरे

निन्नाल एन्ते मटिक्कुन्नु मालोकरे।

कालम् कलयाते पालालिमातिन्टे

मानस चोरनाम राधेशने

आपाद मस्तकम् ध्यानिच्चु ध्यानिच्चु।

मान मोहादिये पोक्कियालुम

शीघ्र मान मोहादिये पोक्कियालुम।

किल विषमोक्केयुम पोक्कुवानुल्लोरु

सिद्धौषौधं महत् पाद सेवा।।

श्रद्धया चेयकिलो चितमतेलिज्जाशु

भक्तियुम मुक्तियुम लभ्यमाकुम

शुद्ध भक्तियुम मुक्तियुम लभ्यमाकुम।

कुट्टिकलोप्पम् मनस्सिन्नु शुद्धत

निस्संग बुद्धियुम वन्नु वेन्किल

तट्टिकिलयामी संसार भारते

पेट्टेन्नु निंगल अरिज्जिटेणं,

पेट्टेन्नु निंगल अरिज्जिटेणं।

कूप मण्डूक माम् जीवित तेप्पोकि

आकाश तुल्यम् पेरुकिट्टे

मानसमेन्तोरु सौख्यम् लभिच्चीटुं

मायासमेन्निये सर्वकालम्

निङ्गल काया समेन्निये सर्वकालम्।

कृष्णन्ते रूपवुम् लीलयुमोन्तोत्तु

कृष्णनायत्तन्ने भाविकवेणं

तृष्णकलेल्लां नाशिच्चिटु सर्ववुम्

विष्णुमय मायी वन्नुकोल्लुम्

सर्वम् ब्रह्ममयमायी वन्नुकोल्लुम्।

कलेशैकनाशक नारायण हरे

मोक्षप्रद मधुसूदनेति

भक्त्या जपिक्कुविन सर्व्वरुम संततम्

मेलक्कुमेल सौख्यम् लभविक्कुमल्लो

सत्यम् मेलक्कुमेल सौख्यम् लभविक्कुमल्लो।

केवलम् भक्ति कोण्डोन्ने लभिच्चीटु

केशवन् तन्नुटे पाद पदम्

आशयाधीशानि लाशयेल्लाम वच्चु

स्वस्मिन् महिमयिलेत्तियालुम

शीघ्रं स्वस्मिन् महिमयिलेत्तियालुम।

कोटियुगडुलयि संचयिच्चीटुन्न

पुण्य फलमाणी मर्त्यजन्मम्

तेदुविन सदगुरु पादपदमम् पुन

नेदुविन सौभाग्य ज्ञानामृतम्

नेदुविन सौभाग्य ज्ञानामृतम्।

कौतुकमात्म स्वरूपम् धरिक्कुवान

मेच्चमाय नालक्कुनाल वद्धिच्चीटिल

उल्लतिलेड्डम् प्रकाशिच्चु काणाकुम्

ब्रह्मसत्यम् जगनमिथ्याभावम्

ब्रह्मसत्यम् जगनमिथ्याभावम्।

कम्पमिल्लत्तोरु स्थानम् लभिच्चीटुम्

घोरमाम् भूकम्प मध्यत्तिलुम

तत्त्वमस्यादियाम् श्रौत वाक्यडुले

तत्त्वमरिज्जुल्लिल ध्यानिच्चीटिल – नित्यम्

तत्त्वमरिज्जुल्लिल ध्यानिच्चीटिल।

कष्टमे कष्टमे एत्रनालो परम्

चित्तभ्रम तोटलज्जिरुन्नु

श्री गुरु कारुण्यमेकि पुरुषन्नु

निर्मलानन्दमाम् शान्ति सौख्यम्

श्री निर्मलानन्दमाम् शान्ति सौख्यम्।

(यह कविता आशु रचना है, इसमें साहित्यिक सौन्दर्य, वेदान्त के विचार, भक्ति की महत्ता और अपने गुरु (मार्ग दर्शक) की कृपा भी निहित

है। प्रत्येक कवित्र के छन्द की शुरुवात 'क' की विभिन्न मात्राओं से की गई है। क, का, कि, कु, कू, कृ, क्ल, के, कै, को, कौ और पुनः क, का प्रयोग।)

अन्तिम पंक्ति गुरु महाराज ने अपने गुरु की याद को चिर स्थायी बनाने के लिये अपने गुरु स्वामी निर्मलानन्द जी को अर्पित की है।

अन्तिम 14वें कवित्त की अन्तिम दो लाइनों का अर्थ इस प्रकार है -

जिन्होंने मेरे अध्यात्मिक जीवन को स्वरूप दिया और जिन्हें यह रचना समर्पित है। निश्चय ही यह असीमित कृपा मेरे गुरु (मार्गदर्शक) की है जिन्होंने मुझे पुरुष (पुरुषोत्तमानन्द) शान्ति और आनन्द का प्रसाद दिया है। उनके पूर्ण आशीर्वाद का परिणाम है।

जब मैं ब्रह्मपुरी में निवास करता था। मैंने "निर्गुण स्तोत्र" की रचना की थी, जो निम्नवत् है -

ओम

निर्गुणोऽहम् निष्कलोऽहम् निर्म्ममोऽहम् निश्चलो

नित्य शुद्धो नित्य बुद्धो, निर्विकारो निष्क्रियः॥

निर्मलोऽहम् केवलोऽहम् एक एवा द्वितीयो

भासरोऽहम् भास्कारोऽहम् नित्य तृप्तिश्चिन्मयः॥

पूर्ण कामः पूर्णरूपः पूर्णकालः पूर्णदिक्

आदि मध्यान्तहीनो, जनन मरण वर्जितः॥

सर्व कर्ता, सर्व भोक्ता, सर्व साक्षी सोऽस्म्यहम्

सर्व व्यापी, मद्वतीतो नास्तिकिंचन क्वाप्यहो॥

आनन्दोऽहम् अनन्तोऽहम् सदरूपः शिचदरसोऽप्यहम्

अहम् ब्रह्मास्मि ब्रह्मास्मि, ब्रह्मैवाऽहम् सदाशिवः॥ ॥ओं॥

मैंने इस प्रकार अनन्त असीम के लिये लिखा है। मैंने किसलिये इतना सब कुछ लिखा है। ऐसा मैंने कई अवसरों पर महसूस किया, अब मुझे विराम देना चाहिये।

अलमति विततैर्वपः प्रपञ्चै

रियमुचितेह सुखाय दृष्टिरेका

उपगमितरसम् समम् मनोऽन्त

र्यदि मुदितम् तदनुत्तमा प्रतिष्ठा - योग वासिष्ठम्

"शब्दों का इस प्रकार बढ़ा-चढ़ा कर प्रयोग का क्या अर्थ? जब तक कि मन सांसारिक क्रियाओं से विरक्त न हो। जब कोई पूर्ण विरक्ति प्राप्त कर सके, यह तभी संभव है, जब मन बिना किसी समस्या या उद्विग्नता

के आत्मा में प्रसन्नतापूर्वक विलीन हो सकता हो। ब्रह्म को इस प्रकार से प्राप्त करना ही उत्तम और सबसे अधिक उपयुक्त है।

न धनम् न जनम् न सुन्दरीम् कविताम् वा जगदीश कामये

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवतात् भक्तिरहैतुकी त्वयी॥

मेरा मन एक खूबसूरत औरत, धन, कविता या उच्च घर में जन्म को नहीं ढूँढता है। मुझे किसी योनि में कितने भी जन्म लेने पड़ें, हे भगवान् मुझे प्रत्येक जन्म आपके चरण कमलों की सच्ची भक्ति प्राप्त हो सके।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो

भुञ्जान एवात्मकृतम् विपाकम्

हृद्वाग्व पुर्भिविद् धन्मस्ते

जीवते यो मुक्तिपदे स दायभाक्।

श्रीमद्-भागवत 10 स्कन्ध अध्याय 14

हे भगवान्, कोई भी आपके ईश्वरत्व और महत्ता को पूर्ण रूप से समझने में सक्षम नहीं है लेकिन वे सौभाग्यशाली हैं जो अपने प्रारब्ध कर्मों से बिना किसी विघ्न बाधा के अपने मन, कर्म और वचन से आपकी सेवा में लगाते हैं और ऐसी सेवा में संलग्न हैं जिससे आपकी दया दृष्टि उन पर बनी रहे। वे लोग संसार के जन्म-मृत्यु के चक्र से मोक्ष पाने के अधिकारी हैं।

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य्य देवो भव, अतिथि देवो भव (श्रुति)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः

गुरु साक्षात् परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

असतो मा सत गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मा अमृतं गमय

आविराविर्मयी एधि रुद्र, यत्ते दक्षिण मुखम्

तेन माम् पाहि नित्यम्

ओं शान्ति शान्ति शान्ति।

19.05.1955

चतुर्थ अध्याय

अक्टूबर 1956 में वसिष्ठ गुहा का वातावरण सामान्य था और सब कुछ शान्तिपूर्ण ढंग से व्यतीत हो रहा था। गुहा से काफी दूर पर गंगा सामान्य रूप से बह रही थी। गुहा के निकट बने कमरे में गुरु महाराज का निवास था तथा कुछ शिष्य मुख्य गुहा में रहा करते थे। नदी के तट से थोड़ी दूर पर कुछ नीचे की ओर बनी एक छोटी सी गुफा में एक जर्मन सन्यासिनी रह रही थी। पूजा, अर्चना, भजन कीर्तन तथा रात्रि भोजन के पश्चात् सभी लोग प्रतिदिन की भाँति शयन करने चले गये। प्रातः उठने पर सामने जो दृश्य दिखाई दिया, उसे देखकर सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। गंगा जो पूर्व रात्रि करीब 55-60 गज दूर बह रही थी, आज गुहा के द्वार को छूकर बह रही थी। गुरु महाराज ने, सबको आश्रम से हट कर विद्यालय के निकट बने भवन में चले जाने की आज्ञा दी। मुख्य सड़क तक पहुँचने का आम मार्ग पानी में डूब चुका था। अब दूसरा मार्ग खोजना पड़ा। इसी बीच गाँव के कुछ लोग आ गये। इस गुफा से कुछ ऊँचाई पर बनी एक दूसरी गुफा में जो कुछ भी रखना सम्भव था, रखकर लगभग 2 घंटे में सब लोग ऊपर पहुँच गये।

गंगा का जलस्तर निरन्तर बढ़ रहा था। एकाएक सब लोगों को नीचे गुफा में रहने वाली जर्मन सन्यासिनी की याद आयी। मुख्य मार्ग से नीचे उतर कर उसे सुरक्षित निकालने के लिये गुरु महाराज ने कुछ लोगों से कहा। नीचे उतरने के लिये कोई बना हुआ मार्ग नहीं था। नीचे खड़ी उतराई थी और बीच में सहारा लेने के लिये कुछ भी नहीं था। इसलिये, नीचे उतरने के सारे प्रयत्न विफल हो रहे थे। इसी प्रयत्न में एक ब्रह्मचारी भूमानन्द जी का पैर फिसल गया और वे सिर के बल गिरे और नीचे नदी की ओर लुढ़कते हुए गिरने लगे, सभी लोग असहाय होकर देख रहे थे। गुरु महाराज दो फलांग दूर आश्रम के भवन में थे। सब लोग धड़कते दिल से प्रार्थना कर रहे थे। गुरु महाराज को सभी याद कर रहे थे, तभी भूमानन्दजी एक घास के छोटे से झंखाड़ से फंसकर रुक गये, और झंखाड़ से टकरा कर अचेत हो गया था। इसी समय सबको आश्चर्य चकित करते हुए वह छोटी-छोटी झाड़ को पकड़ते हुए ऊपर आ गये और सड़क पर आते ही अचेत होकर फिर गिर पड़े। सभी लोग उनके उपचार में लग गये, तभी वहाँ जर्मन सन्यासिनी आ पहुँची। उसने पूछा, "इन्हें क्या हुआ है"?

सभी लोगों ने आश्चर्य चकित होकर उसे देखा तथा उनको बचाये जाने के लिये किये जा रहे प्रयास के बारे में जानकारी दी।

जर्मन सन्यासिनी ने बताया कि छोटी गुफा में पानी आ गया था और मेरा सारा सामान बह गया। वह असहाय, भगवान से सहायता की प्रार्थना कर रही थी। ऊपर क्या हो रहा है, उसकी उसे कोई जानकारी नहीं थी। ईश्वर की कृपा से तभी एक लकड़ी का लट्ठा बहता हुआ आया और उसकी गुफा के निकट चक्कर काटने लगा। दो बार वह गुफा द्वार तक आया और फिर दूर चला गया। तीसरी बार जब वह फिर लौटकर गुफा के पत्थर के पास जा पहुँचा, तो ईश्वर की भेजी सहायता समझकर वह उस लट्ठे पर बैठ गयी और पहाड़ के किनारे-किनारे उगी झाड़ी पकड़-पकड़ कर पानी में आगे बढ़ती गयी और जब किनारे एक ऐसा स्थान मिला जहाँ वह उतर कर पहाड़ पर चढ़ सकती थी, वह झाड़ पकड़कर एक पत्थर पर जा पहुँची तथा धीरे-धीरे चढ़कर ऊपर सड़क पर होकर यहाँ पहुँची हूँ। उसे सुरक्षित आया देखकर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। काफी समय बाद भूमानन्दजी को चेतना आ गयी।

दिन के बारह बजे तक मुख्य गुहा में जल प्रवेश कर गया। दो दिन बाद गंगा के जल स्तर में कमी आयी, तो देखा गया कि जल गुहा में 4-5 फीट ऊपर तक चढ़ गया था। दरवाजे और रसोई का छप्पर आदि बह गया था। सारा स्थान वीरान हो चुका था। लोगों ने फिर नीचे उतर कर सफाई मरम्मत आदि का कार्य प्रारम्भ किया और गुहा में पूजा और ध्यान की गति-विधियों की ध्वनि पुनः सुचारु रूप से गूँजने लगी।

गुहा के सामने के क्षेत्र में फैला घना वन जो गुरु महाराज के ध्यान का प्रिय स्थल था, बाढ़ के कारण बह गया। इसी कारण इस क्षेत्र में कुछ ऊँचाई पर एक पक्के भवन का निर्माण प्रारम्भ किया गया, जो वर्ष 1956 में पूर्ण हो गया। यदि बाढ़ न आयी होती तो गुहा के आस-पास भवन निर्माण का कार्य न किया जाता और गुहा के आसपास का क्षेत्र ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से घिरा रहता। गुरु महाराज के गुहा में निवास करते समय ऐसी बाढ़ दूसरी बार आयी थी। पहली बार जब बाढ़ आयी तो गुरु महाराज अमरनाथ की यात्रा पर थे।

वर्ष 1957 के अन्त में भक्तों के अनुरोध पर गुरु महाराज ने दिल्ली होकर लखनऊ की यात्रा की और वहाँ से इलाहाबाद गये और वहाँ लगभग एक महीने रुके। गुरु महाराज को दक्षिण भारत के अनुयायियों के आग्रह भरे पत्र प्राप्त हुए। गुरु महाराज के एक शिष्य स्वामी साम्बानन्द जी ने

देशमंगलम् में एक आश्रम की स्थापना की थी। वह उसका उद्घाटन गुरु महाराज के कर कमलों से चाहते थे। इस कारण गुरु महाराज ने केरल की यात्रा की। मद्रास में कुछ दिन बिताकर गुरु महाराज ओट्टप्पालम् पहुँचे तथा वहाँ के आस-पास के क्षेत्र होते हुए गुरुवायूर गये। वहाँ से तिरुवल्ला, तिरुवनन्तपुरम, हरिप्पाट्ट इत्यादि होते हुए कन्याकुमारी गये और वहाँ एक सप्ताह ठहरे। गुरु महाराज के शिष्यों द्वारा उनका नाम दक्षिण भारत में भी काफी प्रचलित था, इस कारण अनेक लोग उनसे मंत्र दीक्षा लेने आया करते थे। गुरु महाराज ने अपने शिष्य साम्बानन्द जी द्वारा स्थापित ओंकाराश्रम का भी उद्घाटन किया तथा मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा स्वयं गुरु महाराज द्वारा फरवरी 1958 में की गयी। दो माह केरल यात्रा में बिताकर गुरु महाराज मद्रास से लखनऊ होते हुए गुहा वापस लौट गये।

ओंकाराश्रम

स्वामी साम्बानन्द जी वर्ष 1956 में वसिष्ठ गुहा आये थे, तब उन्होंने गुरु महाराज से भारतपुजा नदी के किनारे देशमंगलम् में जहाँ नदी उत्तराभिमुख होकर बहती है, एक आश्रम स्थापित करने के लिये विस्तार से चर्चा की और उनसे अनुमति और आशीर्वाद मांगा। वे चाहते थे कि गुरु महाराज निर्माण पूर्ण होने के बाद इस आश्रम में आकर निवास करें, किन्तु गुरु महाराज को इस प्रकार के प्रस्ताव में, कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने अपने शिष्य को आश्रम निर्माण हेतु 101 रुपये देकर आशीर्वाद प्रदान किया। स्वामी साम्बानन्द जी का विचार उस आश्रम के मंदिर में श्री राधा-कृष्ण की मूर्ति स्थापित करना था, किन्तु गुरु महाराज ने उन्हें वहाँ "प्रणव" का प्रतीक चिन्ह स्थापित करने का परामर्श दिया। गुरु महाराज की सलाह के अनुसार पंचधातु (स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, पीतल तथा सीसा) से बने प्रणव चिन्ह "ऊँ" की स्थापना की गयी।

अधिकाधिक लोग गुरु महाराज के दर्शन करने गुफा आने लगे। गुरु महाराज का जन्मदिन इस वर्ष 25 नवम्बर को पड़ा। 1500 से अधिक लोग इस अवसर पर वहाँ उपस्थित थे, जो गुरु महाराज की बढ़ती हुई लोकप्रियता का प्रमाण था। जन्मदिन के 2-3 सप्ताह पूर्व रक्षा विभाग में आडिटर के पद पर कार्यरत एक सज्जन प्रथम बार गुरु महाराज से मिलने वसिष्ठ गुहा आये। इस यात्रा में वे गुहा में कुछ घंटे ठहरे, किन्तु गुरु महाराज के लिये उतना समय पर्याप्त था। उनके शुद्ध उच्चारण और स्वरबद्ध पाठ से गुरु महाराज प्रभावित थे। वे कोई व्यावसायिक कथा वाचक नहीं थे, किन्तु उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था तथा मन में भक्ति भाव था। गुरु महाराज ने जब 2-3 सप्ताह बाद होने वाले भागवत पाठ के लिये अनुरोध किया तो उनका मन शंकित था, क्योंकि इससे पूर्व उनका इस प्रकार का कोई अनुभव नहीं था। किन्तु गुरु महाराज ने आश्वस्त किया कि इसमें घबराने की कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायेगा। गुरु महाराज के आश्वासन पर उन्हें कार्य को स्वीकार करने का साहस मिला। वे वापस मेरठ लौट गये। भागवत सप्ताह के प्रारम्भ होने से ठीक एक दिन पहले वे आश्रम पहुँच गये। वसिष्ठ गुहा में अपने प्रथम भागवत पाठ के दौरान उन्हें "मूकं करोति वाचालम्" की उक्ति की सत्यता का अनुभव हुआ। उन्होंने कभी भी तीन-चार स्कन्धों के आगे श्रीमद् भागवत नहीं पढ़ी थी। इस कारण उनके लिये केवल भागवत सप्ताह करने का प्रथम अवसर ही नहीं था, अपितु अन्त तक भागवत पढ़ने का प्रथम अवसर था। गुरु महाराज की कृपा के परिणाम स्वरूप ही वे अपने प्रथम प्रयास में इतना उत्तम प्रदर्शन कर सके। वह सज्जन न तो गुरु महाराज के शिष्य थे, न ही पुराने भक्त। भागवत सप्ताह पूर्ण होने के पश्चात ही गुरु महाराज ने उन्हें मंत्र दीक्षा प्रदान की।

गुरु महाराज का मन गुहा छोड़कर अन्यत्र जाने का नहीं होता था, किन्तु गुरु महाराज के लखनऊ स्थित भक्त तथा अनुयायी उन्हें तार, पत्र तथा संदेश भेजकर उनसे लखनऊ आने के लिये आग्रह कर रहे थे। उन लोगों की हार्दिक इच्छा थी कि गुरु महाराज शुक्ला घाट पर बनवायी गयी एक नवनिर्मित कुटीर में कुछ दिन निवास कर उसे पावन करें। अन्त में भक्तों की इच्छा पर गुरु महाराज नववर्ष के प्रथम दिन गुहा से चलकर

दिल्ली पहुँचे, वहाँ से वह लखनऊ गये। भक्तगण प्रसन्न थे। वे वहाँ तीन सप्ताह रुके। इस बीच भागवत पाठ का आयोजन किया गया।

गुरु महाराज के लखनऊ प्रवास के समय वह युवा शिष्य, जो रक्षा विभाग में आडिटर था तथा जिन्होंने गुहा में भागवत पाठ किया था, उस समय पुणे में तैनात था, किसी कार्यवश कानपुर आया था। समाचार के माध्यम से कि गुरु महाराज लखनऊ आये हैं, उनके दर्शन करने लखनऊ आये। गुरु महाराज के कहने पर वे भागवत-पाठ करने के लिये रुक गये तथा आदेश मानकर श्रद्धा पूर्वक पाठ कर अपने दायित्व का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। पूरे सप्ताह "व्यास के रूप में" (भागवत पढ़ना तथा उसका अर्थ स्पष्ट करना) कार्य किया।

वर्ष 1959 के ये ग्रीष्मकाल के दिन थे। एक दिन दोपहर को धूप में एक सांवले रंग का एक हट्टा-कट्टा, किन्तु गरीब व्यक्ति गुरु महाराज के दर्शन करने वसिष्ठ गुहा आया। वह मजदूर सा लगता था। उस व्यक्ति को बवासीर की शिकायत थी। वह इलाज हेतु अनेक स्थानों में भटक चुका था और अभी तक उसे इससे छुटकारा नहीं मिला था। उसने गुरु महाराज से अपने रोग के बारे में बताया। गुरु महाराज ने उसे ऋषिकेश में किसी प्रसिद्ध आश्रम द्वारा चलाये जा रहे अच्छे अस्पताल में उपचार करवाने का परामर्श दिया। वह व्यक्ति उस दिन लौट गया, परन्तु अगले दिन फिर वापस लौट आया। उसने बताया कि इसकी शल्य चिकित्सा अभी सम्भव नहीं है, ऐसा उसे डाक्टरों ने बताया है। अतः उसका इलाज सम्भव नहीं हो पा रहा। अब वह कहीं और नहीं जाना चाहता। वह आश्रम में रहकर सेवा करना चाहता है। वह किसी तरह की सलाह सुनने को तैयार नहीं था और अपनी बात पर अड़ा हुआ था। वह गुरु महाराज के सम्मुख माथा झुकाकर बैठ गया। गुरु महाराज ने हंसते हुए अपने शिष्य (स्वामी निर्वेदानन्द जी) से एक पास पड़ी छड़ी लेकर आने को कहा। जैसे वे उसकी पिटाई करने जा रहे हों। वह व्यक्ति तुरन्त अपने पास पड़ी मोटी लाठी ले आया और गुरु महाराज को दे दी। वह माथा झुकाकर मार खाने को तैयार बैठ गया। गुरु महाराज जोर से हंसने लगे तथा उन्होंने अपने शिष्य से एक संतरा ले आने को कहा और उसे अपने हाथ से छीलकर उसकी 3-4 फांके एक-एक करके उसे स्वयं खिलाई। यह करते समय उनके चेहरे पर अत्यन्त स्नेह के भाव दिखाई दे रहे थे। उसके पश्चात वह दण्डवत् करके चला गया। गुहा से चलकर जब वह सड़क पर पहुँचा तो जोर-जोर से ताली बजा-बजाकर नाचने लगा। मैं ठीक हो गया — मैं ठीक हो गया। शायद उसका दर्द अब तक समाप्त हो चुका था। वह व्यक्ति आश्रम के लिये नितान्त अपरिचित था। वह पुनः वापस भी नहीं आया।

एक बार वसिष्ठ गुहा के आस-पास बनाई गयी आश्रम की बगिया में कुछ कलमी आम के पौधे लगाये गये। एक दिन गुरु महाराज जब अपने कमरे से निकलकर नीचे उतर रहे थे, तो उनकी दृष्टि एक पौधे पर पड़ी। वे दौड़कर उस पौधे के पास पहुँचे और धूप से बचाने हेतु अपना उत्तरीय

दोनों हाथों से फैलाकर उसके ऊपर छाया कर दी। फिर आवाज देकर अपने शिष्यों को बुलाया और उनसे सभी पौधों पर छाया करने के लिये दूसरे वृक्षों की पत्तियाँ झाड़ आदि काटकर उनके चारों ओर लगाने को कहा। उस पूरे कार्य के दौरान उनके मन में उन पौधों के प्रति प्रेम भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। वे सदा कहा करते थे — Feel, Feel for others.

सन्यास दीक्षा समारोह

वर्ष 1957 तथा 1958 की अवधि में गुरु महाराज ने साधारण रूप से किसी को सन्यास की दीक्षा नहीं दी, किन्तु 29 नवम्बर 1958 को एक महिला शिष्य, ब्रह्मचारिणी कृष्ण प्रिया को वसिष्ठ गुहा में मंत्र तथा गेरूए वस्त्र प्रदान कर उनको नया नाम दिया — स्वामी सुभद्रानन्द।

उस समय गुहा में कुछ ब्रह्मचारी निवास करते थे, जो सन्यास ग्रहण करने के अधिकारी थे। उनमें से एक, ब्रह्मचारी मधुसूदन को स्वामी शंकरानन्द जी तत्कालीन अध्यक्ष श्री रामकृष्ण मठ द्वारा मंत्र दीक्षा प्रदान की जा चुकी थी, जबकि अन्य सभी गुरु महाराज के शिष्य थे। वर्ष 1958 के अन्त में गुरु महाराज ने मूलतः केरल के निवासी एक अविवाहित, जाने-माने विद्वान, लेखक तथा कवि, जो उस समय में ऋषिकेश में रहते थे तथा जिनकी आयु 64 वर्ष की थी, को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर उनका नाम रखा — राम चैतन्य।

श्री राम चैतन्य ने अपना पूरा जीवन संस्कृत भाषा और वेदान्त क अध्ययन तथा अध्यापन में अर्पित किया था। वे कैलाश आश्रम में वेदान्त के अध्ययन में व्यस्त रहा करते तथा वसिष्ठ गुहा आकर गुरु महाराज से विचार-विमर्श करते।

सभी ब्रह्मचारियों को आध्यात्मिक यात्रा में आगे बढ़ने के लिये अवसर देने के लिये अब गुरु महाराज ने महाशिवरात्रि (7 मार्च 1959) के दिन सन्यास दीक्षा दी। इस दिन सभी ब्रह्मचारियों द्वारा सन्यास दीक्षा के सम्बन्धित सभी प्रारम्भिक अनुष्ठान सम्पन्न किये गये और उसी रात्रि 8 मार्च के ब्रह्म मुहूर्त में प्रातः करीब 3 बजे 2 वर्ष के बाद विरजाहोम की अग्नि वसिष्ठ गुहा में एक बार फिर प्रज्वलित हुई। विरजाहोम तथा सन्यास दीक्षा के बाद ब्रह्मचारियों को गुरु महाराज ने परम्परागत गेरूए वस्त्र प्रदान किये तथा नये नाम दिये।

- | | | | |
|----|-----------------------|---|----------------------|
| 1. | ब्रह्मचारी वेदगिरि | — | स्वामी निर्वेदानन्द |
| 2. | ब्रह्मचारी राघवदास | — | स्वामी रघुवीरानन्द |
| 3. | ब्रह्मचारी राम चैतन्य | — | स्वामी रामेश्वरानन्द |
| 4. | ब्रह्मचारी मधुसूदन | — | स्वामी शांभवानन्द |

11 मार्च को श्री रामकृष्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर 6 अन्य आश्रमवासियों को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी।

1. ब्रह्मचारी रामकृष्ण दास
2. ब्रह्मचारी गोपाल दास
3. ब्रह्मचारी उमेश चैतन्य
4. ब्रह्मचारी मनो चैतन्य
5. ब्रह्मचारी देव चैतन्य
6. ब्रह्मचारी कृष्ण चैतन्य

उसी वर्ष गुरु महाराज की आत्मकथा “ईश्वर कारुण्यम्” का अंग्रेजी अनुवाद उनके एक शिष्य स्वामी निर्वेदानन्द जी ने गुरु महाराज से आशीर्वाद लेकर किया और पुस्तक The Life of Swami Purushottamananda के नाम से प्रकाशित किया। इस पुस्तक का सभी ने उत्साह पूर्वक स्वागत किया और आध्यात्मिक साधकों ने इसे वरदान के रूप में स्वीकार किया।

इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई और वसिष्ठ गुहा की ओर लोग आकर्षित होने लगे। इस वर्ष दिसम्बर में गुरु महाराज का जन्मदिन आयोजित हुआ। बहुत अधिक संख्या में लोग आये। विगत की भाँति इस वर्ष भी भागवत-पाठ एक सप्ताह चला और फिर गुरु महाराज के जन्मदिन पर विश्व शान्ति के लिये हवन किया गया। इसके पश्चात गुरु महाराज ने एकत्रित जन समूह को सम्बोधित किया, जिसे सभी लोगों ने पूर्ण एकाग्रता से सुना।

प्रयाग का अर्द्ध कुम्भ

वर्ष 1960 में प्रयाग में अर्द्ध कुम्भ पड़ा। गुरु महाराज के भक्तगणों ने उन्हें प्रयाग आने का आग्रह किया। मेला क्षेत्र में गुरु महाराज के रहने की समुचित व्यवस्था करने के लिये कुछ लोग पहले ही वहाँ पहुँच गये। कुम्भ में सम्मिलित होने के लिये गुरु महाराज ने जनवरी 1960 में वसिष्ठ गुहा से दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। दिल्ली में वे एक सप्ताह ठहरे। गुरु महाराज जब भी दिल्ली जाते, वे अपने शिष्य श्री बी.के. कौल आई.सी.एस. के घर रुकते थे। इस बार भी गुरु महाराज वहाँ रुके। श्री कौल एवम् उनके परिवार के सभी सदस्य गुरु महाराज के प्रति अतिशय श्रद्धा रखते थे तथा गुरु महाराज के निवास की अवधि में उनको तथा उनके साथ आये अन्य लोगों को यथासम्भव सभी सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयत्न करते थे। सदा की भाँति इस बार बहुत से लोग गुरु महाराज के दर्शन एवम् सत्संग हेतु आये तथा भिक्षा हेतु अपने घर ले गये। आगरा के डिस्ट्रिक्ट तथा सेशन जज की पत्नी ने गुरु महाराज को आगरा आने का निमंत्रण दिया। गुरु महाराज ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया और उनके माध्यम से आगरा के अपने एक शिष्य को संदेश देकर ठहरने की व्यवस्था करने को कहा। वह शिष्य अपनी बहन के मकान में रह रहा था। वह सीलन भरा था तथा गुरु महाराज के निवास के लिये उपयुक्त नहीं था।

आगरा की क्षेत्रीय बालिका विद्यालयों की निरीक्षिका (Regional Inspectress of Girls School) श्रीमती कक्कड़, गुरु महाराज की भक्त थीं। उन सज्जन ने जब उन्हें गुरु महाराज का कार्यक्रम बताया तो वे प्रसन्नता पूर्वक गुरु महाराज के ठहरने की व्यवस्था करने को तत्पर हो गयीं और 1-2 घण्टों में अपने बंगले में ठहरने की सारी व्यवस्था कर दी। इसी बीच जज साहब ने अपने बंगले में ठहरने की सारी व्यवस्था की।

दिल्ली से गुरु महाराज आगरा के लिये चले। गुरु महाराज की एक महिला शिष्य की यह हार्दिक इच्छा थी कि गुरु महाराज आगरा आने पर उनके घर आयें। गुरु महाराज के स्वागत के लिये उस महिला के भाई, श्रीमती कक्कड़ एवम् उनके भाई तथा अन्य कई लोग दिल्ली-आगरा मार्ग पर एक पुल के निकट प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु गुरु महाराज की कार सीधे उन महिला शिष्य के घर के आगे रुकी। उन्हें और उनकी पुत्री को सर्वप्रथम गुरु महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे थोड़ी देर

उनके घर पर ठहरे, फिर गुरु महाराज ने उनसे, उन्हें जज साहब के घर ले जाने के लिये कहा। वे तथा उनकी पुत्री गुरु महाराज के साथ कार में बैठकर उन्हें जज साहब के घर ले गयीं।

गुरु महाराज के कहने पर उनकी पुत्री ने कुछ भजन गाकर सुनाये। इसी बीच उनके पुत्र का एक मित्र घर पर ताला पड़ा देखकर जज साहब के बंगले पर आ गया। वह यह देखकर आश्चर्य चकित था कि गुरु महाराज वहाँ पहुँच भी चुके हैं, जबकि अन्य लोग गुरु महाराज की मार्ग पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह अविलम्ब वहाँ से दौड़कर सभी लोगों को वहाँ ले आया। सभी आश्चर्य चकित थे कि गुरु महाराज की कार कैसे सबकी दृष्टि से बचकर निकल गयी। गुरु महाराज 2 दिन आगरा रहे। वे जज साहब के घर रुके तथा श्रीमती कक्कड़ के घर भी गये, जिससे वे अतीव प्रसन्नता हुई।

दो दिन आगरा में व्यतीतकर गुरु महाराज वृंदावन पहुँचे। वृंदावन गुरु महाराज का चिर परिचित स्थान था। अनेक वर्ष पूर्व उन्होंने इस पावन स्थल पर अनेकों दिन बिताये थे। कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक स्थलों पर जाने के पश्चात् उन्होंने कानपुर प्रस्थान किया और 2-3 दिन रुककर प्रयाग पहुँचे।

प्रयाग में गुरु महाराज के ठहरने की निःशुल्क व्यवस्था मेला प्रबन्धकों द्वारा गंगा के तट पर की गयी। गुरु महाराज के साथ कुछ सन्यासी और गृहस्थ शिष्य भी ठहरे।

कुम्भ में त्रिवेणी स्नान करना तथा विभिन्न सन्त महात्माओं का दर्शन करना तीर्थ यात्रियों का नियम होता है। यात्रियों के अतिरिक्त मुमुक्षु भी गुरु महाराज से मार्गदर्शन प्राप्त करने उनके पास आया करते थे। अनेक साधु जो गुरु महाराज के बारे में जानते थे तथा वसिष्ठ गुहा जाकर उनके दर्शन नहीं कर सके थे, वे गुरु महाराज से मिलने लगातार आते रहते। गुरु महाराज का डेरा आने वालों से पूरा भरा रहता। वहाँ सतत् सत्संग होता रहता। भक्तगण आध्यात्मिक विषयों पर अपने मन की शंकाएँ उनके सम्मुख रखते और गुरु महाराज उन्हें दूर करते।

कुम्भ मेले में मकर संक्रान्ति के दिन किसी संस्था द्वारा एक धर्मसभा का आयोजन किया गया। अनेक साधुओं के साथ गुरु महाराज को भी सभा को सम्बोधित करने के लिये आमंत्रित किया गया। गुरु महाराज ने अंग्रेजी में एक छोटा सा व्याख्यान देते हुए श्रोताओं को सच्चे मन से अध्यात्म की साधना तथा भक्ति के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया। एकत्रित जन

समूह में अनेकों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने के कारण गुरु महाराज के शिष्य स्वामी भूमानन्द जी ने गुरु महाराज के उद्बोधन का हिन्दी रूपान्तर साथ-साथ प्रस्तुत किया।

गुरु महाराज मेले की भीड़-भाड़ से हटना चाह रहे थे। इस कारण मुख्य स्नान के पश्चात् गुरु महाराज वहाँ से हटकर लूकरगंज की शान्त कालोनी में अपने एक शिष्य श्री आर.के. वाटल के यहाँ विश्राम करने चले गये। इलाहाबाद की यात्रा समाप्त कर गुरु महाराज लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में एक सप्ताह रुककर गुरु महाराज फरवरी 1960 के प्रथम सप्ताह में वसिष्ठ गुहा पहुँचे।

नवीन कुटी का निर्माण

अक्टूबर 1956 में आयी बाढ़ के कारण मार्च 1957 से गुरु महाराज आश्रम के भवन की छत पर बने कमरे में रहा करते थे। कमरे के सामने वाली छत पर आगन्तुकों के साथ वार्तालाप करते थे। छत से गंगा का प्रवाह तथा पर्वत श्रृंखलाओं के मनोहारी दृश्य दिखाई देते थे। छत पर बैठकर व्यक्ति शीघ्र ही अपने आस-पास के वातावरण को भूल जाता। इसके बाद भी ऊपर का कमरा शीतकाल में अत्यधिक ठण्डा हो जाता था। गुरु महाराज को शौच के लिये अंधेरे में नीचे उतरना पड़ता। जाड़े में अधिक असुविधा होती। गुरु महाराज की अवस्था 80 को पार कर गयी थी। गुरु महाराज के एक शिष्य श्री रामचन्द्र खन्ना, 80 वर्ष पार कर चुके थे और 1959-60 के शीतकाल में गुहा में निवास कर रहे थे, ने गुरु महाराज के कष्ट को देखते हुए, गुरु महाराज के लिए एक कुटीर का निर्माण का निर्णय लिया और गुरु महाराज से इस हेतु अनुमति माँगी। भक्त की सच्ची भावना का सम्मान करते हुए गुरु महाराज ने अपनी अनुमति दे दी। कुटीर निर्माण के लिये स्थल का चुनाव किया गया तथा 1960 की गर्मी तक कुटीर एवम् उसके सामने स्नानघर तैयार हो गया। गुरु महाराज ने उस कुटीर का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया। वैसे यह कोई विशेष घटना नहीं थी, किन्तु इसी कुटीर में गुरु महाराज ने महासमाधि ली। इस कारण यह कुटीर मंदिर तुल्य स्थल बन गया है।

दक्षिण भारत की यात्रा

सन् 1960 के ग्रीष्मकाल में गुरु महाराज ने अचानक दक्षिण भारत विशेषकर कन्याकुमारी जाने का निर्णय लिया। यह समय यात्रा के लिये उपयुक्त नहीं था, क्योंकि इस समय गरमी खूब होती है और केरल में जुलाई-अगस्त में घनघोर वर्षा होती है। गुरु महाराज इन बातों से अनभिज्ञ नहीं थे, फिर भी उन्होंने यात्रा करने का निर्णय लिया। ऐसा क्यों किया यह कहना कठिन है, किन्तु भक्तों का मानना है कि गुरु महाराज को पूर्णतः आभास था कि इस समय यात्रा करना आवश्यक क्यों है।

इस बार की यात्रा में गुरु महाराज ने कन्याकुमारी के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर अधिक समय प्रवास नहीं किया, किन्तु इस यात्रा कार्यक्रम में उन्होंने अपने पूर्व परिचित सभी स्थानों का समावेश किया। एक प्रकार से उन्होंने अपने सभी भक्तगणों को दर्शन का सुअवसर प्रदान किया। गुरु महाराज की इससे पूर्व की दक्षिण यात्रा के 2 वर्ष भी पूर्ण नहीं हुए थे। इसके अतिरिक्त, मात्र 3-4 लोगों, जिन्हें आश्रम की देखभाल करने का दायित्व सौंपा गया था, को छोड़कर गुरु महाराज ने इस बार कहा कि जो इस यात्रा में उनके साथ चलना चाहे, आ सकता है, 125 जून 1960 को गुरु महाराज ने 6-7 सन्यासी एवम् ब्रह्मचारी शिष्यों के साथ हरिद्वार से लखनऊ के लिये प्रस्थान किया। साधारणतया उनके साथ 1-2 शिष्य ही जाते थे। लखनऊ में इस समूह में 2 वृद्ध महिलाएँ एवम् कुछ गृहस्थ शिष्य भी सम्मिलित हो गये।

लखनऊ में गुरु महाराज ने गोमती के किनारे शुक्ला घाट पर पड़ाव डाला। जब लखनऊ के शिष्यों को पता चला कि गुरु महाराज 8 जुलाई को गुरु पूर्णिमा के दिन केरल पहुँचना चाहते हैं और लखनऊ 3-4 दिन रुकेंगे, तो उन्होंने इस बीच गुरु महाराज के साथ गुरु पूर्णिमा मनाने का निश्चय किया। इनमें से कुछ लोग प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा के दिन वसिष्ठ गुहा जाया करते थे। इस बार वे गुरु पूजन से वंचित रह जाते। इस कारण लखनऊ के भक्तों ने बाराबंकी, सीतापुर तथा आस-पास के क्षेत्रों में अपने गुरुभाईयों को सूचना भेजी। उस दिन उत्सव में वे सभी लखनऊ में उपस्थित हुए। वैसे भी सभी के लिये वसिष्ठ गुहा जाकर गुरु पूजन में उपस्थित होना सम्भव नहीं होता था। जिस दिन आयोजन सम्पन्न हुआ उसी दिन संध्या को गुरु महाराज अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ ट्रेन

द्वारा मद्रास के लिये प्रस्थान कर गये।

मद्रास में गुरु महाराज तथा उनके साथ गये लोगों के ठहरने की व्यवस्था कुछ भक्तगणों ने की। इससे पूर्व वे जब भी मद्रास जाते, श्री रामकृष्ण मठ में ठहरते थे। मद्रास स्टेशन पहुँचने पर जब गुरु महाराज को ठहरने की व्यवस्था के बारे में जानकारी मिली, तो उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी, किन्तु बाद में वह सहमत हो गये। माइलपूर में मंदवेली के निकट एक शान्त स्थान पर गुरु महाराज के ठहरने की व्यवस्था श्री रामकृष्ण के एक भक्त के भवन "शारदा कुटीर" में की गयी। अन्य लोगों के रहने की व्यवस्था उस भवन के सामने बने दो भवनों में की गयी।

गुरु महाराज के 3 दिन के मद्रास प्रवास में प्रतिदिन सत्संग का आयोजन होता। इसमें गुरु महाराज आगन्तुकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देते। एक दिन गुरु महाराज श्री रामकृष्ण मठ गये। मठ के वरिष्ठ सन्यासी तथा अन्य लोग उनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ समय वार्तालाप कर गुरु महाराज वापस निवास स्थान लौट आये। एक दिन गुरु महाराज समुद्र स्नान करने गये। समुद्र स्नान उन्हें बहुत प्रिय था, किन्तु इस बार वे एक ही बार समुद्र स्नान के लिये गये। प्रातः बेला समुद्र स्नान करने के बाद वे कुछ समय सागर तट पर ध्यान करने बैठ गये। साथ में आये कुछ भक्त भी कुछ दूर ध्यान करने बैठ गये। मद्रास में तीन दिन रुक कर ट्रेन से गुरु महाराज ओट्टप्पालम् के लिये रवाना हो गये।

दूसरे दिन स्वामी जी ओट्टप्पालम् पहुँचे। वहाँ गुरु महाराज अपने सन्यासी शिष्यों के साथ श्री रामकृष्ण-निरंजन आश्रम में ठहरे। अन्य लोगों के रुकने की व्यवस्था अपने आश्रम के निकट एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश के मकान पर की गयी। न्यायाधीश स्वयं श्री रामकृष्ण के भक्त एवम् स्वामी निर्मलानन्द जी के शिष्य थे। ओट्टप्पालम् में अनेक लोग उनके दर्शन एवम् मार्गदर्शन हेतु आते रहते थे। गुरु पूर्णिमा निकट आ रही थी। गुरु महाराज देशमंगलम् पहुँचना चाहते थे।

अपनी यात्रा प्रारम्भ करने से लगभग एक माह पूर्व अर्थात् मई 1960 में ही गुरु महाराज ने अपने एक शिष्य स्वामी सदाशिवानन्द जी को ओंकाराश्रम जाकर स्वामी साम्बानन्द जी के कार्यों में उनकी सहायता करने के लिये वहाँ भेजा था, क्योंकि स्वामी साम्बानन्द जी की आयु 80 वर्ष से अधिक हो चुकी थी। 23 मई को सदाशिवानन्द जी देशमंगलम् पहुँचे और यह जानकर आश्चर्यचकित रह गये कि 20 मई को स्वामी साम्बानन्द जी अपना शरीर छोड़ चुके हैं। स्वामी साम्बानन्द जी की मृत्यु के बाद

ओंकाराश्रम के भक्तगणों ने पत्र लिखकर गुरुदेव से आश्रम की व्यवस्था देखने के लिये एक सन्यासी नियुक्त करने की प्रार्थना की थी और उनका संदेश वसिष्ठ गुहा पहुँचने से पूर्व ही गुरु महाराज ने स्वामी सदाशिवानन्द जी को भेज दिया था। स्वाभाविक ही गुरु महाराज के प्रति उन सबकी श्रद्धा बढ़ गई थी।

दो दिन रुककर 6 जुलाई को गुरु महाराज कार से 2 घंटे में ओंकाराश्रम पहुँच गये। गुरु महाराज के स्वागत हेतु आश्रम को बड़ी सुन्दर रीति से सजाया गया था और चारों ओर उत्सव का वातावरण था। अगले दिन, गुरु पूर्णिमा को काफी संख्या में स्थानीय भक्त जन उत्सव में सम्मिलित होने आश्रम आये। गुरु महाराज के एक अन्य शिष्य स्वामी परेशानन्द जी भी कन्याकुमारी से गुरु महाराज की पाद्य पूजा करने तथा उन्हें अपने साथ कन्याकुमारी ले जाने के लिये ओंकाराश्रम आये। गुरुपूजन और हवन के पश्चात गुरु महाराज ने स्वयं गर्भगृह में प्रवेश किया तथा अन्य सभी को गर्भगृह के बाहर जाने के लिये कहकर गर्भगृह का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। वहाँ गुरु महाराज ने कुछ समय अकेले बिताया। उसके पश्चात उन्होंने स्वयं 'प्रणव' की पूजा आरती की। गर्भगृह में बैठकर गुरु महाराज ने आश्रम के भविष्य की मंगलकामना हेतु अपने आध्यात्मिक स्पन्दनों से अनुप्रणित किया। उस दिन उन्होंने श्री कुरुनायर तथा उनकी पुत्री को मंत्र दीक्षा दी। श्री कुरुनायर ने आश्रम निर्माण हेतु यह भूखण्ड निःशुल्क दिया था। आश्रम के रख-रखाव हेतु उन्होंने कुछ कृषि योग्य भूमि भी आश्रम को भेंट की थी।

पूजन तथा अन्य कार्यक्रमों के पश्चात भोज का आयोजन किया गया। भोजनोपरान्त गुरु महाराज तथा अन्य सहमार्गियों ने गुरुवायूर के लिये प्रस्थान किया।

कन्याकुमारी की ओर

गुरुवायूर के मन्दिर से गुरु महाराज का बचपन से जुड़ाव था, इसलिये केरल यात्रा में यहाँ आना न भूलते। भारी वर्षा के उपरान्त भी गुरु महाराज यहाँ तीन दिन रुके तथा प्रतिदिन मन्दिर जाकर दर्शन करने के पश्चात उन्होंने अनेक साधकों का आध्यात्मिक विषयों पर मार्गदर्शन किया।

यहाँ आने पर गुरु महाराज के साथ आये लोग कई समूहों में बंट गये। अपने कुछ सन्यासी शिष्यों को उन्होंने विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने के पश्चात कन्याकुमारी आकर मिलने को कहा।

गृहस्थ भक्तों को कुछ दिन गुरुवायूर में व्यतीत करने का निर्देश दिया। उन्हें भी कुछ दिन पश्चात गुरु महाराज से आकर मिलना था, किन्तु मिलने का स्थान निश्चित नहीं था। गुरु महाराज इसके बारे में बाद में सूचना देने वाले थे, किन्तु भारी वर्षा के कारण तथा केरल में डाक-तार विभाग के कर्मचारियों की हड़ताल के कारण उन्हें कोई समाचार नहीं मिला। उत्तर भारत के होने के कारण उन्हें स्थानीय लोगों से बातचीत करने की समस्या थी। उन लोगों ने अपना धैर्य नहीं खोया तथा उन्हें गुरु महाराज के प्रति श्रद्धा थी। इस कारण वे सीधे कन्याकुमारी गये।

इसी बीच मात्र 3-4 लोगों के साथ गुरु महाराज, गुरुवायूर से चलकर भगवान श्री शंकराचार्य के जन्मस्थल कालड़ी गये। वहाँ से हरिष्पाट्ट गये। वहाँ पर उनके एक शिष्य के घर उनकी माता की 60वीं वर्षगाँठ पर आयोजित साप्ताहिक भागवत पाठ में गये।

शिष्य के निमंत्रण को स्वीकार कर गुरु महाराज ने उनके घर जाकर उन्हें कृतार्थ किया और उनकी माँ को आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात कुछ अन्य स्थानों से होकर 14 जुलाई को तिरुवनन्तपुरम पहुँचे। गुरु महाराज जब भी तिरुवनन्तपुरम जाते, सदैव ही अपने बचपन के मित्र तथा प्रसिद्ध वैद्य श्री नारायण पिल्लइ के "धन्वन्तरि मठ" में निवास करते। अब श्री पिल्लइ का देहावसान हो चुका था, किन्तु उनके परिवार के अन्य लोग भी गुरु महाराज के प्रति श्रद्धा भाव रखते थे और उन्होंने गुरु महाराज से वहाँ ठहरने का आग्रह किया। इसी अवधि में गुरु महाराज को कैप्टन पी.जी. नायर ने भी अपने निवास में रहने हेतु आमंत्रित किया। कैप्टन नायर के पिता (स्वामी परेशानन्द) ने दो ही वर्ष पूर्व गुरु महाराज से सन्यास की दीक्षा प्राप्त की थी। गुरु महाराज ने उनका निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया। धन्वन्तरि मठ में 1-2 दिन रहकर गुरु महाराज पूजापुरा स्थित कैप्टन नायर के घर चले गये।

कैप्टन नायर का सरकारी आवास "ब्लू हाउस" गुरु महाराज के स्वागत के लिये विशेष रूप से सजाया गया। मुख्य प्रवेश द्वार से लेकर निवास स्थान तक पूरे मार्ग में किनारे-किनारे आम, केले के पत्तों, इत्यादि से बने स्वागत द्वार जगह-जगह पर बनाये गये और पूरे मार्ग पर बालू बिछाकर उस पर पानी से छिड़काव किया गया। यह सारी व्यवस्था केरल की परम्परा के अनुसार थी। मुख्य द्वार पर श्रीमती एवम् श्री नायर ने उनका स्वागत किया और बहुत सम्मान से मुख्य भवन में ले गये। भवन के प्रवेश द्वार पर नायर दम्पति ने उनकी विधिवत पाद्य पूजा की। गुरु

महाराज वहाँ 5 दिन ठहरे। एक दिन गुरु महाराज ने कैप्टन नायर तथा उनकी बुआ को मंत्रदीक्षा देकर कृतार्थ किया। अनेक भक्तगण उनसे मिलने आये और उन्हें आग्रहपूर्वक अपने घरों में ले गये। उनमें से अनेकों को गुरु महाराज ने मंत्रदीक्षा दी।

तिरुवनन्तपुरम श्री पद्मनाभ मन्दिर के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान नारायण शेषनाग (अनन्त) पर लेटे हुए हैं। इसी कारण इस स्थान का नाम श्री अनन्तपुर है। श्री को स्थानीय भाषा में तिरु से जाना जाता है (तिरु—अनन्त पुरम्)। अंग्रेजी भाषा में इसे त्रिवेन्द्रम् कहते हैं। गुरु महाराज ने मन्दिर जाकर भगवान के दर्शन किये। मन्दिर के निकट बने अभेदश्रम के मुख्य स्वामी अभेदानन्द जी के आग्रह पर गुरु महाराज वहाँ गये। अभेदानन्द जी जनमानस में परमात्मा के नाम प्रसार करने के लिये विख्यात थे। वे महान भक्त तथा अच्छे कीर्तनकार थे। वे वसिष्ठ गुहा भी आ चुके थे। श्री अभेदानन्द जी ने गुरु महाराज का स्वागत किया। वहाँ से वे “ब्लू हाउस” लौट आये। वहाँ पर नियमित रूप से भजन, कीर्तन तथा धार्मिक कार्यक्रम होते तथा भक्तों के साथ गुरु महाराज सत्संग भी करते।

तिरुवनन्तपुरम से गुरु महाराज कन्याकुमारी पहुँचे। तीन ओर समुद्रों से घिरा भारत का यह दक्षिणी छोर एक सुन्दर स्थान है। गुरु महाराज 21 जुलाई को वहाँ पहुँच गये। यहाँ भी परेशानन्द जी का “शान्ति निलय” आश्रम गुरु महाराज के स्वागत हेतु विशेष रूप से सजाया गया था।

कन्याकुमारी गुरु महाराज की यात्रा का अन्तिम पड़ाव था। अपने गुरुदेव स्वामी ब्रह्मानन्द जी की तरह उन्हें भी यह स्थान अत्यन्त प्रिय था। अतः वे जब भी दक्षिण भारत की यात्रा करते, इस स्थान पर अवश्य आते। इस बार वे कन्याकुमारी में पूरे 24 दिन ठहरे। “शान्ति निलयम्” आश्रम में उत्सव सा छाया रहता। प्रातः तथा सायं दोनों ही समय सत्संग होता। अनेक लोग गुरु महाराज से मार्गदर्शन एवम् मंत्रदीक्षा लेने आते। आस-पास के आश्रम के सन्यासी भी उनसे भेंट करने आते रहते थे। उनमें से अनेकों गुरु महाराज के पूर्व परिचित भी थे। उन सभी के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त आदरभाव था। कुछ स्थानीय भक्तगण आग्रह करके गुरु महाराज को अपने घर ले जाते थे। उन घरों में भजन—कीर्तन तथा सत्संग का अभूतपूर्व वातावरण बन जाता। गुरु महाराज के आने के कारण उनका घर पवित्र हो गया, ऐसा वे मानते थे।

गुरु महाराज को समुद्र स्नान अतिशय प्रिय था। प्रातःकाल ही समुद्र स्नान के पश्चात् अपने शिष्यों सहित भगवती कन्याकुमारी का दर्शन करना

उनका नित्यक्रम था। दर्शन के पश्चात् मन्दिर के निकट के गणेश मन्दिर के पास ही सागर तट पर बैठकर सभी लोगों के साथ वे ध्यान पर बैठ कर रहे थे। सभी लोगों को इससे लाभ हुआ।

“शान्ति निलयम्” आश्रम इन दिनों विभिन्न धार्मिक गति-विधियों का केन्द्र था। दिन भर भेंट करने वालों का तांता लगा रहता। स्वामी परेशानन्द जी* अपने गुरुदेव को किसी प्रकार की असुविधा न हो, का विशेष ध्यान रखते थे। उन्हें गुरु महाराज की सेवा का अवसर मिल रहा है, यह उनके लिये प्रसन्नता का विषय था।

गुरु महाराज जब 1958 में कन्याकुमारी आये, तो 10 दिन जनरल पिल्लई के साथ ठहरे। जनरल पिल्लई पूर्व में स्वामी शिवानन्द जी से मंत्रदीक्षा प्राप्त कर चुके थे और सन्यास ग्रहण करने के इच्छुक थे। उस समय दो अन्य लोग भी गुरु महाराज से सन्यास हेतु प्रार्थना कर चुके थे। एक थे पुडुकाड स्थित श्री रामकृष्ण आश्रम के ब्रह्मचारी केशवन तथा दूसरे थे प्रसिद्ध वकील श्री दामोदर मेनन, जो श्री रमण महर्षि के भक्त थे तथा पालघाट में “विज्ञान रामनीयम्” नामक एक धार्मिक संस्थान चला रहे थे। अतः वर्ष 1958 में चैत्र पूर्णिमा के दिन 4 अप्रैल को पांगुनी उत्तरम् पर्व के दिन (दक्षिण भारत में हनुमान जयन्ती) गुरु महाराज ने सन्यास दीक्षा देकर गुरुए वस्त्र प्रदान किये तथा नये नाम दिये —

ब्रह्मचारी केशवन	—	स्वामी नरेन्द्रानन्द
श्री परमेश्वरन पिल्लई	—	स्वामी परेशानन्द
श्री दामोदर मेनन	—	स्वामी सुरेशानन्द

*स्वामी परेशानन्द जी का पूर्व नाम मेजर जनरल व्ही. एन. परमेश्वरन पिल्लई, ओ.बी. ई., सेना के एक ख्याति प्राप्त अधिकारी रह चुके थे, सेवानिवृत्ति के समय वे त्रावणकोर कोचीन राज्य के जी.ओ.सी. थे। सेवानिवृत्ति के पश्चात् 1950 से वे कन्याकुमारी में वानप्रस्थी जीवन व्यतीत कर रहे थे।

प्रथम बार वसिष्ठ गुहा आने पर ही उनके मन में गुरु महाराज के प्रति आदर भाव था। 1955 में जब वह दोबारा गये तब गुरु महाराज की “आत्मकथा” लिखकर करीब-करीब पूर्ण हो चुकी थी। उन्होंने गुरु महाराज से प्रार्थना करके उसे प्रकाशित करने हेतु आज्ञा प्राप्त की। गुरु महाराज की अनुमति एवम् आशीर्वाद प्राप्त करके उन्होंने उस पाण्डुलिपि को प्रकाशित करवाया और गुरु महाराज के प्रेमपात्र बने।

पम्बा नदी में नौका विहार

कन्याकुमारी से उत्तर भारत की ओर प्रस्थान करने से पूर्व रामेश्वरम् की यात्रा करने के इच्छुक अपने साथ आये भक्तों को गुरु महाराज ने रामेश्वरम् जाने की आज्ञा दी। वे लोग गुरु महाराज का आशीर्वाद प्राप्त करके रामेश्वरम् के लिये चल दिये। गुरु महाराज अपने शिष्य श्री एवम् श्रीमती व्ही. जी.जी. नायर तथा शेष शिष्यों के साथ दो गाड़ियों में बैठकर वापसी की यात्रा के लिये चल दिये।

कन्याकुमारी से कुंझा होते हुए सब लोग तिरुवनन्तपुरम् पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्री नायर के नवीन भवन की आधारशिला रखी। सब लोग वहाँ से कुंझा गये, जहाँ श्री नायर एक बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान के प्रबन्ध संचालक थे। गुरु महाराज उनके विशाल भवन में 3-4 दिन रहे।

प्रतिदिन कीर्तन, भजन, सत्संग का आयोजन होता था। सभी लोग प्रसन्न थे। एक दिन गुरु महाराज ने श्री नायर की कन्या का विद्यारम्भ बड़े विशिष्ट प्रकार से किया। गुरु महाराज ने उसे अपनी जिह्वा बाहर निकालने को कहा और सुवर्ण मुद्रिका से उस पर गूढ़ अक्षर अथवा मंत्र लिखकर उसे सच्चे अर्थ में विद्या के क्षेत्र में दीक्षित किया। कुंझा से कार द्वारा प्रस्थान कर गुरु महाराज हरिष्पाट्ट पहुँचे और श्रीरामकृष्ण आश्रम में रुके। इसी आश्रम में 1916 में गुरु महाराज ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से मंत्रदीक्षा प्राप्त की थी। आश्रम के सन्यासीगण गुरु महाराज से मिलकर अतीव प्रसन्न हुए।

महात्माओं के मन को कौन समझ सकता है। हरिष्पाट्ट पहुँचने पर गुरु महाराज ने पम्बा नदी में नौका विहार करने का विचार किया। अरणमूल स्थित प्रसिद्ध श्री पार्थसारथी मन्दिर में जाकर दर्शन करने हेतु एक आध्यात्मिक यात्रा थी। अरण मूल में पम्बा नदी पर चलने वाली नौका साधारण नहीं होती। आकार में विशाल, करीब 150 फीट या उससे भी अधिक लम्बी, इस नौका के पिछले हिस्से 50 फीट तक आकाश में उठे रहते हैं। इन्हें भूमि पर धूप तथा वर्षा से बचाने के लिये बड़े-बड़े छप्परों में सुरक्षित रखा जाता है। एक नौका को पानी में उतारने, खेने और वापस छप्पर में रखने के लिये सौ-सौ आदमियों की आवश्यकता होती है।

करीब सौ नौका चालक, दो पंक्तियों में बंटकर नौका के दोनों ओर

बैठते हैं। नौका के मध्य में करीब 20 लोगों की मंडली ढोल और अन्य वाद्य यन्त्रों की लय पर विशिष्ट "नौका गीत" गाने के लिये तत्पर रहती है। प्रतिवर्ष ओणम के पर्व के एक-दो दिन बाद 20-25 नौकाएं इसमें भाग लेती हैं। विशिष्ट अतिथि, विदेशी पर्यटक तथा हजारों लोग प्रतियोगितायें देखने आते हैं।

गुरु महाराज का नौका विहार का विचार अकस्मात् था। इसके पीछे कोई पूर्व योजना नहीं थी। वास्तव में परमहंस व्यक्तियों के कार्य पूर्व नियोजित नहीं होते। फिर भी अनेक बाधाओं के उपरान्त भी गुरु महाराज के द्वारा इच्छित यह कार्य सम्पन्न हुआ।

जिस दिन गुरु महाराज अपने भक्तों के साथ हरिष्पाट्ट पहुँचे, उन्होंने स्वामी सदाशिवानन्द जी को दोपहर में बुलाकर कहा, "अरण मूल में नौका विहार। कल प्रातः 8 बजे"। आगे की कथा स्वामी सदाशिवानन्द जी के शब्दों में :-

इसकी सारी प्रक्रिया मुझे ज्ञात थी, इसलिए मैं अवाक रह गया। यदि नौका किराये पर लेनी हो तो इसके लिये कम से कम एक सप्ताह पूर्व इस व्यवस्था के संचालक को आवश्यक संविदा राशि जमा करनी होती है। इसके बाद ही वे लोग नौका को पानी में उतार कर उसे चलाने हेतु आदमी नियुक्त करते हैं। उनके कुछ और भी नियम हैं। आदेश पाते यह सारी बातें मेरे मन में कौंध गयीं। मैं गुरु महाराज के सामने दण्डवत् लेट गया।

उन्होंने पीठ थपथपाते हुए दस रुपये दिये और कहा "सब ठीक हो जायेगा, जाओ"। उनका आशीर्वाद पाकर मुझे बल मिला मैं तुरन्त अपने पूर्वाश्रम नेटुंप्रयार के लिये चल पड़ा, पहुँचते-पहुँचते सूर्यास्त हो चुका था। मैंने कुछ परिचितों से सम्पर्क किया तथा इस सम्बन्ध में वार्ता की। उन्होंने 12 घंटे की पूर्व सूचना पर की जाने वाली सारी व्यवस्था में सम्भावित बाधाओं को मेरे सामने रखा। फिर भी लोगों ने आश्वासन दिया कि सब लोग यथासम्भव प्रयत्न करेंगे। उन्होंने गुरु महाराज के बारे में सुन रखा था और उनकी इच्छा पूर्ण होगी, तो आशीर्वाद देंगे, अतः वे सब भी उत्सुक थे। कुछ लोग सारी रात आवश्यक संख्या में नौका चलाने वालों को एकत्र करने में लग गये।

दूसरे दिन प्रातः 7.30 बजे गुरु महाराज भक्तों के साथ हरिष्पाट्ट से चलकर मेरे पूर्व आश्रम आ गये।

हे! क्या स्थिति है - महाराज ने पूछा

प्रयत्न चल रहा है महाराज - मैंने कहा।

“ओह, यदि कठिन हो तो नौका विहार का विचार छोड़ देना ही बेहतर”, कहते हुए महाराज ने अपना आसन ग्रहण किया। वहाँ विभिन्न जाति, वर्ग, धर्म, के बच्चे, वृद्ध, तरुण, स्त्री और पुरुष मौजूद थे। वहाँ छोटे-छोटे बच्चे भजन-कीर्तन कर रहे थे। करीब दो घंटे बीत गये। गुरु महाराज ने अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा। मैंने उत्तर दिया कि भोजन तैयार हो चुका है। कुछ खाने के पश्चात हम लोग नौका विहार पर जा सकते हैं। गुरु महाराज सहमत हो गये। भोजन के पश्चात हम लोग घाट की ओर चल दिये। सारी भीड़ घाट की ओर दौड़ पड़ी। जब तक हम लोग पहुँचे तब तक सारी व्यवस्था हो चुकी थी। हम लोग नौका में बैठे। महाराज के लिये विशेष कुर्सी रखी हुई थी। दस बजे नौका चल पड़ी। नौका चालकों ने ढोल-मंजीरे की ताल पर नौकागीत के रूप में कुचेला वृतम् (सुदामा की कहानी) सुनाई। मन्दिर के घाट पर पहुँच कर सबने भगवान के दर्शन किये। करीब दो बजे नौका वापस नेटुप्रयार लौट आयी।

पूरी यात्रा में गुरु महाराज प्रसन्न थे और उन्हें प्रसन्न देखकर हमें अपना परिश्रम सफल लगा, किन्तु इतनी कम अवधि में यह सारा आयोजन कैसे हो सका? क्योंकि यह मेरी क्षमता के बाहर था, परन्तु ईश्वर की इच्छा तथा गुरु महाराज के सम्बल से असम्भव कार्य भी सम्भव हो सका।

नेटुप्रयार में करीब एक घण्टा रुककर गुरु महाराज अपनी पूरी मण्डली के साथ मोटर द्वारा पुल्लाडु पहुँचे। वहाँ के वैद्यनारायण पनिकर तथा उनके परिवारजन गुरु महाराज जी के भक्त थे, उनके आगमन से स्वयं को उन्होंने सौभाग्यशाली समझा। संध्या होते-होते गुरु महाराज तिरुवल्ला पहुँचे और सीधे वहाँ से श्री रामकृष्ण आश्रम चले गये। आश्रम के सन्यासीगण गुरु महाराज को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन सबने गुरु महाराज का हार्दिक स्वागत किया।

उनमें से अधिकतर गुरु महाराज के गुरुभाई थे और अपने ब्रह्मचारी होने के दिनों में गुरु महाराज के साथ रह भी चुके थे। उन सबको गुरु महाराज के वहाँ आने से प्रसन्नता तो थी, किन्तु इतने अतिथियों के रहने की समस्या थी। गुरु महाराज के साथ एक महिला भक्त भी थी और आश्रम में स्त्रियों की उचित व्यवस्था नहीं थी। भक्तों के लिये आश्रम में रुकने की व्यवस्था हो गयी। आश्रम में समय बिताकर गुरु महाराज श्री बल्लभ के मन्दिर दर्शन करने गये। गुरु महाराज का बचपन एवम् किशोरावस्था इस मन्दिर की यादों से जुड़ा है। इस कारण जब भी वे तिरुवल्ला आते, श्री बल्लभ के दर्शन करना कभी भी नहीं भूलते। इसके पश्चात सभी लोग

शंकर वेलिल हाउस गये। इन दिनों इस घर की स्वामिनी (पूर्व की गृहस्वामिनी की पुत्री थी) गुरु महाराज को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उस परिवार के सभी सदस्यों का गुरु महाराज के प्रति आदरभाव था। गुरु महाराज के साथ आयी महिला की रुकने की व्यवस्था यहाँ हो गयी। घर के सभी सदस्यों ने गुरु महाराज से रुकने का आग्रह किया, किन्तु गुरु महाराज इसके लिये सहमत नहीं हुए। उनके मन में स्वयं अपने घर में रुकने की इच्छा थी। अतः वह अपने घर “कुज़ियिल परम्ब वीडु” पहुँचे। उनकी बहन की पुत्री पारुकुट्टी अम्मा उन्हें घर में आया देखकर आनन्द विभोर हो गयी। इससे पूर्व जब भी गुरु महाराज तिरुवल्ला आते, पारुकुट्टी अम्मा उनसे मिलने आती, किन्तु उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था, गुरु महाराज उनके घर विश्राम करने आयेंगे। सन्यास ग्रहण करने के बाद गुरु महाराज का घर में ठहरने का यह प्रथम और अन्तिम अवसर था। गुरु महाराज के लिये आंगन में एक चारपाई डाली गयी। उन्होंने खुले आंगन में रात्रि विश्राम किया। पारुकुट्टी अम्मा को महसूस हुआ कि उनका घर पवित्र हो गया।

दूसरे दिन गुरु महाराज ने तिरुवल्ला के लिये प्रस्थान किया। कालड़ी, गुरुवायूर तथा अन्य स्थानों को होते हुए कार द्वारा वे देशमंगलम् पहुँचे। देशमंगलम् में जिन सज्जन ने ओंकाराश्रम के निर्माण हेतु भूखण्ड दान में दी थी, उन्होंने तथा वहाँ के अन्य भक्तों ने गुरु महाराज से आश्रम को सुचारु रूप से चलाने हेतु कुछ व्यवस्था करने की प्रार्थना की थी। गुरु महाराज के वहाँ पहुँचते ही स्थानीय भक्तगण एकत्र हो गये। गुरु महाराज के एक शिष्य स्वामी परमानन्द जी ने आश्रम के ही निकट की कुछ कृषि हेतु भूमि आश्रम का दान कर दी थी। गुरु महाराज की आज्ञा से आश्रम के संचालन हेतु पाँच सदस्यों की एक समिति गठित कर दी गयी। इसमें 4 गृहस्थ सदस्य तथा स्वामी सदाशिवानन्द जी, सन्यासी सदस्य बने। सदाशिवानन्द जी पर आश्रम में रहकर उसका उचित संचालन करने का दायित्व सौंपा गया। ओंकाराश्रम में एक दिन रुककर गुरु महाराज अगली यात्रा पर प्रस्थान कर गये।

ओट्टप्पालम् में कुछ देर रुककर गुरु महाराज पालघाट पहुँचे, जहाँ स्वामी सुरेशानन्द जी ने एक सत्संग आयोजित कर रखा था। उनके “विज्ञान

*माता के बाद कन्या का गृह की उत्तराधिकारिणी के रूप में गृहस्वामिनी होना, मातृसत्ता की परम्परा का पालन करने वाली केरल के कुछ समुदायों की प्रथा है।

रामनीयम्" में बड़ी भीड़ एकत्रित थी। गुरु महाराज ने धार्मिक विषयों पर एक छोटा सा उद्बोधन किया और कोयम्बतूर के लिये प्रस्थान कर गये, जहाँ उन्हें किसी भक्त ने आमंत्रित कर रखा था।

कोयम्बतूर यात्रा के दौरान गुरु महाराज बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक श्री व्ही. आर. कृष्ण पिल्लड, सहायक कलेक्टर, सीमा शुल्क विभाग के यहाँ पहुँच गये। श्रीमती पिल्लड स्वामी परेशानन्द जी की पुत्री थी, जिनके विषय में परेशानन्द जी ने गुरु महाराज से चर्चा की थी।

गुरु महाराज के अचानक आगमन से पिल्लड दम्पति चकित थे, किन्तु उन्होंने गुरु महाराज तथा उनके साथ आये लोगों का यथोचित स्वागत सत्कार किया। उनका आतिथ्य स्वीकार करने के बाद सभी लोग ट्रेन से मद्रास के लिये रवाना हो गये। इस समय उनके साथ 1-2 शिष्य ही थे। इतनी लम्बी यात्रा के बाद गुरु महाराज वसिष्ठ गुहा जाने के उत्सुक थे। इस कारण वे मद्रास में दो दिन रुके तथा लखनऊ के लिये प्रस्थान किया।

(40)

उत्तर भारत की ओर

गुरु महाराज लखनऊ में तीन दिन ठहरे। इसी समय उन्हें ऋषिकेश से तार द्वारा समाचार प्राप्त हुआ कि भारी वर्षा के कारण ऋषिकेश से गुहा तक का मार्ग स्थान-स्थान पर टूट चुका है और सारे वाहनों का आवागमन स्थगित है। इसके उपरान्त भी तीसरे दिन गुरु महाराज ने ऋषिकेश के लिये प्रस्थान किया और 6 सितम्बर 1960 को प्रातः ऋषिकेश पहुँच गये।

ऋषिकेश में गुरु महाराज को दो दिन रुकना पड़ा। ऋषिकेश से वसिष्ठ गुहा का पर्वतीय मार्ग ही नहीं टूटा था, मुनी की रेती के निकट के मार्ग का एक बड़ा हिस्सा चन्द्रभागा नदी के जल से बह गया था। इस कारण इस पूरे मार्ग का आवागमन रूका था। अतः गुरु महाराज को यहाँ दो दिन रुकना पड़ा। ऋषिकेश वासियों के लिये यह एक अच्छा अवसर था, वे गुरु महाराज के दर्शन करने पहुँचने लगे। गुरु महाराज जब गंगा स्नान करने जाते तो अनेक लोग कीर्तन करते हुए उनके पीछे-पीछे जाते। एक प्रकार से वहाँ आध्यात्मिक शोभायात्रा ही हो जाती।

गुरु महाराज ने किसी धर्मशाला में पड़ाव डाला था। यहाँ पर अनेक असुविधाएँ थीं, किन्तु कोई चारा नहीं था। 8 सितम्बर को मोटर मालिक संघ के मैनेजर ने गुरु महाराज के लिये एक बस की व्यवस्था की। मार्ग अभी पूर्णतया ठीक नहीं हुआ था। इस कारण बस को सावधानीपूर्वक धीमी गति से चलाना पड़ रहा था। एक स्थान पर सड़क टूटे होने के कारण बस से आगे जाना सम्भव नहीं था। इस कारण गुरु महाराज तथा अन्य सभी लोगों को शेष मार्ग पैदल चलकर जाना पड़ा। संध्या होते गुरु महाराज वसिष्ठ गुहा जा पहुँचे।

दो सन्यास दीक्षा समारोह

जून 1960 में गुरु महाराज द्वारा जहाँ दक्षिण की यात्रा पर जाना एक असाधारण घटना थी वहीं दूसरी ओर इस वर्ष दो बार आयोजित सन्यास दीक्षा समारोह भी था।

वर्ष 1958 की कन्याकुमारी यात्रा के दिनों एक युवा मुमुक्षु श्री कृष्णन पोर्टी उनके सम्पर्क में आया। सन्यास की आकांक्षा देखकर गुरु महाराज ने उसे गुहा आने की सलाह दी। वह युवा गृह त्याग कर विभिन्न स्थानों

की यात्रा करने के पश्चात वर्ष 1959 के अन्त में वसिष्ठ गुहा पहुँचा।

आश्रम में उन दिनों एक अन्य ब्रह्मचारी भी सन्यास दीक्षा की प्रतीक्षा कर रहा था। सन्यास ग्रहण के प्रति गम्भीरता तथा निश्चय देखकर 28 फरवरी 1960 में श्री रामकृष्ण जयन्ती के पावन पर्व पर विधि-विधान से दोनों को सन्यास की दीक्षा दी गयी। उनके नये नाम रखे गये —

ब्रह्मचारी रामकृष्ण दास — स्वामी सदाशिवानन्द
ब्रह्मचारी कृष्णन पोटी — स्वामी शंकरानन्द

बार-बार सन्यास दीक्षा देना गुरु महाराज का स्वभाव नहीं था, किन्तु इस वर्ष आश्विन पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) अर्थात् 3 अक्टूबर 1960 में ब्रह्मचारियों को विधि-विधान से तैयार किया गया और उसी रात यानि 4 अक्टूबर की ब्रह्ममुहूर्त में विरजाहोम तथा अन्य अनुष्ठानों के पश्चात उन्हें सन्यास दीक्षा दी गयी। ये दोनों ब्रह्मचारी थे —

ब्रह्मचारी गोपाल दास — स्वामी गोपेशानन्द
ब्रह्मचारी उमेश चैतन्य — स्वामी पुरहरानन्द

“आश्चर्य की बात यह थी कि यह दोनों ब्रह्मचारी पिछले दो वर्षों से आश्रम में रह रहे थे तथा उन्होंने गुरु महाराज से सन्यास दीक्षा के लिये प्रार्थना भी नहीं की थी। वे लोग आशा कर रहे थे कि अगली शिवरात्रि अर्थात् वर्ष 1961 में उन्हें सन्यास दिया जायेगा, किन्तु शायद गुरु महाराज को इसका पूर्वाभास था और उन्होंने इस कारण अपने निर्णय को बदला।

(41)

एक शिष्य के साथ

अक्टूबर 1960 में आश्रम के एक शिष्य स्वामी भूमानन्द जी रोगग्रस्त हो गये। वे एक अख्खड़ स्वभाव के अनासक्त व्यक्ति थे। 1933 में उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के एक विद्वान ब्राह्मण परिवार में जन्में स्वामी भूमानन्द जी का नाम शशिभूषण दत्त मिश्रा था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा जौनपुर में हुई थी। उच्च शिक्षा के लिये वह इलाहाबाद आये और एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उनका मुख्य विषय संस्कृत था। अपनी किशोरावस्था से ही उन्होंने अपने उज्ज्वल भविष्य के संकेत दिये थे। उस समय वे करीब-करीब ‘श्रुतिधर’ थे। उनको यह गुण शायद अपने मामा से प्राप्त हुआ था। वे एक विश्लेषक प्रकृति के व्यक्ति थे। जब अन्य बच्चे पढ़ाई और खेलकूद में मग्न रहते, शशिभूषण घर से दूर किसी पेड़ के नीचे गहन चिन्तन में रहते थे। स्थानीय पण्डितों से अपने प्रश्नों का समाधान न पाकर वे घर से निकल पड़े, किन्तु विभिन्न स्थानों पर जाने पर भी जब समाधान न मिला तो वापस इलाहाबाद लौट गये और अपनी पढ़ाई पूर्ण की।

एम.ए. पास करने के बाद वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता हो गये, किन्तु वे एक ही सत्र तक कार्य कर सके, क्योंकि उनके मन में प्रबल अनासक्ति फिर जाग्रत हो गयी। वर्ष 1956 में वे हिमालय की ओर निकल पड़े। ऋषिकेश पहुँचने पर उन्होंने वसिष्ठ गुहा के बारे में सुना और वह पैदल चलकर गुहा पहुँच गये। गुरु महाराज के प्रथम दर्शन में ही वह समझ गये कि उन्हें सद्गुरु मिल गया है, जो उनके प्रश्नों का उत्तर दे देगा। इसी वर्ष गुरु महाराज ने अपने एक शिष्य के साथ उन्हें सन्यास दीक्षा प्रदान की और इनको नया नाम दिया स्वामी भूमानन्द। दूसरा शिष्य ब्रह्मचारी कुमारन का सन्यास नाम हुआ स्वामी गीतानन्द।

वर्ष 1958 में स्वामी भूमानन्द जी को कई बार मलेरिया हुआ और उन्हें कई बार अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। इस बार अक्टूबर 1960 में यह समझकर कि उन्हें मलेरिया हुआ है, कनखल स्थित रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में भर्ती कर दिया गया। इस बार उन्हें आन्त्रज्वर (Typhoid) हुआ था, किन्तु उपचार के दौरान दवाइयों का विपरीत प्रभाव पड़ा। अतिशय दुर्बलता के कारण वे दो बार चक्कर खाकर गिर पड़े। 3 नवम्बर को गुरु

महाराज ने अपने शिष्य स्वामी निर्वेदानन्द जी को कनखल जाकर स्वामी भूमानन्द जी के स्वास्थ्य की जानकारी लेने एवम् साथ रहकर उनकी सेवा करने के आदेश दिये। स्वामी भूमानन्द जी की स्थिति काफी गम्भीर थी। वे अतिशय बेचैन थे और उन्हें नींद भी नहीं आती थी। उन्हें लगातार हिचकियां आती रहती थी, जिससे वे लगातार क्षीण होते जा रहे थे और उनकी स्मरण शक्ति भी कमजोर होती जा रही थी। कभी-कभी वे भ्रम में बड़बड़ाने लगते। उनकी अस्वस्थता का समाचार पाकर दो अन्य गुरुभाई भी उनसे मिलने दूसरी शाम अस्पताल आ गये। शायद स्वामी भूमानन्द जी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका था। वे बार-बार कह रहे थे कि अब बच नहीं पायेंगे और गुरु महाराज के दर्शन की इच्छा कर रहे थे। यह समाचार लेकर एक गुरुभाई तुरन्त गुहा को लौट गया। दूसरे दिन गुहा पहुँचकर यह समाचार गुरु महाराज को सुनाया और स्वामी भूमानन्द जी की इच्छा भी बतलाई। गुरु महाराज ने कुछ क्षण विचार किया। वाहन तथा बस के जाने के बारे में पूछताछ की कि इस समय कनखल जाने की क्या व्यवस्था हो सकती है। तभी एक शिष्य ने सूचना दी कि गोविन्द सिंह जी अपनी जीप लेकर ऊपर मार्ग पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। गुरु महाराज उसी शिष्य के साथ जीप में बैठकर प्रातः साढ़े दस बजे कनखल पहुँच गये और सीधे स्वामी भूमानन्द जी की शय्या के पास पहुँचे। कुछ देर तक वे उनकी कुशलक्षेम पूँछते रहे। उसके पश्चात उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी लोगों को अपने साथ उच्च स्वर में "ऊँ" का जाप करने को कहा। इसके बाद उन्होंने अपने मृत्युग्रस्त शिष्य का मस्तक अपने दाहिने हाथ से थपथपाकर आशीर्वाद प्रदान किया। आह! कैसा कोमल स्नेह। स्वामी निर्वेदानन्द जी, जो स्वामी भूमानन्द जी के सिरहाने खड़े थे, स्वयं को नियंत्रित नहीं रख सके। उनका गला भर आया और आँखों से आँसू बहने लगे। स्वामी निर्वेदानन्द जी ने अपनी डायरी में यह प्रसंग लिखा -

"गुरु महाराज ने मुझे विष्णु सहस्रत्र नाम का स्तोत्र जाप करने के लिये कहा। कुछ मिनट पश्चात वे मन्दिर (सेवाश्रम में बना श्री रामकृष्ण का मन्दिर) की ओर जाने लगे और चलते समय मुझे एक ओर बरामदे में अलग बुलाकर कहा, "दो दिन से अधिक नहीं"। तुम यही रूको और अन्तिम संस्कार के पश्चात वापस लौटकर आना"। अपने कंधे पर ओढ़ी हुई ऊनी शाल मेरे हाथ में थमाते हुए बोले, "अन्तिम यात्रा के लिये" और इशारे से बताया कि "इसका उपयोग कफन के रूप में करना है"। स्वामी भूमानन्द जी की अन्तिम इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। उन्हें गुरु महाराज के दर्शन हुए

और आशीर्वाद प्राप्त हुए। करुणामय गुरुदेव स्वयं 50 किलोमीटर की दूरी तय करके अपने शिष्य को आशीर्वाद प्रदान करने कनखल आये। उस रात स्वामी भूमानन्द जी को शान्त नींद आयी। तीन रात बेचैनी से रात बिताने के बाद उन्हें आराम मिला। दूसरे दिन प्रातः 9 बजे वह गहन मूर्च्छा (Coma) में चले गये। मध्यान्ह एक बजे उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।"

गुरु महाराज का 82वाँ जन्मदिन 28 नवम्बर 1960 को आने वाला था, किन्तु वे इस बार बड़े पैमाने पर जन्मदिन मनाने की मनःस्थिति में नहीं थे। 6 नवम्बर को स्वामी भूमानन्द जी के देहावसान के पश्चात् उसके सोलहवें दिन कुछ सन्यासियों को भोजन कराया गया। उसी दिन भागवत पाठ भी शुरू करना था, जिससे कि 28 नवम्बर को पूर्ण हो सके। इसी बीच अक्टूबर 1960 में गोमती में आयी बाढ़ का समाचार गुरु महाराज तक पहुँचा। गुरु महाराज के कुछ भक्त बाढ़ में फँस गये थे। बाढ़ के कारण हुई दुर्दशा के समाचारों ने गुरु महाराज के मन में किसी बड़े आयोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी। उन्होंने जन्मदिन के आयोजन पर व्यय होने वाली धनराशि के स्थान पर कुछ धनराशि लखनऊ के बाढ़ पीड़ितों के लिये सहायतार्थ भेजी। उस वर्ष गुरु महाराज का जन्मदिवस अत्यन्त सादगी से मनाया गया।

गुरु महाराज ने भक्तगणों को जन्मदिन पर वसिष्ठ गुहा आने से रोक दिया था एवम् उन्होंने भक्तों से स्वयं आकर मिलने का वचन दिया। जन्मदिन के एक सप्ताह पश्चात् 3 दिसम्बर को वसिष्ठ गुहा से चलकर वे अगले दिन लखनऊ आ गये। बाढ़ के कारण शुक्ला घाट रहने योग्य नहीं रह गया था, अतः उनके रहने की व्यवस्था शहशाह घाट पर की गई। अनेक लोग उनके दर्शन हेतु एकत्रित हो गये। उनमें से कुछ को गुरु महाराज ने मंत्रदीक्षा दी। पूर्व की भाँति इस वर्ष भी प्रतिदिन भजन, कीर्तन, सत्संग आदि का आयोजन किया गया। अनेक भक्त उन्हें अपने घर पर भी ले गये।

एक युवा डॉक्टर ने अपनी बड़ी बच्ची के विद्यारंभ समारोह का आयोजन किया। गुरु महाराज उनके घर गये। डॉक्टर की पत्नी के मन में यह विचार आया कि गुरु महाराज ने उनकी बड़ी बेटी का अन्नप्राशन किया है और अब विद्यारंभ भी करने जा रहे हैं, किन्तु छोटी बेटी का कोई भी कार्य गुरु महाराज द्वारा नहीं किया गया है। उनके मन में यह विचार आया ही था कि गुरु महाराज ने डॉक्टर से दूसरी, छोटी कन्या को भी ले आने को कहा। डॉक्टर ने उत्तर दिया कि वह तो अभी चार वर्ष की है और अभी उसका विद्यारंभ करने का कोई विचार नहीं है। गुरु महाराज ने उनके

शब्दों को महत्व न देते हुए उसे भी ले आने को कहा, क्योंकि गुरु महाराज को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था और वे अपने शिष्यों को तुरन्त आशीर्वाद प्रदान करना चाहते थे।

दिसम्बर की सर्दी में सो रही उस बच्ची को जगाया गया और गुरु महाराज के पास लाया गया। यहाँ पर भी गुरु महाराज ने अपनी विशिष्ट विधि अपनायी। उन्होंने बच्चियों को मुँह खोलने को कहा और उनकी जिह्वा पर अपनी उंगली से गूढ़ मंत्र लिखकर विद्यारंभ किया। इस घटना के 2 माह पश्चात् ही उस दम्पति को गुरु महाराज द्वारा इस प्रकार के व्यवहार का अर्थ समझ में आया।

लखनऊ में, लगभग एक सप्ताह व्यतीत करने के बाद गुरु महाराज ने दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। वहाँ भी प्रवचन, विभिन्न भक्तों के यहाँ भेंट इत्यादि का व्यस्त कार्यक्रम रहा। एक दिन "योगोदा सत्संग" की महिला शाखा द्वारा काश्मीरी गेट क्षेत्र में आयोजित सत्संग में उन्होंने सदस्यों को सम्बोधित किया।

दिल्ली से गुरु महाराज इलाहाबाद गये तथा वहाँ कुछ दिन रहकर गुहा लौट गये। इलाहाबाद से वापसी में जब लखनऊ पहुँचे तो हजारों संख्या में भक्तगण चारबाग रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। गुरु महाराज तो जैसे प्रेम की प्रत्यक्ष मूर्ति ही दिखाई दे रहे थे। वे मुक्त कंठ से सभी भक्तों और शिष्यों को आशीर्वाद दे रहे थे।

उनकी इस असाधारण कृपा और प्रेम का अनुभव सभी स्थानों पर भक्तों को हुआ, जिससे वे सब बड़े प्रसन्न थे, किन्तु किसी को ज्ञात नहीं था कि यह उनकी अन्तिम भेंट है। 24 दिसम्बर को गुरु महाराज वसिष्ठ गुहा लौट आये।

(43) महा समाधि

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह गुरु महाराज वसिष्ठ गुहा वापस आ गये थे। वर्षा होने के कारण ठण्ड बढ़ गयी थी। जनवरी का महीना तो वैसे भी ठण्डा होता है, किन्तु दर्शनार्थी गुरु महाराज के दर्शन करने तथा उनसे परामर्श लेने आते रहते थे। वसिष्ठ गुहा में सब कुछ सामान्य चल रहा था। शायद यह फरवरी की पहली तारीख थी। भयानक वर्षा हो रही थी, ओले पड़ रहे थे। दस बजे दिन का समय रहा होगा, गुरु महाराज ने स्वामी अनन्तकृष्ण जी से कहा कि आत्मचैतन्य* को फुरसत हो तो मेरे पास आ जाय।

उस समय तक स्वामी चैतन्यानन्द जी ने स्नान नहीं किया था। जाड़े के उस ठण्डे मौसम में ठण्डे पानी से स्नान कर उन्होंने गुरु महाराज के पास जाकर प्रणाम किया। गुरु महाराज ने उनसे पूछा कि क्या जाने की तैयारी है? गुरु महाराज का प्रश्न उन्हें बड़ा विचित्र एवम् रहस्यमय सा लगा। स्वामी चैतन्यानन्द जी कुछ देर तक चुप रहे, लेकिन उनके फिर कहने पर, मन में जो बात आयी उन्हें बता दी। गुरु महाराज अन्य लोगों को बुलाकर भी यही बात पूछते रहे। स्वामी चैतन्यानन्द जी को एक सिद्ध महात्मा ने यह पहले ही बता दिया था कि गुरु महाराज अपनी इच्छा से अपनी काया का परित्याग कर सकते हैं।

7 फरवरी की रात्रि को स्वामी चैतन्यानन्द जी, स्वामी गोपेशानन्द जी और स्वामी अनन्तकृष्ण जी साथ-साथ गुफा में थे। स्वामी अनन्तकृष्ण जी सो चुके थे और स्वामी चैतन्यानन्द जी योगवसिष्ठ विशेषांक पढ़कर स्वामी गोपेशानन्द जी को सुना चुके थे। उस रात नौ से अधिक समय हो गया था और ठण्डक भी काफी बढ़ गयी थी। उन लोगों ने भी सोने का उपक्रम किया और कम्बल डालकर लेट गये। इधर वे लोग लेटे थे कि स्वामी गोपेशानन्द जी एकाएक उठकर बैठ गये और देखते ही देखते वे बेहाल होकर गिर गये। उनकी श्वास अवरुद्ध होने लगी और आँखें फैल गयीं। स्वामी चैतन्यानन्द जी उठकर उनके पीठ की मालिश करने लगे तब तक स्वामी अनन्तकृष्ण जी भी जाग गये। वे दोनों ही उनकी पीठ की मालिश कर ही रहे थे और उन्हें थोड़ा आराम भी मिला था कि अचानक उन्हें खून की उल्टी आने लगी।

*स्वामी चैतन्यानन्द जी

वे दोनों उन्हें बाहर लाये और बाहर एक खम्भे के सहारे उन्हें बैठा दिया। वहाँ उन्हें खून की उल्टी और दस्त दोनों होने लगे। अब वे लेट भी नहीं सकते थे। उनकी दशा बिगड़ती जा रही थी और रात्रि के 11.00 बज गये थे। उन लोगों ने स्वामी सेवानन्द जी से पूछा, क्या गुरु महाराज को बता दिया जाय?

इस समय गुरु महाराज समाधि के रूप में सोये हुए थे। स्वामी चैतन्यानन्द जी के निकट पहुँचते ही वे उनकी पगध्वनि से जाग गये और उन्होंने पूछा, कौन है? स्वामी चैतन्यानन्द जी ने उन्हें सारी बातें बता दी। तब उन्होंने कहा, "यह विभूति ले जाओ उसको दे दो और कह देना हमने दिया है"।

स्वामी चैतन्यानन्द जी विभूति लेकर चले कि गुरु महाराज ने ताली बजाकर उन्हें पुनः बुला लिया और कहा कि "हम भी आ रहे हैं"। इसके बाद गुरु महाराज जी नीचे आ गये और कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने चूल्हे की राख मंगवायी। स्वामी चैतन्यानन्द जी राख लेकर जब आये तो गुरु महाराज ने वहाँ खड़े सभी लोगों से कहा "दूर जाओ"। गुरु महाराज ने स्वामी गोपेशानन्द जी से अपने शरीर पर राख लगाने को कहा और जैसे ही उन्होंने राख लगा ली, गुरु महाराज उनका हाथ पकड़कर जप करने लगे। थोड़ी देर के बाद गुरु महाराज ने गद्दी के नीचे से एक कम्बल निकाल कर उनके ऊपर डाल दिया।

बस एकाएक स्वामी गोपेशानन्द जी को आराम मिल गया। वे व्यय को स्वस्थ अनुभव करने लगे जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। जब वे जाकर चैन से सो गये तो गुरु महाराज अपने कमरे में चले गये। जब स्वामी गोपेशानन्द जी ने रात्रि के लगभग तीन बजे पानी मांगा, स्वामी चैतन्यानन्द जी ने गोपेशानन्द स्वामी को पानी दे दिया, किन्तु वे एकाएक बोल उठे, "आप तो ठीक हो गये, किन्तु अब गुरु महाराज को क्या होगा, पता नहीं?"

8 तारीख की रात्रि नौ बजे, गुरु महाराज ने कालबेल बजायी, जिसकी आवाज सुनकर स्वामी मनीषानन्द जी भागकर पहुँचे। महाराज जी ने बडियारा पानी* मांगा। उस समय गुरु महाराज का गिलास, कटोरी आदि गुफा में था। उन्होंने स्वामी चैतन्यानन्द जी से कहा, "महाराज जी, बडियारा पानी मांग रहे हैं"। उन्होंने उनसे पूछा, "आप ले जायेंगे?"

स्वामी मनीषानन्द जी पानी लेकर पहुँचे तो गुरु महाराज ने कहा, "क्या? क्या?" और उनका हाथ पकड़कर गुफा के पास आ गये। सभी

*बला का पानी

लोग वहाँ आ गये। उन्होंने स्वामी चैतन्यानन्द जी से कहा, “दूर्वा और गंगाजल लेकर आओ, मैं शरीर छोड़ने जा रहा हूँ”। वे बड़े बेमन दूर्वा लाने को तैयार हुए, क्योंकि गुरु महाराज ने शरीर छोड़ने की बात की थी। उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात था कि गुरु महाराज अपनी इच्छानुसार शरीर त्याग कर सकते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वे जो रजाई ओढ़े हुए हैं, उसमें ही उनका शरीर गंगा जी को सौंपा जाय। स्वामी अनन्तकृष्ण जी से उन्होंने कागज और पेन माँगा। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने कमरे से गंगाजल लाकर महाराज जी को दिया। उन्होंने 2-3 चम्मच पिया और उनसे विष्णु सहस्र नाम का पाठ करने के लिये कहा। वे लगभग 20 श्लोक ही पढ़ पाये थे कि उन्हें रोककर कहा, “सो जाओ”। स्वामी चैतन्यानन्द जी गुफा में आकर बैठ गये। उस समय गुरु महाराज बाहर गद्दी पर बैठे थे तथा स्वामी सेवानन्द जी उनके पास नीचे बैठे थे। उन्होंने पुनः स्वामी सेवानन्द जी से स्वामी चैतन्यानन्द जी को बुलवाया। वे पुनः उनके पास जाकर खड़े हो गये। महाराज ने उनका हाथ पकड़कर अपने सीने से लगाकर कहा, “विष्णु सहस्र नाम का पाठ करो”। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने पूरा सहस्र नाम पढ़ा। उनसे बोले, “देखो, कितना अच्छा हुआ”। शेष रात्रि गुरु महाराज गद्दी पर चूल्हे की आग के पास बैठे रहे।

अगले दिन प्रातः प्रतिदिन की भाँति स्नानादि करके गुरु महाराज ध्यान में बैठ गये। उस दिन वे ठीक रहे। उसी दिन कोई विदेशी महिला एक सप्ताह के लिये आश्रम आयी थी। कुछ समय बाद स्वामी चैतन्यानन्द जी जब गुरु महाराज को देखने गये तो वे उत्तर की ओर सिर करके लेटे हुए थे। उन्हें देखकर गुरु महाराज ने पूछा, “क्या बात है?” स्वामी चैतन्यानन्द जी ने पूछा, “क्या अंगीठी में थोड़ा अंगार ले आऊँ?” तो मना कर दिया। इतने में वहाँ से निकल रही उस विदेशी महिला को बुलावाया। स्वामी चैतन्यानन्द जी अभी नीचे उतर कर गये ही थे कि गुरु महाराज ने कालबेल बजायी। कुछ लोग दौड़कर वहाँ गये। एक शिष्य का हाथ पकड़कर गुरु महाराज नीचे उतरे और शौच गये। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि उस महिला को भेज दिया जाय, ताकि उन्हें शौच आदि जाने में कोई बाधा न हो। उस महिला ने जाने से मना कर दिया, किन्तु बाद में अनन्तकृष्ण जी के साथ उसे ऊपर बट्टीनाथ मार्ग पर भेजा गया। कुछ समय बाद लगा कि गुरु महाराज को कोई बेचैनी है, क्योंकि वे बार-बार करवटें बदल रहे थे। उन लोगों ने एक आदमी को ऋषिकेश भेजकर डा० माथुर को बुलवाया। उन्होंने आकर गुरु महाराज को देखा और कैपसूल आदि दिया। स्वामी अनन्तकृष्ण जी डाक्टर साहब को

छोड़ने ऊपर तक गये। गुरु महाराज जी से आग्रह किया गया कि वे दवाई खा लें, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। अधिक कहने पर बोले, “क्या उलट देने के लिये दवाई मुँह में डालें”। फिर, जैसे ही दवाई खाई, दवा उलट गयी। शीघ्र ही पुनः डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने आकर कोरामिन दिया और कहा, कोई बात नहीं, ठीक हो जायेगा। ऐसा कहकर वे चले गये। गुरु महाराज ने श्री प्रताप नारायण जी को बुलाने के लिये तार भिजवाया। वे 10 तारीख को आ गये थे। उनसे कुछ बातें की। आने के बाद श्री प्रताप नारायण जी दो डाक्टरों को ले आये। पहले दिन गुरु महाराज ने डाक्टर बुलाने के लिये मना कर दिया था और किसी से भी अस्वस्थ होने की बात करने के लिये मना किया।

10 तारीख की शाम को गुरु महाराज ने कई बातें स्वामी चैतन्यानन्द जी को बतलाई। उन्होंने गुरु महाराज से कहा कि कृष्ण ब्रह्मचारी शिवरात्रि में आपसे सन्यास दीक्षा लेने आयेंगे। आप कृपा करके उन्हें सन्यास दीक्षा न दें, क्योंकि ठण्डक पड़ रही है और आपका शरीर ठीक नहीं है। गुरु महाराज बोले “कौन दे रहा है? उसको यहाँ आना नहीं चाहिये था”। इसी बीच कृष्ण ब्रह्मचारी वहाँ आ गये। गुरु महाराज ने स्वामी चैतन्यानन्द जी से कहा — “जो हमने कहा है, इनसे कह दो”। उन्होंने कृष्ण ब्रह्मचारी से कहा कि अभी-अभी गुरु महाराज ने कहा है, आपको यहाँ आना नहीं चाहिये था और यह भी कहा कि गुरु महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। गुरु महाराज ने उनसे पूछा — “भोजन हो गया”? उन्होंने जवाब दिया, “अभी नहीं”। “जाओ, जाकर खाना खाओ”, गुरु महाराज ने कहा। फिर बातें होती रहीं। एक अमेरिकन स्पीफन उन दिनों वहाँ था। उसने कहा कि हेलीकाप्टर लाकर गुरु महाराज को बाहर कहीं ले जाऊँगा। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने यह बात भी महाराज जी से कही। “आप चाहें तो जायें”, उन्होंने जवाब देकर चारों ओर देखा और कहा, “ऐसा भजन-पूजन का स्थान कहाँ मिलेगा”।

11 तारीख को एकादशी थी। उस दिन भी गुरु महाराज स्नानादि करके बैठ गये थे। उस समय गुरु महाराज के पास कोई न कोई अवश्य रहता था। उन्होंने सुबह 8 बजे सबसे पूछा, “क्या गंगा जी जाकर हाथ पैर धोकर आये हो?” सबने कहा, “हाँ”। महाराज जी ने कहा, “सब पदमासन में बैठ जाओ, आपस में एक दूसरे को मत छूना”। सब बैठ गये। एक छोटे से कमरे में 8-10 लोग थे। स्वामी सेवानन्द जी ने कहा, “हम खड़े रहेंगे”। उन्होंने उनको भी बैठने को कहा। गुरु महाराज ने उसके बाद उपदेश (अन्तिम) दिया। बोलते-बोलते गुरु महाराज जी गद्गद हो

उठते थे। उस समय उस कमरे में स्नेह की तरंगें चल रही थी। सबको पात्र भेद के अनुसार अपना-अपना अनुभव हो रहा था। ऐसा लग रहा था, जैसे सभी लोग छककर अमृत पान कर रहे हैं। हृदय आनन्द से परिपूर्ण था। उसके बाद सबको बुला-बुलाकर गुरु महाराज ने आशीर्वाद दिया। सारा ममत्व वहीं तक सीमित था। जो भी बाँटना था, बाँट दिया। उसके बाद किसी को भी पहचानते हुए नहीं प्रतीत हो रहे थे।

12 तारीख को तीन डाक्टर बुलाये गये। उनको प्रसाद स्वरूप "स्प्रिचुअल टॉक" आदि पुस्तकें देकर विदा कर दिया। 13 तारीख को महाशिवरात्रि के दिन गुरु महाराज स्नानादि करके ध्यान के बाद कमरे के बाहर तख्त पर बैठ गये। स्वामी चैतन्यानन्द जी से पूछा, "आज क्या बनाओगे?" उन्होंने कहा, "कुछ नहीं, यदि आप खायेंगे तो बनाऊँगा"। "हम खायेंगे" गुरु महाराज ने कहा।

बाद में गीता का आठवाँ अध्याय एवम् दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के लिये कहा। ग्यारहवें अध्याय के मंत्र पढ़ते-पढ़ते स्वामी चैतन्यानन्द जी रोने लगे। गुरु महाराज ने किताब अपने हाथ में ले ली और अध्याय पूरा किया।

स्वामी चैतन्यानन्द जी खीर, खिचड़ी आदि, गुरु महाराज के पास ले गये। गुरु महाराज ने चम्मच से मुँह में डालने का संकेत किया। एक चम्मच लेने के बाद कहा, "ले जाओ" शेष कुछ भी नहीं खाया। लगभग शाम के पाँच बजे तक गुरु महाराज बाहर रहे। इतने में बादल आ गये, छींटे पड़ने लगे। स्वामी चैतन्यानन्द जी छाता ले आये। गुरु महाराज बोले, "वर्षा नहीं होगी"। कुछ ही समय में सारे बादल छंट गये। उसके बाद अपने-आप उठकर गुरु महाराज अन्दर चले गये।

गुरु महाराज को शाम के पाँच बजे नींद की एक गोली दी गयी थी। तब श्री प्रताप नारायण जी ने कहा कि अगर नींद न आये तो 4 घंटे बाद फिर एक गोली देनी चाहिये। लगभग साढ़े आठ बजे स्वामी चैतन्यानन्द जी दूध लेकर आये तो गुरु महाराज बोले, "तुम दूध बनाकर लाते हो तो बहुत ही अच्छा लगता है"। उन्होंने कहा, "मैंने नहीं तैयार किया है, मनीषानन्द जी ने बनाया है" तो गुरु महाराज ने उसी बात को फिर दोहराया। तब कालिकानन्द स्वामी जी ने कहा, कि तुम्हारे बना कर लाने से अच्छा लगता है, तो फिर स्वामी चैतन्यानन्द जी एक पाव दूध में हारलिक्स मिलाकर ले आये। गुरु महाराज ने करीब तीन चौथाई भाग पी लिया। उस समय तक 9 बज गया था। उन्होंने गुरु महाराज जी से सोने

की गोली खाने के लिये आग्रह किया। उन्होंने कहा, "मैं सो चुका"। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने फिर कुछ नहीं कहा। गुरु महाराज ने कहा, "अब मैं हमेशा के लिये सोने जा रहा हूँ, लाओ जल्दी मुझे दे दो"। इसके साथ ही मुँह खोला। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने गोली उनके मुँह में डाल दी। पानी में 2 बूँद कोरामिन डालकर भी पिला दिया। उस समय उन्होंने कहा, "कमरे में कोई नहीं आना, सब ठीक है। पाँच बजे पानी लेकर आना"। शिष्य लोग नहीं माने, कुछ लोग वहीं रहे। प्रथम स्वामी चैतन्यानन्द जी की बारी थी। कुछ कारणवश स्वामी पुरहरानन्द जी को आने में देरी हो गयी। उनके स्थान पर स्वामी कालिकानन्द जी उनके साथ थे। कुछ समय बाद स्वामी सेवानन्द जी भी आकर सो गये। कृष्ण ब्रह्मचारी जी बाहर अंगीठी जलाकर बैठे थे। स्वामी चैतन्यानन्द जी विष्णु सहस्र नाम का जाप कर रहे थे। स्वामी कालिकानन्द जी श्री बद्रीनाथ जी का नाम ले रहे थे।

रात्रि 10 बजकर 50 मिनट पर गुरु महाराज के कण्ठ से मृदु प्रणव ध्वनि सुनाई पड़ी। ज्योति में ज्योति लीन हो गयी। स्वामी चैतन्यानन्द जी ने तुरन्त कालबेल बजायी। सभी लोग एकत्रित हो गये। कमरे के बाहर निकलकर उन्होंने श्री प्रताप नारायण जी को बुलाया। उसी क्षण भूमिकम्प हो गया। स्वामी चैतन्यानन्द जी रोने लगे। लोगों ने उन्हें वहाँ से हटा दिया और कहा कि गुरु महाराज इस समय समाधि में हैं। बाद में गीता पाठ होता रहा। रात्रि को 18 तार लिखकर विभिन्न राज्यों में भेजे गये। उसके बाद वे लोग निरन्तर विष्णु सहस्र नाम का पाठ करते रहे। लोगों से कुछ कहने के लिये गुरु महाराज जी मना कर गये थे, जिससे जो कहना था, पहले कह गये थे। मुकुन्द राम जी, बंगाली माता जी, स्वामी सुभद्रानन्द आदि सबसे एक माह पूर्व ही गुरु महाराज अपनी अन्तिम यात्रा की सूचना दे चुके थे।

14 फरवरी 1961 को गुरु महाराज की महासमाधि की सूचना ऋषिकेश में फैल चुकी थी। उनके सम्मान में व्यापारियों ने अपनी दूकानें बन्द रखी। दोपहर होते-होते सैकड़ों लोग गुरु महाराज को अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु गुहा में एकत्रित हो गये। गुरु महाराज के पार्थिव शरीर के जल प्रवाह की तैयारी दो बजे तक पूर्ण हो चुकी थी। शरीर को स्नान कराकर नवीन गेरू वस्त्र में लपेटकर कमरे के बाहर लाया गया और गुहा के मुख पर उनको गद्दी (गुरु महाराज के बैठने का स्थान) पर बैठा दिया गया। सभी लोगों ने अपने श्रद्धेय गुरु महाराज के प्रति अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि दी। महा समाधि के करीब 16 घंटे बाद भी उनके चेहरे पर तेज था। विस्तृत ललाट पर लगी विभूति उनके चेहरे पर ताजगी

प्रदान कर रही थी। धूपबत्ती की सुगंध चारों ओर व्याप्त थी। शरीर पर पुष्प मालाएँ तथा पंखुड़ियाँ फैली थी।

दोपहर तीन बजे पार्थिव शरीर को एक श्रृंगारित कुर्सी पर रखकर गंगाजी की ओर ले जाया गया। विशाल जनसमूह पीछे-पीछे चल रहा था। लोग हरे राम, राम राम हरे हरे का कीर्तन कर रहे थे। पूरे मार्ग भर उन पर पुष्प वर्षा की जा रही थी। गंगा तट पर पहुँचने पर उनका शरीर कुर्सी से उतार कर एक समतल शिला पर रख दिया गया। दूध, शहद, गुलाबजल, इत्र और गंगाजल से अभिषेक कर उनकी अन्तिम पूजा की गयी और कपूर जलाकर आरती उतारी गयी।

पूजन के पश्चात् शरीर को वजन देने के लिये एक संगमरमर की भारी फरसी के साथ एक मोटी सूती चादर पर बैठाया गया। चादर के चारों कोने सिर के ऊपर लाकर भली-भाँति बाँध दिये गये। इसके पश्चात् गुरु महाराज की जय की गूँज के बीच लगभग 4 बजे उसे एक नाव पर रखकर नदी की मुख्य धारा पर ले जाया गया। वहाँ पार्थिव शरीर को धीरे से नीचे उतारकर गंगा मैया की गोद में समर्पित कर दिया गया। इस प्रकार एकत्रित जन समूह की भौतिक आँखों के सामने एक महान संत का पार्थिव शरीर भी सदा के लिये लुप्त हो गया।

ओम्

गुरु महाराज का संक्षिप्त परिचय

जन्म नाम	: नीलकण्ठन
जन्म स्थान	: तिरुवल्ला, केरल (तत्कालीन त्रवणकोर राज्य का मध्य भाग)
जन्म दिन	: 23 नवम्बर, 1879, मलयालम युग 1054
जन्म तिथि	: दशमी शुक्ल पक्ष उत्तर भद्रपद धनुर् लग्न, मलयालम माह वृश्चिकम्
माता का नाम	: पार्वती अम्मा
पिता का नाम	: नारायणन नायर
शिक्षा	: 10वीं कक्षा के समतुल्य
आध्यात्मिक गुरु	: स्वामी निर्मलानन्द जी (शिष्य स्वामी रामकृष्ण परमहंस)
मंत्र दीक्षा गुरु(मंत्रोपदेश)	: स्वामी ब्रह्मानन्द जी (श्री रामकृष्ण मिशन बेलूर मठ के प्रथम प्रेसीडेण्ट) वर्ष 1916
सन्यास दीक्षा गुरु	: श्रीमद् शिवानन्द स्वामी जी (तत्कालीन प्रेसीडेण्ट श्री रामकृष्ण मिशन बेलूर मठ)
तिथि	: कार्तिक पूर्णिमा, अक्टूबर 1923
वसिष्ठ गुहा दर्शन	: 20 जून, 1928
वसिष्ठ गुहा में स्थान	: अक्टूबर 1929
प्रथम बद्रीनाथ यात्रा	: 1925
गंगोत्री यात्रा	: 1925
केदार नाथ	: 1925
काश्मीर यात्रा	: 1930
द्वितीय बद्रीनाथ यात्रा	: 1933

१			
१			
२	प्रथम दक्षिण यात्रा	:	1935
३	पशुपतिनाथ यात्रा	:	1936
४	द्वितीय दक्षिण यात्रा	:	1951
५	प्रयाग कुम्भ यात्रा	:	1953
६	ब्रह्म वाक्य	:	योगक्षेम् वहाम्यहम्
७	महाराजा द्वारा पाण्डुलिपि तैयार	:	19.09.1955
८	मलयालम में पुस्तक का प्रकाशन	:	जुलाई 1956
९	अंग्रेजी अनुवाद का प्रकाशन	:	1994
१०	हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन	:	नवम्बर 2007
११			